विषय-सूची

चित्र-सूची

प्रकाशक की ओर से

स्वतन्त्रता की कहानी काफी लोगो की जुबानी आ चुकी है। इस किताब को हिन्दी मे प्रकाशित करने का सिर्फ यह ही मकसद नही कि उस सूची मे एक और नाम जोड दिया जाय।

इस किताब के बारे मे पहली महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि यह उस आदमी द्वारा लिखी गई है जिसका देश की आजादी की लडाई से कोई सीधा सम्बन्ध नही था। इसलिए एक तरह की तटस्थता की उम्मीद होती है क्योकि आजादी 1947 मे मिली और यह किताब आई 1961 मे—चौदह वर्षों के बाद, जब सनसनी और उत्तेजना का वातावरण शान्त हो चुका।

लेकिन इसके साथ ही इस किताब का महत्त्व इसलिए भी बढ जाता है कि अग्रेजो और अग्रेजी के माध्यम से हिन्दुस्तान को जाननेवाले लोगो का दिमाग आज भी किस तरह काम कर रहा है इसका सबूत है यह। इस किताब म जिस तरह—जिन रगो और रेखाओ म चित्रण किया गया है उनसे अनुदार (कजर्वेटिव) अग्रेज के दिमाग को समझने मे सहायता मिलेगी।

कठिनाई इस बात की है कि जहां अग्रेजो की दस्तावेजो और कागजातो की सुरक्षित रखने की आदत मशहूर है, विपरीत पक्ष के दस्तावेज और कागजात आज से सौ वर्ष बाद शायद ही सुरक्षित मिले। उस हालत म भविष्य के इतिहासकार को कैसा दृष्टिकोण अपनाना पडेगा इसके लिए अभी से आगाह कर देने की जरूरत मालूम पडती है।

यह किताब कुछ बहुत ही दिलचस्प बातो को सामने लाती है जिनकी चर्चा भारतीय इतिहासकारो ने नही की। आशा है कि यह किताब हम उकसा सकेगी और इस ऐतिहासिक समय का साहसिक, प्रामाणिक और तटस्थ इतिहास जल्द ही सामने आएगा।

लेखक की भूमिका

हाल की छपी किताब 'दी ब्रिटिश इन इण्डिया' में ख्यातिप्राप्त भारतीय विद्वान् आर० पी० मसानी ने लिखा है—

"हिन्दुस्तान मे अग्रेज़ी शासन के आखिरी दौर के जो इतिहास छपे हैं उनसे कई सवालो का जवाब नही मिलता। हिन्दुस्तान के सबसे अधिक ईमानदार और उदार वायसरायों मे से एक लॉर्ड वेवेल ने दोनों राजनीतिक विरोधी दलो के बीच सुलह कराने के लिए कौन-कौन-सी कोशिशे की ? वे कौन-सी परिस्थितियाँ थी जिन्होने ब्रिटेन के प्रधानमत्री एटली को बीच धारा में नाव बदलने की प्रेरणा दी और लॉर्ड माउटबेटन को जल्दी सत्ता सौंपने के लिए भेजा गया ? भारत और पाकिस्तान के उपनिवेशो के बीच मैत्रीपूर्ण नीति तैयार करने के लिए कौन-कौन-सी कोशिशें की गई ? क्यों ये असफल रही ? खतरनाक परिस्थिति से बचने की तैयारियाँ क्यों नहीं की गई ? निर्विकार भाव से इन सवालो का जवाब आना बाकी है।"

इस किताब मे निर्विकार रूप से, निष्पक्ष तरीके से उन सवालो के जवाब देने की कोशिश की गई है।

तीन वर्षों तक मैंने भारत, पाकिस्तान और ब्रिटेन मे जो शोध कार्य किया है और मुझे उन कागज़ातो को देखने का भी अवसर मिला जो अब तक के इतिहास-कारो को नही मिला था, उसी का परिणाम है यह किताब। अपनी शक्तिभर मैंने इस पुरअसर और विलक्षण कहानी की खाली जगहो की खानापूरी करने की इच्छा से ही उनका उपयोग किया है। अब तक इस कहानी की बहुत सारी कड़ियाँ खोई हुई थी। सत्ता सौंपने के सरकारी कागज़ात 1999 तक प्रकाश मे नही आएँगे। लेकिन तब से लेकर आज तक की इस अवधि मे, मुझे उम्मीद है कि इस किताब से उन घट-नाओ पर कुछ प्रकाश पड़ेगा जो अब तक अँधेरे मे थी।

कागज़ातो, दस्तावेज़ो और चिट्ठियों के देखने के अलावा जिन लोगों ने अंग्रेजी सत्ता हटाने व भारत और पाकिस्तान के आज़ाद कराने मे प्रमुख हाथ बँटाया, उनमे से भी अधिकाश से मिलने और बात करने का मुझे सौभाग्य मिला है। जिन लोगो ने मेहरबानी कर मुझे बातचीत का समय दिया उनमे प्रमुख हैं—

भारत के प्रधानमत्री पंडित नेहरू; पाकिस्तान के राष्ट्रपति फील्ड मार्शल अय्यूब खाँ; एडमिरल ऑफ द फ्लीट; अर्ल माउटबैटन ऑफ बर्मा; लॉर्ड इस्मे; सर कानराड कार्फील्ड; सर जार्ज एबेल; सर इवान जेन्किन्स; चौधरी मुहम्मद अली; श्री वी० पी० मेनन; लॉर्ड रैडक्लिफ; बेगम लियाकतअली खाँ; श्री के० एम० मुशी; जनरल के० एस० थिमैय्या; ले० जनरल सर फासिस टकर; मास्टर तारासिंह; मि० एलेन जॉनसन; एडमिरल (एस) रोनेल्ड ब्राकमैन; राजगोपालाचारी; मि० डी० एफ० कराका; मि० एस० सी० सटन (इण्डिया ऑफिस लाइब्रेरी के लाइब्रेरियन) और बहुत सारे ब्रिटिश तथा हिन्दुस्तानी।

यह भी लिख देना जरूरी समझता हूँ कि जहाँ विशेष रूप से उद्धरण दिये गए हैं, उन्हे छोडकर अन्यत्र दिये गए अन्य विचारो को उनके नाम से जोडना उचित नही होगा। लेकिन मैं उन लोगो की सहायता का बहुत आभारी हूँ।

अध्याय 1

याद ताज़ा करा दूँ

यह महसूस करने के लिए न तो बहुत दिन हिन्दुस्तान में रहने की जरूरत है और न नजूमी होने की कि हिन्दुस्तान के रहनेवाले विभिन्न लोगो मे एक बात समान रूप से पाई जाती है—उनका राजनीतिक जोश-खरोश बहुत ही आसानी से भडक उठता है। दुनिया के किसी हिस्से मे गरमागरम नारो के कारण इतनी आसानी से या इतने वहशियाना ढग से जनता नही भडक उठती। और उस असुन्दर शहर कलकत्ता मे, अगर ऐसी आग लगी, तो देश के किसी भी शहर की अपेक्षा ज्यादा जहरीले धुएँ के साथ शोले तेजी से भडक उठते हैं।

16 अगस्त 1946 की सुबह से तीन दिन बाद की शाम तक कलकत्ता के लोगो ने 6,000 लोगो को आपस मे मारपीट, खून-खराबी, आग लगाने, छुरेबाजी और गोलियो से मौत के घाट उतारा। 20,000 के साथ बलात्कार हुआ या वे जिन्दगी भर के लिए अपंग बना दिये गए। शायद हिन्दुस्तान के आधुनिक इतिहास के विद्यार्थियो को यह सख्या बहुत बडी मालूम न हो। सिर्फ बगाल के 1943 वाले अकाल मे 30 लाख आदमी मरे। हिन्दुस्तान की आजादी के प्रारम्भिक दिनो मे ही लगभग साढे सात लाख पजाबियो ने एक-दूसरे को कत्ल किया।

लेकिन कलकत्ता को 72 घटे के लिए बूचडखाना बना देनेवाले कत्ल के इस घिनौने और खौफनाक दौर का इसलिए महत्व है कि इसने सिर्फ बेकसूर लोगो का ही खून नही किया, लेकिन उम्मीदो का भी गला घोट दिया। इसने हिन्दुस्तान का आकार[1] बदल दिया, इतिहास की धारा पलट दी। चौरगी की नालियों मे औरत, मर्द और बच्चो की लाशें तब तक सडती रही जब तक कि सफाई करनेवालो मे सबसे ज्यादा विश्वासपात्र चीलो ने उनका सफाया नही कर दिया। उनके हर ग्रास के साथ उस सयुक्त हिन्दुस्तान के धागे बिखरते गए जिसे अग्रेजो ने लगभग डेढ़ सदी मे तैयार किया था और जिसे अन्त मे दो टुकडो मे बाँट दिया।

कलकत्ता की खून-खराबी सिर्फ बेजरूरत ही नही थी (शायद हिन्दुस्तान के इतिहास के सभी खूनी दगो की यही कहानी है) बल्कि इसने उस साल की गर्मियो को, जो उम्मीदों से लबालब भरी थी, बदशक्ल कर दिया। भारत और पाकिस्तान, दोनो के बडे सरकारी हल्को मे आज भी 1946 उस काले और मनहूस वर्ष की तरह याद किया जाता है

1 और नाम भी—अनुवादक।

जब स्वतन्त्रता की लडाई बहुत दूर चली गई थी और प्रकाश की एक रेखा भी कहीं नहीं दिखाई पडती थी।

फिर भी, सच तो यह है कि उसी वर्ष, अधिकांश भारतीयों का लक्ष्य—स्वतन्त्र और सयुक्त भारत—सबसे ज्यादा निकट था। ऐतिहासिक गलतियो, पीठ पीछे की चालबाजियों और राजनीतिक दावपेंच ने उसे खो दिया और उसकी परिणति हुई खून-खराबी मे। भारत मे अंग्रेजी राज्य के आखिरी दिनो की कहानी के प्रस्तावना-स्वरूप याद ताजा कर दूं, और यह जरूरी भी है (इसके नुमाइन्दो और शायद इसमे भाग लेनेवालो के लिए खास तौर पर) कि वे उस समय क्या कर रहे थे, उनकी क्या हालत हुई और कौन किनके साथ बातचीत चला रहा था, जबकि एकाएक स्थिति तेजी से बदलने लगी।

स्थिति साफ कर देने के लिए एक बात शुरू मे ही कह देनी चाहिए। 1945 मे लडाई खत्म होने के बाद मे ही जबकि दुनिया की शक्ल फिर नये सिरे से बनने लगी, हर समझदार आदमी के लिए यह बात साफ हो गई कि हिन्दुस्तान की जनता अंग्रेजी राज्य से मुक्त हो जायगी और स्वतन्त्रता हासिल कर लेगी जिसके लिए व्यावहारिक दृष्टि से वह 1917 से लड रही थी (जबकि गाधी के हाथ काग्रेस की बागडोर आई)। अगर अर्द्ध-भारतीय दृष्टि से देखा जाय तो यह लडाई गदर के जमाने से ही शुरू हो गई थी। विंस्टन चर्चिल की सरकार ने भी नाक-भौं सिकोड़कर आधे दिल से ही सही इस बात की जरूरत मान ली थी कि हिन्दुस्तानी जनता को उस आजादी की उम्मीद देनी चाहिए जिसे यूरोप और एशिया मे हासिल करने के लिए अंग्रेजी और हिन्दुस्तानी फौज न लडाई लडी थी। यह सही है कि अमेरिका के कहने के बाद ही यह सम्भव हो सका। 1945 म जब क्लेमट एटली के अधीन ब्रिटेन मे सोशलिस्ट सरकार बनी, भारतीय स्वतन्त्रता के बारे म कोई सदेह ही नहीं रह गया। भारतीय मणि का अंग्रेजी राजमुकुट से निकालकर हिन्दुस्तानियों के हाथ फिर से सौंप देना हमेशा सोशलिस्ट नीति का एक प्रधान स्तम्भ था। और फिर इस नीति के साथ ब्रिटेन के अधिकाश मतदाताओं की उस समय सहमति थी। सिर्फ व्यावहारिक दृष्टि से ही देखा जाय तो ब्रिटेन के नौकरशाह और भारत के शासक अंग्रेज इस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कर सकते थे। भारतीय सरकार का भारतीयकरण लडाई के पहले ही शुरू हो गया था। वह चरम-सीमा पर पहुँच चुका था। अगर भारत को स्वतन्त्रता नहीं भी मिलती तो 1948 मे ब्रिटेन के सिर्फ तीन सौ सिविल सर्वेंट देश मे रह जाते। अंग्रेजी फौज, जो बगावत या विद्रोह के समय देश को सम्हालती, वर्षों की लडाई के बाद घर वापस जाने के लिए बेकरार थी। और सबसे बडी बात तो यह थी कि जीत के बावजूद लडाई के बाद ब्रिटेन सत्ता और प्रतिष्ठा बहुत कमजोर हो गई थी। एशिया की लडाइयों ने ब्रिटेन की कमजोरी साफ जाहिर कर दी थी। सिंगापुर, बर्मा और जापानियों द्वारा ब्रिटेन के सबसे अच्छे जहाज डुबा देने के बाद ब्रिटेन फिर कभी एशिया में उस शक्ति और प्रभाव का परिचय नहीं दे सकता था जिसने एक आदमी के सहारे लाखों आदमियों पर राज्य करना सम्भव बनाया था।

1945 के बाद, भारत मे जो लोग थे,वे बडे ही प्रभावशाली थे लेकिन उनका प्रभाव उनकी होशियारी पर निर्भर था, शक्ति पर नही; उनकी सद्भावना पर निर्भर था, राष्ट्रीयता पर नहीं; उनके व्यक्तिगत सम्मान पर निर्भर था, किसी जमाने की सर्वशक्तिशाली अंग्रेजो सत्ता पर नही। और सारे देश मे उनकी जगह भरने के लिए हिन्दुस्तानी तैयार थे।

फिर भी अंग्रजी जनता के बीच ऐसी सद्भावना थी—लडाई के जमाने मे उन्होंने जो दु ख-दर्द और मजबूरियाँ झेली थी, उनको ध्यान मे रखते हुए, यह अजीब प्रतिक्रिया थी कि हिन्दुस्तान को आज़ाद करने का सवाल एक मजबूरी की शक्ल मे उनके सामने कभी नही आया बल्कि स्वत स्फूर्त रूप मे। पर उन्होंने हिन्दुस्तान की जनता को उसी तरह आज़ाद देखना चाहा जैसे वे आज़ाद थे। बिलकुल उस सीधे-सादे बच्चे की-सी हरकत थी जो पिंजडे म बन्द एक चिडिया देखता है और दरवाजा खोल देना चाहता है ताकि चिडिया उड सके, आज़ाद हो जाय। 1945 मे जब ब्रिटिश सरकार ने यह घोषणा की कि हिन्दुस्तान को आज़ाद करना उनके प्रोग्राम का बडा अहम हिस्सा था तो वह ब्रिटिश जनता से किसी भी मानी मे आगे कदम नही बढ़ा रही थी। हाँ, यह दूसरी बात है कि विरोधी सदस्यो के मुकाबले उसके कदम आगे हो।

लेकिन आज़ादी किसके लिए? किन परिस्थितियो म?

लडाई खतम होने के बाद हिन्दुस्तान दो हिस्सों म नहीं बँटा था बल्कि दो दलो मे। दुनिया की आबादी का लगभग पाँचवाँ हिस्सा, हिन्दुस्तान की 350,000,000 जनता अनेक भाषाएँ बोलती थी और लगभग हर तरह के धार्मिक विश्वासवाले लोग इनमे थे। मुख्यत. हिन्दू और मुसलमान थे पर क्रिश्चियन से लेकर सर्वात्मावाद वाले लोग भी इस जमात म थे। लेकिन जहाँ तक यहाँ की राजनीति का सवाल है, मानो उनपर अंग्रजों का हमेशा अधिकार रहा, मुख्यत दो पार्टियो के हवाले थी। सबसे ताकतवर काग्रेस थी। उसका दावा था कि वह धर्म-निरपेक्ष है और सभी धर्मों तथा वर्गों के लोगो का प्रतिनिधित्व करती है। उसके सभापति मुसलमान थे लेकिन उसमे बहुमत हिन्दुओ का था। इसके विरोध मे मुस्लिम लीग थी। वह खुल्लमखुल्ला सिर्फ मुसलमानो का प्रतिनिधित्व करने का दावा रखती थी। लडाई के बाद जो हालत थी उसमे ब्रिटेन की टोरी और लेबर पार्टी या अमेरिका की डेमोक्रेटिक और लिबरल पार्टी मे दोनों दलों की तुलना की कोशिश भी असम्भव है। इन दोनों दलो की स्थिति दो पार्टियो की नही थी जो चुनाव के सहारे सत्ता के लिए कोशिश करती हैं। चूंकि मुसलमाना का हिन्दुस्तान मे अल्पमत था—250,000,000 हिन्दुओ के मुकाबले 10 000,000 मुसलमान—अंग्रेजो ने इनकी अलग चुनाव-लिस्ट तैयार की थी। इसका मतलब यह था कि अपने अधिकाश सदस्यो और मददगारो के कारण, जो कि हिन्दू थे, काग्रेस सभी प्रान्तो म बाजी मार लेती थी। इसके साथ-साथ काग्रेसी मुसलमानो को मुस्लिम क्षेत्र मे मुस्लिम लीग के खिलाफ खडा कर, कम-से-कम 1946 तक, काग्रेस ने कुछ हद तक साबित किया कि वह सचमुच धर्म-निरपेक्ष है और सभी हिन्दुस्तानियो का, चाहे वे जिस धर्म या जाति के हो, प्रतिनिधित्व करती है।

लेकिन 1946 मे यह कहा जा सकता था कि लगभग 10% मुसलमान मुस्लिम लीग और उसके सर्वशक्तिमान नेता मुहम्मदअली जिन्ना के साथ थे। उत्तर-पश्चिम सीमात प्रदेश म काग्रेसी मुसलमानो की सरकार थी लेकिन बडी ही मुसीबत के साथ। मैंने पहले ही कहा है कि काग्रस के सभापति भी मुसलमान ही थे—मौलाना अबुल-कलाम आजाद। लेकिन अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व और भौतिक तथा मनोवैज्ञानिक दबाव के कारण मुहम्मदअली जिन्ना सभी झिझकनवाले मुसलमानो को भी अपने झण्डे के नीचे इकट्ठा कर रहा था।

काग्रस पार्टी की ही तरह मुस्लिम लीग भी अग्रेजी शासन से आजादी चाहती थी। लेकिन जहाँ काग्रस का नारा 'अग्रेजो, भारत छोडो' था, वही मुस्लिम लीग का नारा था 'बँटवारा करो और तब छोडो'। दूसरे शब्दो म उन्हे सिर्फ अग्रेजी राज्य से ही नहीं बल्कि हिन्दुओ से भी आजादी चाहिए थी। उनका दावा था कि हिन्दुओ का दबाव बहुत अरसे से बना था और इसम मुसलमानो का बुरी तरह शोषण हुआ था। मुस्लिम लीग की इमारत का सबसे दृढ स्तम्भ था देश का बँटवारा—पाकिस्तान का निर्माण, हिन्दुस्तान के उन हिस्सो को लेकर जहाँ मुसलमानो का बहुमत था यानी बगाल, पजाब, सिंध और उत्तर-पश्चिम सीमात प्रदेश।

काग्रस पार्टी का कोई नेता इस नीति को आखिर तक कोई महत्त्व नहीं देता था। जिन्ना के लक्ष्य को यानी पाकिस्तान को मानने का मतलब था यह मान लेना कि मुसलमान न सिर्फ दूसरे धर्म के अनुयायी थे बल्कि उनकी जाति भी दूसरी थी। और काग्रस के सभी नेता—आजाद, गाधी, नेहरू, पटेल—हमेशा कहते थे कि यह बात नहीं है। अधिकाश मुसलमान या तो मुगल आक्रमणकारियो द्वारा इस्लाम धर्म मानने के लिए मजबूर किए गए थे या इसलिए कि हिन्दू समाज के गला घोटनेवाले फदे की अपेक्षा अछूतों या नीच वर्ग के लोगों के लिए मुसलमानी कानून ज्यादा आजादी देता था। नेहरू ने यह बताया था कि खुद जिन्ना सिर्फ दो पुश्त का मुसलमान था। उसके दादा हिन्दू थे। काग्रस नेताओं का कहना था कि पाकिस्तान का नारा मन-गढ़त था, नकली था। जिन्ना ने यह नारा सिर्फ सत्ता के लोभ म लगाया था, सिर्फ काग्रस से बदला लेने के लिए (जिन्ना किसी समय काग्रस का सदस्य था लेकिन नेतृत्व नहीं मिलने के कारण इस्तीफा दे बैठा था)।

लेकिन चाहे मुस्लिम लीग का अपने पाकिस्तान का दावा नैतिकता की दृष्टि से ठीक हो या गलत, अग्रजो ने, जिनका काम था हिन्दुस्तान को आजादी देना, इसे सही माना। काग्रस का कहना था कि राजनीतिक दृष्टि म यह 'सुविधाजनक' था इसीलिए अग्रजो ने ऐसा किया। जब तक हिन्दुस्तान हिन्दू-मुस्लिम झगड़े में उलझा है अग्रेज कह सकते हैं— हिन्दुस्तान को कैसे आजादी दूँ। उन्हें तो खुद पता नहीं कि आजादी की शक्ल क्या होगी।' अगर हम काग्रस का दृष्टिकोण मान लें और पूरे हिन्दुस्तान को आजादी दें तो मुसलमान बगावत करेंगे और गृह-युद्ध होगा। अगर पाकिस्तान मान लें तो काग्रस अपनी पूरी ताकत स इसके खिलाफ लड़ेगी। काग्रस ने यह इलजाम लगाया कि भारत के अग्रेज जान-बूझकर मुस्लिम लीग की मदद कर रहे हैं ताकि

झगड़ा बना रहे और साथ ही उनका साम्राज्य भी।

यह बिलकुल सही है कि हिन्दुस्तान में बहुत सारे ऐसे अंग्रेज अफसर थे, और इनमें कुछ बहुत बड़े ओहदों पर थे, जो अंग्रेजी राज का अन्त नहीं देखना चाहते थे। उसे बचाने के लिए हर तरह की चालबाजी के लिए तैयार थे ताकि अंग्रेजी साम्राज्य और उनकी नौकरी बनी रहे। एक प्रमुख प्रान्त के अंग्रेज गवर्नर ने शिमला में एक हिन्दू-मुस्लिम कान्फ्रेंस को तहस-नहस कर दिया जिससे हिन्दुओं और मुसलमानों का समझौता हो चला था। पहले तो उसने जिन्ना को कुछ चालबाजियाँ सिखाईं और फिर वायसराय पर अपने प्रभाव के कारण उन चालबाजियों को कामयाबी दिलाई।

यह भी सही है कि हृदय से अधिकांश अंग्रेज सिविल सर्वेंट मुसलमानों के पक्ष में थे। मुसलमानों के साथ उन्हें ज्यादा आसानी थी। वह कम उद्दंड था और ज्यादा मिलनसार (हिन्दू कहेंगे कि गुलामी उनमें ज्यादा थी)। एक अंग्रेज मुसलमान के घर जा सकता था, बिना किसी परेशानी के उनके साथ खा सकता था। हिन्दू के घर में तो पीछे चलकर शुद्धि का सिलसिला जारी होता था क्योंकि विदेशी के कारण घर अपवित्र हो गया। अंग्रेजों को यह शक था कि हिन्दुओं के साथ उनका मिलना-जुलना सिर्फ ऊपरी सतह तक ही सीमित था, क्योंकि वे अन्दर से नफरत करते थे। माना यह भी ठीक है कि कांग्रेसी नेता जात-पाँत की प्रथा को नफरत की नजर से देखते थे। अंग्रेजों को शक था कि अधिकांश हिन्दू उन्हें नीची नजर से देखते थे, उन्हें अपवित्र मानते थे। बहुत कम अंग्रेजों की समझ में यह आता था कि अधिकांश हिन्दुओं की ऐसी भावना उनके अंग्रेज होने के कारण नहीं थी बल्कि इसलिए कि वे शासक थे।

लड़ाई के दिनों में अंग्रेज अफसरों के दिल में मुसलमानों के प्रति सद्भावना सबसे ज्यादा बढ़ी क्योंकि घटनाओं ने उन्हें उकसाया। जब लड़ाई शुरू हुई तो कांग्रेस ने मदद नहीं दी और मुस्लिम लीग तुरन्त सहायता के लिए तैयार हो गई। कांग्रेस के ऐसे रुख के लिए कारण भी अच्छे और दृढ़ थे। क्योंकि 1939 में वायसराय ने न तो जनता से सलाह ली और न कांग्रेस से, सिर्फ एक एलान द्वारा भारत को भी लड़ाई में शामिल कर दिया। कांग्रेस यह कह सकती थी कि जब उन्हें खुद ही आजादी नहीं दी गई तो यूरोप में दूसरे देशों को आजादी की लड़ाई में घसीटने का ब्रिटेन को क्या हक था। लेकिन पीछे चलकर 1942 में जब जापान ने हिन्दुस्तान का दरवाजा खटखटाया और उसकी सुरक्षा खतरे में थी, तब भी कांग्रेस लड़ाई से अलग ही रही। अंग्रेज अफसरों के लिए यह बात जरा बर्दाश्त के बाहर हो रही थी कि हिन्दू सिर्फ उनके विरोध के कारण जापानी आक्रमण का स्वागत कर सकते हैं। हिन्दुस्तान गांधी-जैसे कांग्रेसी नेता के हाथ में हो इस विचार से ही वे घबराते थे। मानो गांधी ने अंग्रेज जनता के नाम सन्देश भेजा था कि जर्मन नात्सीवाद और इटालियन फासिज्म से उसे नफरत है लेकिन उम्मीद है कि बिना लड़ाई के भी दोनों का विरोध सम्भव हो सकेगा। फिर मुस्लिम लीग को गले लगाना उनके लिए अस्वाभाविक नहीं था क्योंकि न सिर्फ दिल खोलकर मुस्लिम लीग ने लड़ाई की ताईद की बल्कि अपने लोगों को फौज में भर्ती होकर लड़ने के लिए भी बढ़ावा दिया। दरअसल हिन्दुस्तानी फौज के 65% जो

उत्तरी अफ्रीका, इटली, मलाया और बर्मा में लड़ रहे थे, मुसलमान थे। यानी फौज में हर सात हिन्दू के मुकाबले तेरह मुसलमान थे हालाँकि देश में चौबीस हिन्दू के मुकाबले सिर्फ नौ मुसलमान थे।

इसलिए अधिकांश अंग्रेज अफसर, खासकर 1942 के बाद, मुसलमानों के पक्ष में तो थे लेकिन क्या वे पाकिस्तान के भी हिमायती थे?

पाकिस्तान की बात ही दूसरी थी। जैसा कि मैंने पहले ही कहा है, कांग्रेस के इस इलजाम में कुछ तथ्य हो सकता है कि कुछ अंग्रेज अफसर हिन्दू मुस्लिम झगड़े को उकसाते रहना चाहते थे ताकि स्थिति ज्यों-की-त्यों बनी रहे। लेकिन अंग्रेजी सरकार को चलानेवाले अधिकांश अंग्रेज अफसरों में न सिर्फ बड़ी ही कुशल कार्य-क्षमता और जाँनिसारी थी बल्कि बड़ी सद्भावना भी थी। हो सकता है कि इस देश के भविष्य के बारे में उन्हें अन्देशा रहा हो कि यहाँ की बागडोर उनके हाथ से निकल जाए। आखिर वे भी आदमी ही थे और उनके लिए यह सोचना अस्वाभाविक नहीं था कि उनके जाने के बाद जो आएँगे वे इतनी अच्छी तरह काम नहीं सम्भाल सकेंगे, इतना कुछ नहीं दे सकेंगे। लेकिन उनमें से सब इस बात को मान चुके थे कि बहुत जल्द एक दिन अंग्रेजों के हाथ से यह देश निकल जाएगा। बिरला ही कोई ऐसा होगा—और निश्चय ही अपनी नौकरी की परम्परा के बाहर का—जो देश के बँटवारे की बात बिना घबराहट के सोच सकता हो क्योंकि यह बँटवारा बनावटी था आर्थिक दृष्टि से, भौगोलिक दृष्टि से, समाजशास्त्र की दृष्टि से भी। काफी खून-पसीना एक कर, काफी दिमाग खर्चकर अंग्रेजों ने देश की एकता कायम की थी। हालाँकि यह ठीक है कि ब्रिटेन का खजाना इससे अच्छी तरह भरा था। लड़नेवाले कबीले, अलग-अलग धर्म, आपसी झगड़ोवाले लोग, उद्दण्ड राजे-महाराजे—सबको मिलाकर उन लोगों ने एक ऐसा राष्ट्र गढ़ा था जो चीन को छोड़कर दुनिया के सभी राष्ट्रों से बड़ा था।

उनके काम का अन्त यह हो, देश दो अलग राष्ट्रों में बँट जाय—यह ऐसी बात नहीं थी जो कोई ईमानदार अंग्रेज अफसर बिना घबराहट और परेशानी के सोच भी पाता। मुसलमानों को पसन्द करना या नहीं करना यह बात अलग है, देश को बाँटने का उनका इरादा हजम नहीं हो सकता था। इसकी सम्भावना का सामना करने में भी अंग्रेज अफसर इतने झिझकते थे कि मार्च 1946 तक दिल्ली के सरकारी महकमों में एक भी कागज ऐसा नहीं था जो बँटवारे की सूरत में काम आने के लिए तैयार किया गया हो। हिन्दुस्तान के पूर्वी कमांड के जनरल कमांडिंग अफसर लें० जनरल सर फ्रांसिस टकर ने उसी महीने एक कागज अपनी ही तरफ से तैयार कर पेश किया था। उनका दृष्टिकोण सिर्फ एक सिपाही का था। लेकिन उनने यह कहा था कि देश को जल्दी आजादी दी गई तो बँटवारा लाजिमी होगा और ऐसी सूरत में कुछ तैयारियाँ करनी होंगी। दिल्ली-स्थित युद्ध विभाग के सेक्रेटरी मि० एम्रा इरस्क ने जवाब में लिखा (9 अप्रैल, 1946)—'हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की सुरक्षा पर आपका नोट काफी दिलचस्प है। इसका असली पहलू भी काफी अच्छा है···

महात्मा गांधी के साथ पंडित नेहरू

बदकिस्मती यह है कि किस हद तक अमली हालात को तरजीह देनी चाहिए और भावनाओं या दुनियादारी के लिए किस हद तक उनको नजर अन्दाज करना चाहिए, यह फैसला आपके और मेरे हाथ के बाहर है। लेकिन, बहुत ही जल्द, देखा जाएगा।' उस नोट पर कोई कार्रवाई नही की गई। हाँ, इडस ने उसे अपने ऊपरवालो के पास जरूर भेज दिया। आगे चलकर हम देखेंगे कि उस पर अगर कोई कार्रवाई की गई होती तो 18 महीने बाद 600,000 जानें बच जाती।

1946 मे फील्ड मार्शल लार्ड वेवेल वायसराय था।

इस बनावटी तौर पर धार्मिक विश्वास और राजनीतिक महत्वाकाक्षा के गलत सघर्षो (वे अपने लिए सच्चे हो, पर थे गलत रास्ते पर) से हिन्दुस्तान का बँटवारा हो, इसकी सम्भावना भी उसके लिए बडी ही घबराहट और परेशानी की चीज थी। इतिहास के विद्यार्थी की हैसियत से उसका विश्वास था हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के साथ-साथ देश की हालत कम से-कम बालकन क्षेत्र की-सी तो हो ही जायगी, अगर वह टुकडे-टुकडे न भी हो। एक बार धर्म को बँटवारे की बुनियाद मान लिया गया तो मुसलमानो की तरह सिख भी एक दिन बँटवारा कराएँगे और तब हिन्दुस्तान भाषावार टुकडो मे बँट जायगा। युद्ध के विद्यार्थी की हैसियत से उसका विश्वास था कि उसका बँटवारा देश की सुरक्षा को खतरनाक तरीके से कमजोर कर देगा और उत्तर की ओर से रूस तथा पूर्व की ओर से चीन के हमले का रास्ता तैयार कर देगा। और सिपाही की हैसियत से उसने महसूस किया कि हिन्दुस्तानी फौज-जैसी सुरक्षा और लडाई का बढ़िया साधन तहस-नहस हो जायगा।

पहली नजर मे तो फील्ड मार्शल लार्ड वेवेल का हिन्दुस्तान के वायसराय पद पर नियुक्त होना कुछ अजीब-सा लगा। मोर्चे के कमाण्डर की हैसियत से उसका ब्यौरा, चाहे वह जितना तेज रहा हो, असफलता और घाटे का ही था। उसने ही अपने नेतृत्व मे अफ्रीका और एशिया से फौज को पीछे हटते देखा था। यह ठीक है कि उसके पास जो साधन थे उसम कोई सिपाही उससे ज्यादा नही कर सकता था। फिर भी हार की जिम्मेदारी उसीके गले पडी थी।

वेवेल का हमेशा यही कहना था कि वह एक सादे सिपाही के अलावा और कुछ नही था जो थोडा-बहुत लिखता था, कुछ पढता था और कुछ सोचता था। अगर राजनीतिज्ञ के गुण ये हैं कि उसका दिमाग बहुत ही लचीला हो, वह दूर की देख सके और हिम्मत के साथ कुछ कर सके तो वह उसस बहुत दूर था। लेकिन उसमे एक गुण था जो हिन्दुस्तान मे बडा दोष गिना जा सकता था क्योकि यहाँ लगातार बात-चीत, बहस-मुबाहसे, समझौते की जरूरत थी। वह बात नहीं कर सकता था।

जहाँ ऐसे राजनीतिज्ञ भरे पडे हो जिन्हे यह भी पता नहीं कि कब उन्हे चुप रहना चाहिए, उसके लिए मुँह खोलना असम्भव मालूम होता था। हिन्दुस्तानी नेता, हिन्दू और मुसलमान दोनो, बात करने म हातिम थ। राल की तरह उनके मुँह से शब्द टपकते थे। जब वे अच्छा बोलते तो कवियो की तरह और बुरा बोलते तो वैरास के पादरियो की तरह, लेकिन एक बात निश्चित थी, उनके पास शब्दो या उक्तियों

का कभी घाटा नहीं हुआ। गांधी, जिन्ना, नेहरू, लियाकत एक-एक कर सभी मिलने आते और पेचीदार दलीलों की झड़ी लगा जाते।

संयोग की बात कि दोनों ओर के सभी नेता वकील थे। सिपाही की हैसियत से वेवेल वकीलों का विश्वास नहीं करता था। उसकी खास मुसीबत गांधी था। हिन्दुस्तान के लिए (हिन्दुस्तान के बाहर भी बहुतों के लिए) गांधी संत था लेकिन वायसराय के लिए वह बड़ा ही खिझानेवाला आलोचक था। वेवेल इतना समझदार तो था कि गांधी की अप्रतिष्ठा न करता। गांधी के प्रभाव और उसकी ताकत का वेवेल को पता था। जनता के लिए गांधी के अथक परिश्रम की वह तारीफ भी करता था। लेकिन आमने-सामने बातचीत का असर परेशानी और चिढ़ का होना। उसकी शिकायत थी कि गांधी को साफ-साफ किसी बात या उसके इरादे के बारे में एक जगह घेरना बहुत ही मुश्किल था। गांधी से एक मुलाकात के बाद उसने कहा—'गांधी ने आधे घण्टे तक बातचीत की। लेकिन मुझे अब भी ठीक-ठीक मालूम नहीं कि वह क्या कहना चाहता था। उसका हर वाक्य कम-से-कम दो अलग मानी रखता था। मुझे बड़ी खुशी होगी अगर कोई मुझे यह यकीन दिला दे कि वह खुद जानता था कि क्या कह रहा है। मुझे तो इसमें भी शक है।'

ऐसा भी एक समय आया जब गांधी से बातचीत की सम्भावना ने उसे इतना परेशान कर दिया कि वह सारी रात सो नहीं सका। उसके एक सेक्रेटरी ने बताया—वह (वेवेल) बैठा होता जब यह छोटे कद का आदमी (गांधी) बोलता जाता। उसके चेहरे पर सिर्फ वेदना का भाव दिखाई पड़ता। वह उँगलियों में पेंसिल उलझाता रहता, धीरे-धीरे उसकी अकेली आँख चमकने लगती और आखिर में वह सिर्फ यही कह पाता—'अच्छा, धन्यवाद।'[1]

लेकिन वेवेल के दोषों की सूची चाहे जितनी लम्बी हो—उसका मुँह बन्द रखने का तरीका, राजनीतिक लचीलेपन का अभाव, लजीलापन, बहस और दलीलों के समय उसका अनगढ़पन—उसमें एक बहुत बड़ा गुण था जिसकी उस समय हिन्दुस्तान में बड़ी जरूरत थी। हिन्दुस्तान की आजादी के नाटकों में वह अकेला अभिनेता था जो हमेशा सच बोलता था। मेरा आशय यह नहीं है कि बाकी झूठे थे। वे राजनीतिज्ञ और कानूनदाँ थे। उनके लिए सच के बहुत सारे पहलू थे। एक बार गांधी से अपनी नीति स्पष्ट करने को कहा गया। गांधी ने जवाब दिया—'मैं पाँच पंक्तियों में लिख देता हूँ।' संवाददाता पंक्तियाँ लेकर चला आया लेकिन उसे बाद में पता चला कि हर पंक्ति दूसरे की विरोधी है। नेहरू का बड़े ही विश्वास से बोलने और लिखने का तरीका था, लेकिन (जैसाकि हम आगे चलकर देखेंगे) हमेशा एक-न-एक रास्ता खुला ही रखता था और जिन्ना जब किसी चीज की माँग करता और उसे मिल जाती तो उस समय ऐसा लगता कि वह सन्तुष्ट होकर गया है। लेकिन फिर लौटकर वह नई माँगें रखता।

---

1 लेखक के साथ एक इन्टरव्यू में यह बताया गया था।

जब वेवेल ने कहा कि यह हिन्दुस्तान को आजाद देखना चाहता है तो यह सिर्फ उसकी नीयत नहीं थी, उसने इसे हासिल करने की ईमानदारी से कोशिश भी की। जिन बारीकियों की हिन्दुस्तानी नेता उम्मीद करते थे, शायद वे न हों; शायद वह बाजारू सौदेबाजी तक कभी न उतरा हो; शायद किसी मौके का फायदा उठाने में उसने जल्दी न की हो लेकिन लक्ष्य के बारे में वह हमेशा चौकस था और आखिर तक उसे हासिल करने के लिए वह तुला हुआ था।

1946 की गर्मियों में वह अपने लक्ष्य के इतने करीब था कि उसके बाद की घटनाएँ बड़ी ही दर्दनाक मालूम होती हैं। 15 मार्च, 1946 को क्लेमेंट (अब अर्ल की उपाधि से विभूषित) एटली ने हाउस आफ कामन्स में यह घोषणा की कि लेबर सरकार ब्रिटेन और हिन्दुस्तान तथा कांग्रेस और मुस्लिम लीग के गतिरोध को खतम करने की सरतोड़ कोशिश के लिए एक केबिनेट मिशन हिन्दुस्तान भेज रही है। लार्ड वेवेल के नाम एक निजी तार में मि० एटली ने यह स्पष्ट किया कि लेबर सरकार वायसराय को नजरअन्दाज करना नहीं चाहती लेकिन यह महसूस करती है कि ऐसा दल जो वहीं फैसला कर सके, समझौते की बातचीत को काफी सहारा देगा और हिन्दुस्तानियों के अविश्वास को दूरकर यह साबित कर देगा कि इस बार हम लोग इसे कर गुजरना चाहते हैं। यह ध्यान रहे कि चर्चिल की सरकार ने 1942 में जो क्रिप्स मिशन भेजा था उसे ये अधिकार नहीं थे। उसने वायसराय को दिल खोलकर मदद करने के लिए लिखा था। इस पर वेवेल की आलोचना थी—'वह क्या समझते थे कि मैं इसका विरोध करूँगा ? आखिर मैं किस लक्ष्य की पूर्ति के लिए काम कर रहा हूँ।'

केबिनेट मिशन के तीन सदस्य थे—सर स्टैफोर्ड क्रिप्स, भारत के सेक्रेटरी लार्ड पेथिक लारेंस और मि० ए० वी० अलेक्जेण्डर। क्रिप्स राजनीतिक सिद्धान्तों का पंडित था, बहुत ही तेज दिमाग का आदमी जिसने हिन्दुस्तान की समस्या का भावनात्मक पहलू के अलावा बाकी सब पहलुओं से अध्ययन किया था। कुछ लोगों की तो राय थी कि सिर्फ इसी एक कारण से वह हिन्दुस्तान की समस्या को कभी ठीक-ठीक नहीं समझ पायेगा। वह योजना तैयार करने में विशेष रूप से पारंगत था। सभी बातों को उसने ध्यान में रखा—धार्मिक विरोध, क्षेत्रीय स्पर्धा, राजनीतिक दृष्टिकोण, जातीय मान्यताएँ आदि। लेकिन ऐसे लोग भी थे जो यह महसूस करते थे कि वह मानवीय पहलू का महत्त्व हमेशा भूल जाया करता था। उसे हमेशा निराशा होती कि उसकी जो योजनाएँ कागज पर एकदम सही मालूम होती थीं, अमल में कभी कारगर नहीं साबित होती थीं।

लेकिन इस बार उसके साथ एक ऐसा आदमी था जिसे हिन्दू-मुसलमान, जो भी मिला, पसन्द करता था। दोनों ओर के लोगों को लार्ड पेथिक लारेंस न सिर्फ अच्छा लगता था बल्कि प्यारा भी लगता था क्योंकि आईने की तरह उसका दिल साफ था, वह हिन्दुस्तान को प्यार करता था, हिन्दुस्तानियों के साथ मिलना-जुलना उसे अच्छा लगता था और हिन्दुस्तान की आजादी के लिए हर तरह से मदद करने को वह तैयार था। केबिनेट मिशन मार्च के अन्त में दिल्ली आया जब यहाँ की गर्मी से

चमड़ी और दिमाग झुलसना शुरू हो जाता है। बूढ़ा होने के बावजूद पेथिक लारेंस ने कभी शिकायत नहीं की। 115° के तापमान में वह पसीने से नहाता रहा और एक बार एक अहम कान्फ्रेंस में गर्मी के मारे वह बेहोश भी हो गया था। थोड़ी देर विश्राम कर वह लौट आया और अपनी 'कमजोरी' के लिए उसने माफी माँगी।

कैबिनेट मिशन के आते ही बातचीत शुरू हुई। ए० वी० एलेक्जेण्डर सिर्फ सहयात्री ही रहा। उसका कोई महत्वपूर्ण योगदान नहीं रहा। गम्भीरता से काम करने वाले दो सदस्य थे—क्रिप्स और पेथिक लारेंस और यह जोड़ा तीक्ष्ण बुद्धि और विशाल दृष्टिकोण का अच्छा समन्वय था। पेथिक लारेंस की मानवीयता ने क्रिप्स के सूखे तर्कों को हिन्दुस्तानी नेताओं के लिए खुशनुमा न भी बनाया हो पर तरल तो बना ही दिया।

कैबिनेट मिशन का ध्येय था कि हिन्दुस्तानी नेताओं से बातचीत कर उन्हें आज़ादी की अपनी योजना बनाने को तैयार किया जाय। कुछ ही दिनों में इन तीनों के लिए साफ हो गया कि इस तरह सिर्फ एक गतिरोध ही तैयार हो सकता है। जिन्ना की मूर्खा, घमण्ड और जिद-भरी माँग थी पाकिस्तान या कुछ नहीं। जिन्ना से मुलाकात होते ही वे निराशा से भर गये। जिन्ना हमेशा बढ़िया सिले हुए कपड़ों में आता, उसका दुबला-पतला ढाँचा हमेशा तना हुआ, आँखें साफ और चमकीली और जब दिन की गर्मी में सभी पसीने से तर होते तो भी उसकी चमड़ी सूखी हुई। एलेक्जेण्डर ने एक बार कहा था, 'जहाँ तक मैं समझता हूँ कि वह अकेला आदमी है जो अपना कूलर साथ लिए फिरता है।' दोस्ती की जैसी भी अदाएँ किसीने दिखाई हों, एक क्षण के लिए भी जिन्ना का तनाव दूर नहीं हुआ।

उनको सबसे ज्यादा संतोष कांग्रेस के सभापति मौलाना अबुलकलाम आज़ाद से मिला। उनकी ही तरह वह भी गर्मी से उतना ही परेशान होता था, बात सिर्फ इतनी नहीं थी।[1]

वह मुसलमान था। आज़ादी मिलने पर हिन्दू बहुमत उन्हें कुचल देगा, हिन्दू राज में सताए गए अल्पसंख्यक बनकर रह जाएँगे 90,000 000 मुसलमानों के इस भय से उसे सहानुभूति थी। लेकिन वह यह कभी नहीं मानता था कि जिन्ना की पाकिस्तान की योजना इस समस्या का समाधान थी। कांग्रेस पार्टी के अपने हिन्दू साथियों के साथ सलाह-मशविरा कर उसने अपनी राय कायम की थी कि किस तरह साम्प्रदायिकता खतम की जा सकती और हिन्दुस्तान की एकता बचाई जा सकती है। उसने कई बार कैबिनेट मिशन से बातचीत की और 15 अप्रैल, 1946 को एक

---

1 मौलाना आज़ाद वेवल का बड़ा प्रशंसक था और सिर्फ एक ही आलोचना उसने की थी—शिमले का ठंडक के बजाय दिल्ली का गर्मी में कैबिनेट मिशन की बातचीत की जिद। 'मेरा कहना था कि उनके लिए दिल्ली में कोई दिक्कत नहीं थी क्योंकि वायसराय की कोठी वातानुकूलित थी और वह कभी बाहर जाते ही नहीं थे।'

वक्तव्य प्रकाशित किया, जिसे यहाँ उद्धृत करना जरूरी मालूम होता है क्योंकि आज भारत मे लोग इसे सुविधापूर्वक भूल जाते हैं।

मौलाना आजाद ने लिखा था—

"मुस्लिम लीग की पाकिस्तान वाली योजना पर हर पहलू से मैंने सोचा-विचारा है। हिन्दुस्तानी की हैसियत से देश की पूरी इकाई पर भविष्य मे क्या असर पडेगा, इस पर गौर किया है। मुसलमान की हैसियत से, हिन्दुस्तान के मुसलमानो की किस्मत पर इसका क्या असर पड सकता है, इसका अन्दाजा लगाया है। इस योजना के सभी पहलुओ पर गौर करने पर मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि यह न सिर्फ पूरे हिन्दुस्तान के लिए नुकसानदेह है बल्कि मुसलमानो के लिए खास तौर पर है। और दरअसल इससे तो जो मसले सुलझते हैं उससे कही ज्यादा पैदा होते हैं।

मुझे यह कहना ही पडता है कि 'पाकिस्तान' नाम ही मेरी तबियत के खिलाफ है। इसका आशय है कि दुनिया का कुछ हिस्सा पाक है और बाकी नापाक। इस तरह दुनिया को पाक और नापाक हिस्सो मे बाँटना गैर-इस्लामी है, इस्लाम की रूह को गलत साबित करना है। इस्लाम मे ऐसे बँटवारे की कोई गुजाइश नही क्योकि हजरत मुहम्मद ने कहा है—'खुदा ने मेरे लिए सारी दुनिया ही मस्जिद बनाई है।' इसके अलावा पाकिस्तान की योजना मुझे पराजय का प्रतीक मालूम होती है जो यहूदियो की माँग के नमूने पर तैयार की गई है। यह तो मान लेना है कि पूरे हिन्दुस्तान की इकाई मे मुसलमान अपने पैरो पर टिक नही सकेंगे इसलिए एक सुरक्षित कोने मे सिमटकर उन्हे तसल्ली मिल जाएगी। यहूदियो की एक राष्ट्रीय आवास की माँग के साथ सहानुभूति रखी जा सकती है क्योकि वे सारी दुनिया मे बिखरे पडे हैं और कही के भी अनुशासन म वे अहम पार्ट अदा नही कर सकते। लेकिन हिन्दुस्तान के मुसलमानो की हालत तो बिल्कुल दूसरी है। उनकी सख्या लगभग नौ करोड है और हिन्दुस्तान की जिन्दगी म उनकी तादाद और उनकी खूबियाँ इतनी अहम हैं कि अनुशासन और नीति के सभी सवालो पर बखूबी और पुरअसर तरीके से अपना प्रभाव डाल सकते हैं। कुदरत ने कुछ इलाको म उनको केन्द्रित कर उनकी मदद भी की है।

ऐसी हालत मे पाकिस्तान की माँग म कोई ताकत नही रह जाती। मुसलमान की हैसियत से कम-से-कम मैं तो पूरे मुल्क को अपना समझने का, इसकी सियासी और माली जिन्दगी के फैसले म हिस्सा लेने का हक नही छोड सकता। मुझे तो, जो हमारा बपौती हक है, उसे छोडना और उसके एक टुकडे से तसल्ली करना कायरता का पक्का सबूत मालूम होता है।'

इसके बदले आजाद ने एक फार्मूला तैयार किया था जिसे कांग्रेस की वर्किंग कमेटी से मनवा भी लिया था। इसम पाकिस्तान की योजना की सारी अच्छी बातें तो थी लेकिन उसकी खराबियाँ नही थी। आबादी की अदला-बदली को खासकर बचाया गया था। आजाद के बहुत-से हिन्दू साथियो ने तो नही लेकिन आजाद ने महसूस किया था कि मुसलमानो का एक बडा डर यह था कि अगर पूरे हिन्दुस्तान

की इकाई को आजादी मिली तो केन्द्र का हिन्दू प्रधान अनुशासन अल्पसंख्यक मुसलमानों पर दबाव डालेगा, दखल देगा, बदरघुड़की देगा, आर्थिक दृष्टि से सतायेगा और राजनैतिक तौर पर कुचल देगा। इस डर को दूर करने के लिए उनकी योजना थी कि दोनों पक्ष ऐसा हल मान लें जिसमें 'मुसलमानों के बहुमतवाले प्रदेश भीतरी मामलों में अपने विकास के लिए स्वतन्त्र हों लेकिन साथ ही-साथ जिन मामलों में पूरे मुल्क का सवाल उठता हो, केन्द्र पर अपना प्रभाव डाल सकें।'

आज़ाद ने लिखा —

हिन्दुस्तान की हालत ऐसी है कि केन्द्रीभूत और एकात्मक सरकार कायम करने की हर कोशिश असफल होकर ही रहेगी। इसी तरह हिन्दुस्तान को दो टुकड़ों में बाँटने की कोशिश का भी वही हश्र होगा। इस सवाल के सभी पहलुओं पर गौर करने के बाद मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि इसका सिर्फ एक ही हल हो सकता है जो कांग्रेस फार्मूले में मौजूद है, जिसमें प्रदेश और मुल्क, दोनों के विकास की गुंजाइश है।·· मैं उन लोगों में हूँ जो साम्प्रदायिक दंगों और तलखियों के इस अध्याय को हिन्दुस्तान की जिन्दगी का चन्द रोज़ा दौर समझते हैं। मेरा पक्का विश्वास है कि जब हिन्दुस्तान अपनी किस्मत की बागडोर खुद सम्हालेगा तो यह खतम हो जाएगा। मुझे ग्लैडस्टोन का एक कथन याद आता है—'पानी का भय दूर करना है तो उसे पानी में फेंक दो।' उसी तरह हिन्दुस्तान अपनी ज़िम्मेदारी खुद उठा ले और अपना काम सम्हालने लगे तभी डर और शक का यह वातावरण पूरी तरह दूर होगा। जब हिन्दुस्तान अपना ऐतिहासिक लक्ष्य प्राप्त कर लेगा तो साम्प्रदायिक शक और विरोध का वर्तमान अध्याय भुला दिया जायगा और आधुनिक जीवन की समस्याओं को वह आधुनिक ढंग से सामना करेगा। भेद तो तब भी रहेंगे ही लेकिन साम्प्रदायिक न होकर आर्थिक। राजनीतिक पार्टियों के बीच विरोध भी रहेगा लेकिन वह धार्मिक न होकर होगा आर्थिक और राजनीतिक। भविष्य में गठबन्धन और साझेदारी सम्प्रदाय के आधार पर नहीं, वर्ग के आधार पर होंगी और उसी तरह नीतियाँ निर्धारित होंगी। अगर यह दलील दी जाय कि यह सिर्फ मेरा विश्वास है जिसे भविष्य की घटनाएँ गलत साबित कर देंगी तो मुझे यह कहना है कि 'नौ करोड़ मुसलमानों को कोई नज़रअन्दाज़ नहीं कर सकता और अपने भवितव्य को बचाने के लिए वे काफी ताकतवर हैं।[1]

यह हृदय की वाणी थी। कांग्रेस सभापति के ऐसे विचारों ने वायसराय और कैबिनेट मिशन, दोनों पर गहरा असर छोड़ा। जब उन लोगों ने देखा कि दोनों विरोधी दल आपसी समझौते द्वारा कोई हल नहीं निकाल सकते तो मिशन ने अपनी एक योजना सामने रखी। मूलतः यह आज़ाद के ही प्रस्तावों पर आधारित थी। पूरे देश की इकाई की एक स्वतन्त्र सरकार तो होगी, पर उसके अधीन सिर्फ तीन विभाग होंगे—सुरक्षा, विदेश और संचार-साधन। बाकी के लिए दस तीन अनुशासकीय

1 वायसराय और कांग्रेस के नाम भेजे गए एक मेमोरेंडम (स्मरण-पत्र) से।

भागो में बँटा होगा। पहला भाग (ग्रुप A) वह होगा जहाँ हिन्दू बहुमत में हैं यानी हिन्दुस्तान का अधिकांश हिस्सा। दूसरे भाग में होंगे पजाब, सिंध, उत्तर-पश्चिम सीमांत प्रदेश और ब्रिटिश बलूचिस्तान जहाँ मुसलमानों का बहुमत है (ग्रुप B)। तीसरे भाग में होगा बगाल और आसाम जहाँ मुसलमानों का हल्का बहुमत है (ग्रुप C)। इस तरह अल्पसख्यक मुसलमान घरेलू मामले में खुदमुख्तार होंगे और हिन्दुओं के आधिपत्य से बच जाएँगे।

दोनों पक्षों ने यह योजना मान ली। सभी के अचरज का ठिकाना नहीं रहा, वायसराय और केबिनेट मिशन के लोग खुशी से फूले नहीं समाये। काग्रेस और मुस्लिम लीग, दोनों ने कुछ हद तक अपनी-अपनी सीमाएँ भी रखी थीं, लेकिन दोनों सस्थाओं की कार्यकारिणी ने आगे बढ़ने की स्वीकृति दे दी थी। हालाँकि गाधी काग्रेस के पदाधिकारी नहीं थे, फिर भी सदस्यों पर उनका प्रभाव पहले-जैसा ही मजबूत था। केबिनेट मिशन के प्रस्ताव को उन्होंने कहा था—'दुख-दर्द से भरे इस देश को अभाव और दुख से मुक्त करने का यह बीज है।..... ब्रिटिश सरकार की ओर से केबिनेट मिशन और वायसराय द्वारा प्रकाशित इस परिपत्र की चार दिनों तक गहरी छानबीन करने के बाद मुझे विश्वास हो गया है कि वर्तमान परिस्थिति में इससे अच्छा वे कुछ नहीं कर सकते थे।'

वातावरण में एक तरह की आशा थी। भारत के सभी हिस्सों से काग्रेस के प्रतिनिधि वार्षिक कार्फ्रेंस के लिए इकट्ठे हुए और आजाद के एक प्रभावशाली भाषण के बाद पार्टी के वामपक्षियों का विरोध समाप्त हो गया और मिशन की आजादी की योजना मान ली गई। जहाँ तक मुस्लिम लीग का सवाल था, कार्फ्रेंस की जरूरत ही नहीं थी। मि० जिन्ना का प्रभाव सर्वशक्तिशाली था और उसने यह बता दिया कि मिशन की योजना मुसलमानों के लिए पाकिस्तान के सबसे अधिक निकट थी।

आखिरकार शांति ? 150 वर्ष की ब्रिटिश हुकूमत से आजादी ? साम्प्रदायिक दगे और आपसी लूटमार से मुक्ति ? लगता ऐसा ही था।

ठीक इसी समय दूध के मटके में खट्टा पड गया।

यह हमेशा याद रखना चाहिए कि मुसलमान नेता मुहम्मदअली जिन्ना काग्रस के इरादों और लक्ष्य को हमेशा गहरे शक की नजर से देखता था। उसके हिंदू-विरोधी उसे बडा ही सिडी, उद्दड और टेढा आदमी मानते थे। शायद यह ठीक भी हो। लेकिन उसका भी विश्वास था और निराधार नहीं था कि काग्रस का लचीलापन एक खास ढग का था। पिछले वर्षों में मुस्लिम लीग ने काग्रस के साथ राजनीतिक व्यवस्था की थी। लडाई के पहले उत्तर प्रदेश की तरह एक सम्मिलित आधार पर चुनाव लडा गया था ताकि चुनाव जीतने पर मुस्लिम लीग को मन्त्रिमण्डल में उचित हिस्सा मिले। लेकिन जहाँ-जहाँ मुस्लिम लीग की मदद के बिना काग्रस का बहुमत हुआ और मुस्लिम लीग की मदद की जरूरत नहीं थी, काग्रेस ने राजनीतिक व्यवस्था को तोडकर मुस्लिम लीग को बहुत ही महत्त्वहीन एकाध जगह दी या वह भी नहीं।

जिन्ना ने केबिनेट मिशन की योजना मानने की मंशा जाहिर तो की लेकिन उसकी हालत रेस के उस घुड़सवार की थी जिसने अपना दो-चार पौंड वजन कम किया था ताकि रेस में शामिल हो सके लेकिन भूखे और दुबले-पतले ऐसे घुड़सवार की ही तरह वह भी भरा और तना हुआ था। रेस की यह चर्चा उसके सामने की जाती तो उसे गहरा धक्का लगता। लेकिन बात बेजगह नहीं है। उसको शक था कि कुछ कांग्रेस-सदस्य मुस्लिम लीग को धोखा देने पर तुले हुए थे और वह तुला हुआ था कि किसी भी कीमत पर यह नहीं होने दिया जायगा। जिन्ना के मतानुसार केबिनेट मिशन की योजना मान लेना ही बहुत बड़ा समझौता था। अगर इसे अमल में लाया गया तो एक स्वतन्त्र राज्य पाकिस्तान की बात ही छोड़ देनी पड़ेगी। वह और उसके साथी मुसलमान अपने प्रदेशों में क्षेत्रीय स्वतन्त्रता तो पा जाएँगे लेकिन फिर भी हिन्दुओं के प्रभुत्ववाले राज्य का अंश होकर ही उन्हें रहना पड़ेगा और वह तुला हुआ था कि ऐसी हालत में मुसलमानों के हित की रक्षा के लिए वह सब कुछ करेगा। कांग्रेस पार्टी ने अपनी कांफ्रेंस में केबिनेट मिशन की योजना भारी बहुमत से स्वीकार की थी।

लेकिन क्या वे अपने वायदे पर कायम रहेंगे?

केबिनेट मिशन इंग्लैंड वापस गया इस आशा से कि एक अच्छा काम सम्पन्न हुआ और इस देश का भविष्य आशाजनक है। जिस तरह आजाद ने मिशन की योजना को कबूल करवाया, इसके लिए लार्ड पेथिक लारेंस और सर स्टैफोर्ड क्रिप्स ने मुबारकबाद और शुभकामनाओं का उसे तार भेजा क्योंकि दोनों का विश्वास इतना दृढ़ था कि आगे का रास्ता बिलकुल साफ हो गया। शायद उन लोगों ने थोड़ी जल्दी कर दी। उसी कांफ्रेंस में, जिसमें मिशन की योजना मान ली गई, कांग्रेस का सभापति बदला। कांग्रेस के दक्षिण पक्ष के लोग सरदार वल्लभभाई पटेल के सभापति होने की सिफारिश कर रहे थे। खुद आजाद (जिसका उसे आजीवन दुख रहा) ने फैसला किया कि पंडित जवाहरलाल नेहरू दोनों में अच्छा चुनाव होगा और सभी सदस्यों के पास उन्होंने एक परिपत्र भेजा कि नेहरू को सभापति चुना जाय। दरअसल हुआ भी यही।

कांग्रेस हाईकमांड के जिन सदस्यों ने केबिनेट मिशन की योजना मानने के पक्ष में वोट दिया था, नेहरू भी उनमें एक था। लेकिन बाद की घटनाएँ इशारा करती हैं कि उस समय नेहरू ने सिर्फ इसलिए मान लिया था कि गांधी उसके पक्ष में था। अगर उस समय विरोध होता तो नेहरू वोट में हार जाता। जब वह सभापति हो गया तो उसने अपने हार्दिक विचार व्यक्त किए। जिस तरह उसका दिमाग काम कर रहा था उससे साफ इशारा है कि इतनी देरी के बावजूद उसे इस बात का एहसास ही नहीं था कि मि० जिन्ना ने मुसलमानों के नेता की हैसियत से अपना प्रभाव किस हद तक बढ़ा लिया था। उसने एक बार शासन आजमाने का फैसला किया। जिन्ना के प्रति उसकी भावना छिपी नहीं थी (दोनों का यही हाल था)। मुस्लिम लीग और उसके नेता को वह इतना नापसन्द करता था कि उसकी शासन का भी

सही अन्दाज नही था। मेसन के साथ बातचीत के दौरान में मुस्लिम लीग के बारे में उसने एक बार कहा था—'यह संस्था बहुत ताकतवर और बहुत कमजोर, दोनो थी। अपने समर्थकों को सड़क पर निकालना, मुसीबत खड़ी करना, हिंसा की धमकी देना इसके लिए हमेशा सम्भव था। लेकिन सिवा हिन्दू-विरोधी नकारात्मकता के इसके पास विचार का और कोई स्तम्भ नही था।' जिन्ना के बारे में उसने कहा था—'जानते हैं, जिन्ना के कांग्रेस छोड़ने का असली कारण क्या था? 1920 के करीब कांग्रेस का आधार एकाएक व्यापक हो गया और जनता को यह संस्था भाने लगी। यह जिन्ना को अच्छा नही लगता था। कांग्रेस सिर्फ सफेदपोशों की संस्था नही रह गई थी। जिन्ना हमेशा सोचते थे कि कांग्रेस की सदस्यता सिर्फ उन्ही तक सीमित रहनी चाहिए जो मैट्रिकुलेशन पास हों। यह स्तर किसी भी देश के लिए जरा ज्यादा ही पड़ता लेकिन हिन्दुस्तान के लिए तो इसका मतलब था कि जनता कभी इसमें आ ही नही सकती थी। उनकी नाक बहुत लम्बी थी। जब किसान कांग्रेस में आने लगे तो वह नाराज हुए। ये तो अंग्रेजी भी नही बोल सकते थे। जो किसानों से कपड़े पहनते थे, यह संस्था उनके लिए नही थी।' मुस्लिम लीग के नेतृत्व के बारे में नेहरू ने कहा था—'मुसलमानों के बारे में उनके हृदय में कोई सच्ची भावना नही थी। वह सच्चे मुसलमान थे ही नही। मैं मुसलमानों को जानता हूँ। मैं कुरान को जानता हूँ। जिन्ना तो नमाज भी नही पढ़ सकते थे और कुरान भी उन्होंने नही पढ़ी थी। लेकिन जब मुस्लिम लीग का नेतृत्व सामने आया तो उन्होंने मौके को समझा और कबूल किया। इग्लैंड में बैरिस्टर की हैसियत से उन्हें सफलता नही मिली थी। यह एक रास्ता था। लेकिन उनकी विचारधारा इस कहानी में निहित है जो मैंने सुनी थी। यह तब की कहानी है जब वह पहली बार इग्लैंड गए थे और उनसे पूछा गया था कि वह राजनीति म शामिल होंगे। उन्होने कहा था कि उन्होंने इस पर गौर किया है। उनसे तब पूछा गया कि वह दक्षिण पक्ष में शामिल होंगे या उदार दल मे? 'अब तक मैं फैसला नही कर पाया हूँ'—जिन्ना का उत्तर था। उनम कोई गुण नही था, सिवा इसके कि वह सफल हो गए।'

जिन्ना के चरित्र पर यह चित्रण शायद कुछ हद तक ठीक भी हो। मैं इसके कुछ पहलुओं पर बाद मे भी लिखूंगा। लेकिन राजनीतिक विरोधी को नापसन्द करना एक बात है और उसकी शक्ति का गलत अन्दाज करना दूसरी बात। जिन्ना में दोष होंगे लेकिन उसमे शक्ति थी और बड़ा ही दृढ़ निश्चयी था। 1946 की गर्मियो में (और यह आखिरी बार की गलती नही थी) जवाहरलाल नेहरू ने उसकी ताकत का बहुत ही गलत अन्दाज लगाया। वह विश्वास नही कर सका कि जिन्ना भारत के सभी मुसलमानों की ओर से बात कर रहा था। उसका तब भी विश्वास था कि उसके सभापतित्व मे जिन्ना का पासा पलटा जा सकता था।

10 जुलाई को कांग्रेस का सभापति चुने जाने के बाद उसने कांग्रेस की नीति पर बातचीत करने के लिए एक प्रेस-कान्फ्रेंस बुलाई। यह इतिहास का ऐसा क्षण था जब सावधानी बरती जानी चाहिए थी। चुप रहने से भी बहुत बड़ा फायदा था।

हिन्दुस्तान की तकदीर का फैसला सिर पर था, एक गलती से पासा पलट सकता था। अपनी 'आत्मकथा' : लेखक माइकेल ब्रेचर के शब्दों में—'40 वर्ष के सार्वजनिक जीवन के सबसे गर्म और छेड़वाले भाषण के लिए नेहरू ने इसी घड़ी को चुना।' प्रेस-प्रतिनिधियों ने पूछा कि 'केबिनेट मिशन की योजना मान लेने का क्या यह अर्थ है कि कांग्रेस सोलह आना उसे मान चुकी है?' नेहरू ने ढिठाई के साथ जवाब दिया कि 'कांग्रेस पर समझौता का कोई बन्धन नहीं और वह हर स्थिति का जिस तरह वे सामने आती हैं, सामना करने के लिए स्वतन्त्र है।' फिर पूछा गया कि क्या इनका मतलब है केबिनेट मिशन की योजना में रद्दोबदल भी हो सकता है?

उसने आनेवाले शब्दों में स्पष्ट कर दिया कि कांग्रेस के सभापति की हैसियत से योजना में रद्दोबदल करने की उनकी हर मंशा थी। 'इसमें शक नहीं कि हम लोग इनका (अल्पसंख्यकों की समस्या का) हल ढूंढ निकालेंगे। लेकिन इसमें किसीका दखल देना हम कबूल नहीं, ब्रिटिश सरकार का तो कभी नहीं।' केबिनेट मिशन की योजना (देश को तीन हिस्सों में बांटने) के बारे में, जिसे कांग्रेस ने कुछ ही दिन पहले मान लिया था, नेहरू ने कहा—

'चाहे जिस तरह इस मसले को देखा जाय, सबसे ज्यादा संभावना इस बात की है कि टुकड़े बनें ही नहीं। स्पष्ट है कि खंड A (हिन्दू बहुमत) इसके विरोध में वोट देगा। अगर सट्टेबाजों की भाषा में बात की जाय तो एक के खिलाफ चार की संभावना है कि उत्तर-पश्चिम सीमान्त प्रदेश भी टुकड़ा के खिलाफ वोट देगा।[1] इसका अर्थ हुआ कि ग्रुप B खतम! इस बात की बहुत बड़ी संभावना है कि बंगाल और आसाम भी टुकड़ों के खिलाफ हो जायगा।...... इसलिए यह साफ है कि टुकड़ों में बांटने की यह बात, चाहे जिस तरह उसे देखिए, आगे नहीं बढ़ पाती।'

क्या नेहरू ने यह महसूस किया था कि वह क्या कह रहा था? वह दुनिया को कह रहा था कि एक बार सत्ता हाथ में आने पर कांग्रेस मिशन की योजना को अपनी मर्जी के अनुसार बदलने के लिए केन्द्रीय सत्ता का उपयोग करेगी। लेकिन मुस्लिम लीग ने योजना को अपने कटे छँटे रूप में स्वीकार कर लिया था (कांग्रेस ने भी किया था)। यह समझौते की योजना थी। इसलिए जाहिर था कि किसी भी पक्ष की सुविधा के अनुसार पीछे इसमें रद्दोबदल की गुंजाइश नहीं थी। ऐसी स्थिति में नेहरू का विचार पीठ पीछे छुरा भोंकने के काम जैसा था। पता नहीं, नेहरू की मंशा क्या थी—मुस्लिम लीग और जिन्ना की ताकत का सही अन्दाज नहीं रहने के कारण यह उसे तोड़ फोड़ करने का तरीका था ऐसे राजनीतिक नेता के गिने चुने विचार जिसे पता नहीं कब चुप रहना चाहिए। इस विषय पर आजकल नेहरू अपनी राय प्रकट

---

1 स्थिति का बहुत ही गलत अन्दाज जो आगे चलकर साबित हो गया। हालाँकि उस समय वहाँ कांग्रेस की कैरवाक मुसलमानी सरकार थी लेकिन जनता पर उनका जोर टूटता जा रहा था। चुनाव ही बताते के कुल 90% लोग मुस्लिम लीग की ओर हो गये और 10% कांग्रेस की ओर। इसलिए उनका चुनाव ग्रुप B का ही होता।

नही करता। लेकिन इसमें कोई दो राय नही, जैसा उसकी जीवनी के लेखक ब्रेचर ने लिखा है—'यह दुनियादारी की दृष्टि से बडी भारी गलती थी। इससे जिन्ना को एक ऐसा हथकडा मिल गया जिसके सहारे उसने अपनी पाकिस्तान की माँग को कांग्रेस उत्पीडन के नाम पर और भी जोर से पेश किया।'

मौलाना आजाद ने एक कदम आगे बढ़कर लिखा —

'जवाहरलाल मेरे सबसे प्यारे दोस्तो मे है और इस मुल्क की राष्ट्रीय जिन्दगी मे उनका योगदान किसी से कम नही। उन्होंने हिन्दुस्तान की आजादी के लिए मेहनत की है और दुख उठाया है और आजादी के बाद से मुल्क की एकता और तरक्की का वह प्रतीक बन गए हैं। फिर भी मुझे दुख के साथ कहना पडता है कि वह भावनाओ मे बहक जाते हैं। इतना ही नहीं, सैद्धान्तिक बातो का कभी-कभी इतना खयाल करते हैं कि स्थिति का व्यावहारिक पहलू नजरअन्दाज कर देते हैं। 1946 की गलती बडी महँगी साबित हुई।'[1]

बात सही थी। मि० जिन्ना की प्रतिक्रिया उस फौजी नेता की-सी हुई जो सुलह के झण्डे को देखकर समझौते की बातचीत के लिए आया हो, पर जो अपने को पिस्तौल के सामने पा रहा हो। तुरत दगा, फरेब, चिल्लाता हुआ वह छिपने की जगह ढूँढने लगा। खुद को और अपने साथियो को यह समझाने मे देरी नहीं लगी कि यह सारा कुछ एक बडी गलती थी, केबिनेट मिशन की योजना मानकर, पाकिस्तान के अपने लक्ष्य से समझौता कर उन लोगो ने बुनियादी गलती की थी, कांग्रेस हमेशा की तरह चालबाज और खतरनाक थी।

नेहरू के भाषण का बडा ही गहरा और अफसोसनाक नतीजा निकला। 27 जुलाई, 1946 को मुस्लिम लीग की बैठक हुई और जिन्ना के कहने पर मुस्लिम लीग ने केबिनेट मिशन की योजना की स्वीकृति रद्द कर दी। काफी बुरी बात थी क्योंकि निकट भविष्य मे इस देश की आजादी का सपना टूट गया, हिन्दू और मुसलमान फिर दो विरोधी और परस्पर शत्रु करनेवाले दलो मे बँट गए। वायसराय ने दोनो दलो को फिर से इकट्ठा करने की कोशिश की और वेवेल की कोशिश से कांग्रेस ने केबिनेट मिशन योजना म अपने विश्वास का प्रस्ताव किया, नेहरू के भाषण मे विरोध प्रकट किया (नेहरू की निन्दा सम्भव नही थी)।

लेकिन जिन्ना का प्याला भर चुका था। हिन्दुओ के साथ बातचीत का सिलसिला उसके लिए खतम हो गया था। उसने एक प्रस्ताव तैयार किया जो सर्वसम्मति से पास हुआ। इस प्रस्ताव म मुस्लिम लीग के सदस्यो को सभी उपाधि छोडने के लिए कहा गया था और 16 अगस्त, 1946 'डायरेक्ट एक्शन डे' (सीधी कार्रवाई दिवस) के रूप मे मनाने के लिए कहा गया ताकि मुसलमान हिन्दुस्तान के बँटवारे और अपनी पाकिस्तान की माँग का निश्चय प्रदर्शित कर सके।

पीछे चलकर उसने कहा—'हम लोगो ने आज जो किया है, हमारे इतिहास

---

1 मौ० आजाद—इंडिया विन्स फ्रीडम।

का यह सबसे बहादुरी का काम है। लीग के पूरे इतिहास में हम लोगों ने कभी भी वैधानिक तरीकों को छोड़कर और कोई रास्ता नहीं अपनाया। लेकिन इसके अलावा हमारे पास अब कोई दूसरा रास्ता नहीं, हम इसके लिए मजबूर किये गए हैं। आज के दिन हम वैधानिक तरीकों से अलग होते हैं......आज हमने अपने लिए एक अस्त्र तैयार किया है और उसके उपयोग की स्थिति में हैं।'

16 अगस्त, 1946 के सुबह जिन्ना के बदसूरत लेकिन भरे-पूरे कीमती मकान (मलाबार हिल, बम्बई) में नेहरू मिलने गए। वायसराय ने अपील की थी कि दोनों पार्टियों के बीच की खाई पाटने की आखिरी कोशिश करनी चाहिए। केबिनेट मिशन योजना के अनुसार एक अस्थायी सरकार बनाई जा रही थी और मन्त्रिमण्डल में मुस्लिम लीग के लिए पाँच सीटें निश्चित की गई थीं। जब तक ब्रिटिश हिन्दुस्तान में थे, वायसराय को वीटो का अधिकार था, लेकिन अन्यथा नई सरकार केन्द्रीय अनुशासन चलाने के लिए स्वतन्त्र थी और पंडित नेहरू उसके नेता होनेवाले थे। उस दिन की सुबह यह पंडित नेहरू का काम था कि जिन्ना को 'डायरेक्ट ऐक्शन' (सीधी कारवाई) भूलने के लिए राजी करें और लीग को सरकार बनाने में सहायता करने दें।

इस बात की उम्मीद नहीं थी कि ऐसी परिस्थिति में कोई भी जिन्ना को अपने विचार बदलने के लिए राजी कर सकता था। लेकिन असफलता के लिए पंडित नेहरू से अधिक उपयुक्त आदमी शायद ही कोई दूसरा हो। ये दो आदमी ऐसे थे जिनमें एक-दूसरे से मिलने की कोई बात ही नहीं थी, हिन्दुस्तान का भविष्य भी नहीं। हैरो और ऑक्सफोर्ड में शिक्षा पानेवाले बुद्धिजीवी, कविता के प्रेमी और किताबों के लेखक नेहरू के लिए जिन्ना संकीर्ण दिमागवाला सम्प्रदायवादी था। एक बार नेहरू ने कहा था—'उसकी असली शिक्षा नहीं हुई थी, आप उसे शिक्षित नहीं कह सकते। कानूनी किताबें पढ़ी थीं और कभी-कभी हल्के-फुल्के उपन्यास-कहानी लेकिन असली किताब कभी नहीं। बड़ा ही घमण्डी, हमेशा डाँट-फटकार सुनाने के लिए चौकस रहनेवाला जिन्ना का ऐसे आदमी के सामने झुकना सम्भव नहीं था जिसके बारे में उसने कभी कहा था—'उद्दण्ड ब्राह्मण जो अपनी चालबाजी को पश्चिमी शिक्षा के आवरण से ढँककर रखता है। जब वह वादा करता है, कोई-न-कोई रास्ता छोड़ देता है और जब कोई रास्ता नहीं मिलता तो सफेद झूठ बोलता है।

दोनों की मुठभेड़ अस्सी मिनट तक होती रही। लेकिन इस मुठभेड़ ही कहा जायगा, दो दिमागों का मिलना नहीं। शायद यह नेहरू के प्रति अन्याय होगा अगर यह कहा जाय कि उन्होंने कोशिश नहीं की। स्वतन्त्र हिन्दुस्तान को कैसे चलाया जाय इसकी उनकी अपनी धारणा होगी लेकिन उसको हासिल करने के बारे में उनके इरादे के बारे में शक नहीं हो सकता। उन्होंने अपनी जिन्दगी का अधिकांश हिस्सा अंग्रेजों के विरुद्ध आन्दोलन में लगाया (काफी अरसे तक जेल में रहे) और अंग्रेजों की नीयत के बारे में चाहे उन्हें अब भी शक हो, उन्हें यह विश्वास हो गया था कि आखिरकार अब अंग्रेज कूच करने के लिए तैयार हैं। जिसकी जिद देश की आजादी का दरवाजा रोके ... उसी से मेहरबानी के लिए कहना बड़ी मुश्किल में काबिले बरदाश्त रहा

होगा। यह महसूस करना कि अपने ही अनाड़ीपन के कारण यह स्थिति पैदा हो गई है, और भी मुश्किल पड़ता होगा। फिर भी नेहरू ने कोशिश की, जो कुछ भी उनके पास था, सब लगाकर कोशिश की। लेकिन फल कुछ नहीं हुआ। जिन्ना विनम्र रहे लेकिन टस-से-मस नहीं हुए। मुलाकात सिर्फ असफल ही नहीं रही, मुलाकात के बाद दोनों का विरोध चरम सीमा तक पहुँच गया। नेहरू का विश्वास और भी दृढ़ हो गया कि सिर्फ यही आदमी देश की आजादी का दरवाजा रोक कर खड़ा है, इसे और इसके पाकिस्तान के सपने को नष्ट करना ही होगा। लेकिन साथ ही-साथ जिन्ना की ताकत से, देश के मुसलमानों पर उसके प्रभाव से नेहरू अनभिज्ञ ही रहे।

मलाबार हिल से जब बाहर निकले तो कांग्रेस सभापति ने मातम का काला झण्डा देखा, काला झण्डा जो कि 'डायरेक्ट ऐक्शन' (सीधी कार्रवाई) की घोषणा कर रहा था, काला झण्डा जो मुसलमानों के घरों और उनकी बन्द दुकानों पर लहरा रहा था। लेकिन बम्बई में हिन्दुओं का बहुमत था, सड़कें शान्त थीं, कहीं कोई गड़बड़ी नहीं थी। कराची और पंजाब, मुसलमानों के दो सबसे बड़े क्षेत्र भी नियन्त्रण में थे। कराची तो इसलिए कि सिंध सरकार के चीफ सेक्रेटरी ने 16 अगस्त को सरकारी छुट्टी नहीं दी और पंजाब इसलिए कि पंजाब के अंग्रेज गवर्नर सर इवान जेन्किन्स का प्रदेश पर अच्छा और शान्त नियन्त्रण था तथा स्थिर प्रादेशिक सरकार थी।

लेकिन हिन्दुस्तान में एक प्रदेश की सरकार मुसलमानों के अधीन थी। यह प्रदेश बंगाल था जिसकी राजधानी, देश का सबसे बड़ा शहर कलकत्ता थी (1946 की आबादी 2,500,000)। बंगाल में न सिर्फ मुसलमानों की संख्या ही अधिक थी (33,000,000 मुसलमान, 27,315,000 बाकी लोग) अपितु चुनाव में उनका बहुमत था बल्कि अल्पसंख्यकों के 'वेटेज' प्रणाली के अनुसार (अंग्रेजों ने अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा के लिए इसे लागू किया था) कुछ अधिक सीटें भी मिली थीं। इसका मतलब था कि अगर उनके पक्षवाले पूरी संख्या में वोट न भी दें तो भी उनका बहुमत बना ही रहेगा।[1]

बंगाल के गवर्नर सर फ्रेडरिक बरोज, पुराने रेलवे और यूनियन अधिकारी थे जिनको लेबर सरकार ने 1946 में मि० आर० जी० केसी के बाद बहाल किया। वह कुशल और खुशमिजाज शासक थे जिनकी हिन्दू-मुसलमानों के साथ-साथ ब्रिटिश फौजी अफसरों से भी अच्छी पटती थी। लेकिन वह बहुत ही शक्तिशाली और तुरन्त फैसला करनेवाले नहीं थे। व्यक्तित्व की हैसियत से बंगाल के मुख्यमन्त्री मि० शहीद सुहरावर्दी से उनका कोई मुकाबला नहीं था। मि० सुहरावर्दी बड़ा ही चालाक, चुस्त और आकर्षक व्यक्तित्व का आदमी था। मि० सुहरावर्दी मुस्लिम लीग की कार्यकारिणी के सदस्य भी थे इसलिए मि० जिन्ना के इशारे पर अन्य लोगों की ही तरह उनके भी उछलने कूदने की उम्मीद थी ही। दरअसल बात यह थी कि मि० सुहरावर्दी बड़ी

---

1 इसी 'वेटेज' के अनुसार बंगाल के 20,000 ब्रिटिश को उनकी संख्या के अनुपात से कहीं अधिक सीटें विधान सभा में दी गई थीं।

ही आजादी चाहता था और जिन्ना का साफ बता दिया गया था कि शासन में किसी तरह की दखलन्दाजी उसे बर्दाश्त नहीं थी। जिन्ना उसे पसन्द नहीं करता था क्योंकि उसे डर था कि जबानी तौर पर वह हमेशा पाकिस्तान का दुहाई तो देता है, पर भीतर-ही भीतर एक नया सपना पाल रहा है—जिन्ना के नियन्त्रण से बाहर एक स्वतन्त्र बंगाल कायम करना।

मि० सुहरावर्दी उस तरह का पार्टी नेता था जिसका विश्वास था कि एक बार पुलिस अनुशासन चुनाव-केन्द्रों पर कब्जा कर लेता राजनीतिक नेता की सरकार हमेशा कायम रहेगी। सार्वजनिक जीवन में आने के बाद किसी मन्त्री को आर्थिक हानि क्या हो! हर रिश्तेदार या राजनीतिक मददगार को इनाम मिलना ही चाहिए। धन, सुरा और सुन्दरी से उसे प्यार था। नाइटक्लबों में नाचना उसे अच्छा लगता था और कहा जाता है कि लड़ाई के जमाने में उसने काफी पैसा बनाया।[1] वह कलकत्ता को प्यार करता था। वहाँ की गन्दगी और मुफलिसी भी उसमें शामिल थी। हावड़ा की गुजान गलियों से ही उसने गुण्डे चुने थे जो उसके अंगरक्षक की हैसियत से हमेशा उसके साथ रहते थे।

बाहर से मिलनसार लेकिन भीतर से क्रूर इस राजनीतिज्ञ के लिए 16 अगस्त को डायरेक्ट एक्शन डे के रूप में मनाने की जिन्ना की घोषणा सुनहरा मौका बन कर सामने आयी ताकि वह बंगाल में मुसलमानों पर अपने प्रभाव और पाकिस्तान के समर्थन का प्रदर्शन कर सके। उसने घोषणा की कि 16 अगस्त हिन्दू और मुसलमान दोनों के लिए छुट्टी का दिन होगा। जब विधान सभा के हिन्दू सदस्यों ने इसका विरोध किया कि राजनीतिक हड़ताल में उनकी कोई दिलचस्पी नहीं तो वोट से उनका विरोध कुचल दिया गया। स्टेटसमन के 5 अगस्त वाले अंक में शहीद उपनाम से उसने लिखा कि और जैसा बदकिस्मती से हुआ भी कि खून खराबी और अशान्ति अपने में कोई बुरी बात नहीं अगर किसी अच्छे काम के लिए उनका उपयोग किया जाय। आज मुसलमानों के लिए पाकिस्तान से बड़ा और अच्छा और कुछ नहीं। 10 अगस्त को दिल्ली के अपने भाषण में उसने धमकी दी कि अगर कांग्रेस सिर्फ अपनी अस्थायी सरकार बनाती है तो वह बंगाल की स्वतन्त्रता की घोषणा करेगा। उसने घोषणा की कि हम बंगाल को स्वतन्त्र सरकार मान लेंगे और ऐसी केन्द्रीय सरकार को कोई कर बंगाल से प्राप्त नहीं होगा। डायरेक्ट ऐक्शन डे के अवसर पर उसके एक सहकारी ने मुसलमानों का एक नारा दिया— लड़के लेंगे पाकिस्तान।

जो प्रदर्शन देश को दो टुकड़ों में बाटनेवाला था उसकी सारी तैयारियाँ पूरी हो गई थीं।

---

1 भारत छोड़ने के पहले इनकमटैक्स के अधिकारियों ने लड़ाई के जमाने की उनकी आमदनी का हिसाब लगाना शुरू किया। पीछे चलकर जब वह पाकिस्तान के प्रधान मन्त्री हुए और उन्हें पूर्वी पाकिस्तान जाना था तो पता चला कि उनका हवाई जहाज कलकत्ता रुकेगा। उन्होंने भारत के प्रधान मन्त्री नेहरू को लिखा कि उन्हें आश्वासन चाहिए ताकि हवाई अड्डे पर इनकमटैक्स का कोई अफसर उनसे न मिले।

एक गीत में कहा गया है—शिकागो बड़ा ही सुन्दर शहर है। होगा भी शायद, लेकिन कलकत्ता नहीं है। यह पनपता हुआ बन्दरगाह है, व्यापार का धनी केन्द्र है; अंग्रेजो के लिए यह काल-कोठरी भी रहा है और धन कमाने का बढ़िया साधन भी; यहाँ के रहनेवाले वाचाल, बुद्धिमान और कवित्वमय रहे हैं। लेकिन यह शहर राजनीतिज्ञ, व्यापारी या बंगालियों का ही प्यारा हो सकता है। क्योंकि यह शहर गरीबी, भोंडेपन, बीमारी और निराशा से भरा हुआ है। मैं कलकत्ता से ज्यादा गन्दी जगह की कल्पना न तो जीवनयापन के लिए कर सकता हूँ और न उस जैसी बदशक्ल और वीरान जगह की कल्पना मौत के लिए कर सकता हूँ। हुगली नदी के कच्चे किनारे पर यह शहर बसा हुआ है। बीच में बड़ी-बड़ी इमारतें हैं, शासन के केन्द्र, खुली जगहें, फव्वारे, स्मारक-स्तम्भ जिन्हें अंग्रेजो ने भारी-भरकम रूप प्रदान करने के लिए बनाया था। यहाँ के प्राकृतिक साधनों का भरपूर शोषण उन्होंने किया। लेकिन प्रदर्शन की बीचवाली जगह के चारों ओर दुनिया की सबसे घिनौनी गन्दी बस्तियाँ हैं। यहाँ वे अधिकारहीन, बोझ से दबे बिलबिलाते कीड़े रहते हैं जिन्हें राजनीतिज्ञ सिर्फ इसीलिए प्यार करते हैं क्योंकि वे गरीब, मूर्ख, डरे हुए और सनकी हैं तथा बड़ी ही आसानी से उनको उभारकर उनका शोषण किया जा सकता है।

देश की स्वतन्त्रता या देश के बौद्धिक और सांस्कृतिक जीवन में बंगाल के योगदान को भुला देना निरी मूर्खता होगी। कवीन्द्र रवीन्द्र बंगाली थे। आधुनिक भारतीय कविता के जनक माइकल मधुसूदन दत्त, राममोहन राय, स्वामी विवेकानन्द, बंकिमचन्द्र चटर्जी हिन्दू राष्ट्रीयता के संस्थापकों में से थे। लेकिन 16 अगस्त को जिन बंगालियों का सवाल था वे वहाँ की गन्दी बस्तियों के रहनेवाले थे।

सूर्योदय के करीब हुगली नदी पारकर ये लोग हावड़ा से कलकत्ता आए—लाठी, छुरे, बोतल, लोहे के टुकड़ों से लैस। इस समय तो इनमें अधिकांश मुसलमान ही थे। गलियों और दरवाजों के पास छिपकर दुकान खुलने का ये इन्तजार करते रहे। जो स्थिति थी उसमें गैर-मुसलमान दुकानें ही खुलती। जैसे ही दुकानदार दुकान खोलता, उसके सिर पर लाठी पड़ती या छुरा भोंका जाता फिर दुकान के सामान की लूट।

पहले यह सब बड़े ही शान्त ढंग से शुरू हुआ। शायद किसी ने महसूस किया हो कि कितनी खतरनाक चीज की शुरुआत हो गई। एक अंग्रेज ने जो साइकिल पर अस्पताल जा रहा था, देखा कि एक झाड़ू देनेवाला उसकी ओर भागा आ रहा है और एक भीड़ उसका पीछा कर रही है। वह साइकिल से उतर गया। भीड़ का एक आदमी उसके पास पहुँचा इतनी जोर की लाठी मारी कि झाड़ू देनेवाले के पैर की हड्डी टूटने की आवाज साफ सुनाई पड़ी। जैसे ही वह जमीन पर गिरा भीड़ का दूसरा आदमी झुका, उसका गला काटकर उसके कान काट लिए। बाकी भीड़ ने नजारे को देखकर सन्तोष से सिर हिलाया। फिर अंग्रेज को देखकर शुभ अभिवादन किया और स्क्वायर की दूसरी ओर भीड़ चली गई।

शुरू में तो इक्की-दुक्की घटनाएँ हुईं। एक बूढ़ी औरत को रोका गया चिढ़ाया

गया, एक आदमी ने दूसरे आदमी के हाथ कट गई और जब उसने मौका या नाखून लगाया या किसी तरह का हमला किया तो अचानक राहत की आवाज के साथ बुढ़िया के सिर पर लाठी का प्रहार। लँगड़े, लूले और भिखमंगा का भेद बन गया और कलकत्ता भर में उसकी कमी न रही।' उनके ठन छीन लिए गए और उनको या तो गड्ढों पर कराहने के लिए छोड़ दिया गया या कूड़ादानों में ठूँस दिया गया। छोटी लड़कियों और बूढ़ों को रँगकर ऐसी जगह चलने पर मजबूर किया गया जहाँ पहले से गाय तैयार रखी गई थी। कलकत्ता में धर्म के नाम पर छोड़ी गई गायों की कमी नहीं। फिर जबरदस्ती उनके हाथ में वह छुरी पकड़ा दी गई जिससे गाय का गला काटा गया। हिन्दू के लिए यह बड़ा ही घोर पाप था (बंगाल के अकाल में भी किसी हिन्दू ने जान-बूझकर गाय का गला नहीं काटा और गो मांस खाने का तो सवाल ही नहीं उठता)।

दोपहर तक हिंसा में बिखरे बिखरे और छोटे-मोटे कारनामे ज्वाला के रूप में धधकने लगे। आग फैलने लगी। पहले तो खून और मारपीट का काम सिर्फ गुंडे करते थे, बाकी भीड़ तमाशा देखती थी और दुकानों की लूट पाट में, गाड़ियों को उलटने में मदद करती थी। लेकिन धीरे धीरे ये तमाशा देखनेवाले भी कत्ल में हिस्सा लेने लगे। अब कलकत्ता के बहुत सारे हिस्सों से गुस्से या दुख-दर्द की तीखी आवाज आने लगी जो मन्द या तेज होती हुई चार दिनों तक नरक की यातना की तरह सुनाई पड़ती रही।

16 अगस्त, 1946 को दो बजे शहीद सुहरावर्दी ने कलकत्ता मैदान की सार्वजनिक सभा में भाषण दिया। उसके चेहरे पर खुशी छाई थी। उसने अपने श्रोताओं को उनकी संख्या, उनके उत्साह और पाकिस्तान की उनकी कोशिशों के लिए धन्यवाद दिया। जब वह भाषण दे रहा था, दो गली पार लोगों का कत्ल हो रहा था। मैदान से आग का धुआँ साफ दिखाई पड़ता था। अब तक लोगों ने पट्रोल के स्टेशनों पर कब्जा कर लिया था और पेट्रोल छिड़ककर दुकानों आदि में आग लगाई जा रही थी। लेकिन न तो सुहरावर्दी और न उसके अंगरक्षक पुलिस—फौज को यह सब दिखाई दिया।

सच्ची बात तो यह थी कि कलकत्ता की पुलिस दंगे को रोकने में अपने को असमर्थ पा रही थी। शुरू में तो कठिनाई यह थी कि कत्ल और लूट का काम मुसलमान ही कर रहे थे—सहधर्मी। कलकत्ता की पुलिस के अधिकांश सदस्य मुसलमान थे। लेकिन तीसरे पहर तक धौंकनी आग सुलगा चुकी थी, बदले के लिए हिन्दू और सिख निकल पड़े थे। मुसलमान गुंडों से सीधा मोर्चा लेने या अपने लोगों को बचाने का भी इरादा नहीं था उनका। कलकत्ता की भीड़ इस तरह काम नहीं करती। जब मुसलमानों की भीड़ इक्के दुक्के हिन्दुओं और उनकी दुकानों की तलाश कर रही थी, हिन्दू और सिख बेसहारा मुसलमानों की ताक में थे। बूढ़ों बच्चों और औरतों की शामत थी। औरतों की छातियाँ काट ली गईं, बूढ़ों की टाँगें तोड़ दी गईं बच्चों के हाथ काट दिये गए। हिन्दुओं और मुसलमानों में सिर्फ एक जगह, रिपन कॉलेज में जमकर लड़ाई हुई। मुसलमानों ने मुस्लिम लीग का झण्डा फहरा दिया था। उसे उतारकर एक हिन्दू ने कांग्रेस का झण्डा फहरा दिया। नीचे दोनों दलों में थोड़ी देर के लिए

मुठभेड हो गई। फिर दोनो दल भाग गए। वे जोखिम उठाने के लिए नही गए थे, वे तो गए थे दुश्मनो के बीच बेसहारा लोगो को अपग बनाने के लिए, उनको कत्ल करने के लिए। हालांकि पुलिस मुख्य सडक पर अश्रुगैस का प्रयोग कर उसे खाली करा देती थी, लेकिन पुलिस के हटते ही फिर भीड इकट्ठी हो जाती थी। कलकत्ता मे ऐसी गलियो-दर-गलियो की कमी नही जहाँ पुलिस के हटने का आसानी से इन्तजार किया जा सके।

मि० जिन्ना ने 'डायरेक्ट ऐक्शन डे' का नारा लगाया था इसलिए कि अग्रेज पाकिस्तान की माँग मानने के लिए तैयार नही थे। लेकिन एक बार जब कलकत्ता मे दगा शुरू हो गया तो वहाँ सिर्फ अग्रेज ही सुरक्षित थे। कई अग्रेज चौरगी के ग्रैंड होटल मे गुण्डो से घिरे हुए थे। गुडो का नेता होटल से अग्रेज को निकाल देने के लिए राजी था। बाकी लोगो की सुरक्षा का सवाल नही था। अग्रेजो ने एक बैठक बुलाई और निश्चय किया कि वे लोग होटल नही छोडेंगे। उसी दिन शाम को उन्होने सिखो के एक दल को होटल की खिडकी मे देखा जो एक जिन्दा मुसलमान के टुकडे-टुकडे कर रहा था और खुशी मे उछल कूद रहा था, चिल्ला रहा था। मि० किम क्रिस्टेन ने पीछे चलकर लिखा—'लडाई के अस्पतालो मे काम करने के कारण मेरा कलेजा पत्थर का हो गया है। लेकिन लडाई भी ऐसी चीज नही। चित्तरजन ऐवेन्यू होकर मैं मेडिकल कॉलेज की ओर साइकिल पर चला।[1] मैं उम्मीद कर रहा था कि लडाई के अनुभवो का उपयोग करूँगा और जितना भी बन पडेगा, सहायता करूँगा। मेडिकल कॉलेज से सिर्फ दो सौ गज दक्षिण पर भीड कत्ल मे जुटी हुई थी जलती हुई गाडियों के बीच लाशें पडी थीं। मैं कुछ देर इन्तजार करता रहा। जब भीड गली मे चली गई तो मैं अस्पताल की ओर आगे बढा। अस्पताल मे ही स्थिति की भयानकता का अन्दाज मिला। अस्पताल की गाडिया, पुलिस की गाडियो, फ्रेंड्स सर्विस यूनिट की गाडियो मे भर भर कर घायलो को लाया जाता था और खुली गाडियो और ठेलो मे लाशो को। मैं रेडक्रॉस के एक ट्रक के पास गया और डाक्टरी के कुछ विद्यार्थियो के साथ काम मे जुट गया। उन लोगो ने मेरी कमीज पर रेडक्रॉस का एक टुकडा लगा दिया और हम मिर्जापुर की ओर गए। जहाँ लाशो की सख्या अधिक थी, उतरकर हम लोगो ने जाँच शुरू की—शायद जीवन का कोई चिह्न कही बाकी हो। थोडे-से ऐसे लोग मिले, खून मे लथपथ। स्ट्रेचर पर उनको लादा गया और चले अस्पताल की ओर जहाँ तिल रखने की भी जगह नही थी। दिन-रात यह खोज होती रही। हम लोग उत्तर-पूर्व की ओर गए। फटे हुए सिर और टूटे अगोवालो को निकटतम अस्पताल मे पहुँचाया। भीड ने हर प्रकार के हथियारो का उपयोग किया था—भारी औजार, लोहे के डंडे, लाठियों मे बँधे लोहे के टुकडे। टेनो मे भरे ईंट-पत्थर मुठभेड की जगह जमा थे। एक आदमी लोहूलुहान पीठ देकर सडक के किनारे बैठा

---

1 सवारी का सवाल ही नही था। कलकत्ता की भीड जब उत्तेजित होती है तो उसका पहला काम होता है ट्रामों और बसों को उलटकर जला डालना।

था। उसे शीशे की खिड़की से नीचे फेंक दिया गया था। सड़क पर बैठा-बैठा वह छड़ी के छोर पर शीशे का टुकड़ा बाँध रहा था ताकि कुल्हाड़ी की तरह उसका उपयोग कर सके। सभी अस्पतालों में 'जगह खाली नहीं है' का नोटिस लगा था। डाक्टर और नर्स लगातार काम कर रहे थे। जिन विद्यार्थियों की डाक्टरी की किताबें अभी कोरी ही थीं उन्हें भी काम पर लगा दिया गया था। इस अनोखी शिक्षा में ऐम्बुलेंस को हिदायत थी कि सिर्फ उन्हें उठाया जाय जिनकी जान खतरे में हो।

पहले 48 घण्टे के बाद कलकत्ता पर मौत और वीरानेपन की हवा छा गई। बड़ी उमसवाली गर्मी थी। हलकी वर्षा भी हो रही थी। धुआँ और आग से हवा बोझिल थी। कभी-कभी साइकिल पर कोई अंग्रेज या फौज की जीप निकल जाती। सारा शहर थम गया था। कोई रेलगाड़ी हावड़ा या सियालदह नहीं आती थी। शहर की नालियों का पानी सड़क पर बह रहा था। इन बदबूदार नालियों में औरत, मर्द और गायों की लाशें पास-पास पड़ी सड़ रही थीं। चीलों का भोज हो रहा था।

लाशों की संख्या 4,000 तक पहुँच चुकी थी। घायलों की गिनती ही नहीं थी। लेकिन कहानी खतम नहीं हुई थी अब तक। अंग्रेजों के कमांड में फौज बुलाई गई थी और दूसरी जगहों से और भी फौज आ रही थी। अंग्रेज और गुरखा फौज को देखते ही भीड़ अपने कारनामे बन्द कर देती थी। कभी-कभी उसका स्वागत भी होता। बड़ी शान्ति से फौज की ये टुकड़ियाँ सड़कों को साफ करती, भीड़ को तितर-बितर करती। अगर किसी मकान में चीख-पुकार की आवाज आती तो उसका पता लगाती। लेकिन फौज को बुलाया ही देर से गया था। इसलिए वह असर ही नहीं पड़ा जो दंगे को पहले ही दिन खतम कर देता। फौज के आने के बाद सड़कों पर भीड़ का इकट्ठा होना और मुठभेड़ तो रुक गया, लेकिन अब भी कुछ चीजें ऐसी थी जो फौज के लिए असम्भव थी। गलियों में लाठीबाजी और छुरेबाजी अब भी चल रही थी।

कलकत्ता के इस भयानक कत्ल के दूसरे दिन ही फौज बुलाई गई थी। पहले दिन ही सर फ्रेडरिक बरो ने दंगे के इलाकों का अपना दौरा किया था। लेकिन उसके आने के पहले ही भीड़ छिप जाती और सुहरावर्दी यह विश्वास दिलाने में सफल हो गया कि स्थिति काबू में है। जब हिन्दू और सिख बदला लेने निकले तभी फौज की बुलाहट हुई और पहली बार सुहरावर्दी ने महसूस किया कि जिस दुखद घटना का श्रीगणेश हुआ, वह कितनी बड़ी थी। कलकत्ता की यह बदकिस्मती थी कि उस क्षेत्र के प्रधान फौजी कमांडर (जी. ओ. सी.) ले० जनरल सर फ्रांसिस टकर को स्टाफ कान्फ्रेंस के लिए ब्रिटेन बुला लिया गया था। उसके अधीनस्थों के हाथ फौजी फैसले थे। बहुत सारे हिन्दुस्तानी नेताओं के बारे में या बंगालियों की लड़ने की ताकत के बारे में[1] टकर की राय बहुत अच्छी नहीं थी। लेकिन वह ऐसा भी आदमी नहीं था कि औरत, मर्द और बच्चों के कत्ल के समय किसी के आज्ञा की अपेक्षा रखता

1. हिन्दुस्तानी फौज में लड़ाकों की हैसियत से बंगालियों की भर्ती कभी नहीं होती थी।

ग्रौर हाथ-पर-हाथ धरकर बैठा रहता। लौटते ही उसने स्पष्ट कर दिया कि वह सर फ्रेडरिक बरोज को उसी दम टेलीफोन करता जब पहले ही दिन यह साफ हो गया था कि दगो की गम्भीरता क्या है। एक साल बाद उसने साबित कर दिया कि गुण्डो को सर करने का उसके पास सीधा-सादा ग्रौर कारगर तरीका है। लेकिन इस समय यह फैसला उसके ग्रधीनस्थो के हाथ था जो ग्रनिश्चित थे, हिचकिचाहट के शिकार थे।

धीरे-धीरे, बहुत ही धीरे-धीरे कलकत्ता की जिन्दगी वापस होने लगी। बुखार उतर गया, लेकिन पूरा शहर बहुत बडे जख्म-जैसा था, जो ग्रभी भरा नही था।

ग्रग्रेजो के ग्रखबार 'स्टेट्समैन' ने लिखा—"दो दिन पहले जब हमने लिखा था, कलकत्ता की हालत दर्दनाक थी, उसके बाद हालत बदतर हो गई। जो भी विशेषण इसके लिए ठीक हो, हम लोगो ने जो कुछ देखा है, उसका कोई मुकाबला ही नही। ग्राहतो की सख्या 3000 कूती गई है जो सडको पर मरे पडे हैं। घायलो की सख्या कई हज़ार है ग्रौर यह कहना मुश्किल है कि कितने घर या दुकान तहस नहस हुए। यह दगा नही है। इसके लिए सामन्तशाही युग का शब्द 'प्रबल उत्पात' (फ्यूरी) है। लेकिन प्रबल उत्पात मे एक तरह की तत्क्षणता है ग्रौर इस उत्पात का श्रीगणेश करने के लिए कुछ सोच-विचार, कुछ तैयारी की गई थी। जो भीड लोगो का सिर तोडती ग्रौर कत्ल करती घूम रही थी, उसे हथियार सडको पर मिल गए थे या उनकी जेब मे निकल ग्राए थे, यह विश्वास नही किया जा सकता। हम लोगो ने पहले ही इस ग्रोर ध्यान खींचा है कि कुछ लोगो को पेट्रोल ग्रौर गाडियाँ ग्रासानी से मिल गई थी जबकि ग्राम लोगो के लिए यह दुश्वार थी। यह कल्पना मात्र नहीं है कि कलकत्ता मे बाहर से लोग बुलाये गए थे।'' ''''हज़ारो की जान गई। ग्रौरत, मर्द ग्रौर बच्चो को ग्रपग करना ऐसी राजनीतिक दलील है जिसकी बीसवी सदी मे किसीको उम्मीद नही।

हिन्दुग्रो का पक्ष लेनेवाले ग्रखबार 'ग्रमृतबाजार पत्रिका' ने लिखा—"हमारे ग्राधुनिक शहर मे वहशियाना जगलीपन का ऐसा प्रदर्शन हुग्रा है कि हिन्दू ग्रौर मुसलमान सभी का सिर शर्म से झुक जाना चाहिए। हममे से जो सबसे बडे है वे भी बाहरी दुनिया की नजरो मे कितने छोटे दिखाई पडते होंगे।'

इस खून-खराबी की जिम्मेदारी निश्चित करनी थी। 'स्टेट्समैन' ने, जिसका तत्कालीन सम्पादक मुसलमानो का तरफदार था, लिखा—"हिन्दुस्तान के सबसे बडे शहर पर जो कयामत ग्राई उसे साम्प्रदायिक दगा नही कहा जा सकता, कम-से-कम जिस ग्रर्थ मे उसका ग्राज तक उपयोग होता रहा है। तीन दिनो तक शहर मे बेरोक-टोक गृह-युद्ध चलता रहा। इसकी खास जिम्मेदारी जिन लोगो पर है वह स्पष्ट है। गवर्नर (सर फ्रेडरिक बरोज) की ग्रालोचना हुई है। हम भी नही समझते कि इस परीक्षा मे उनका फल बहुत ग्रच्छा निकला। लेकिन परम्परागत इस पद के कारण बहुत बडी प्रतिभावाला ही ऐसे ग्राकस्मिक सकट के समय कुछ कर पाता। इसकी प्रमुख जिम्मेदारी उन पर है जिनकी ग्रोर हमने सकेत किया है—प्रान्तीय मुस्लिम लीग की केबिनेट जिस

पर बंगाल की शान्ति और अनुशासन का भार है और उसमें भी खास कर ऐसा आदमी जिसे बड़े अनुशासन का अनुभव है, वहां का मुख्य मन्त्री (सुहरावर्दी)। सारे हिन्दुस्तान में लीग के अनुसार शान्तिपूर्ण 'डायरेक्ट ऐक्शन डे' के अवसर पर बंगाल में जहां लीग की मिनिस्ट्री है, यह खून-खराबी हो, हम लोगों को हैरत में डाल देती है।"

खुद सुहरावर्दी ने जवाब में कोई वक्तव्य नहीं दिया। पीछे चलकर उसने जो कार्रवाइयां की उनसे विश्वास होता है कि वह भी इस कत्ल से घबरा गया था। मि० नेहरू और मि० जिन्ना, दोनों ने तुरत इसकी निन्दा की। मुस्लिम लीग के नेता ने एक वक्तव्य में कहा—"मैं खुले तौर पर इसकी निन्दा करता हूँ और जिनकी हानि हुई है उनसे मेरी सहानुभूति है। अभी तो मुझे पता नहीं कि जान और माल के इस नुकसान के लिए, जिसका अखबारों में जिक्र है, कौन जिम्मेदार हैं। जो इसके लिए जिम्मेदार हैं उनको कानूनन सजा मिलनी चाहिए क्योंकि उनके काम मुस्लिम लीग की हिदायतों के बिलकुल खिलाफ हैं। उन्होंने दुश्मनों का काम किया है। शायद दुश्मनों की ओर से भड़कानेवालों का यह काम रहा हो।"

लेकिन हिंसा के इस काण्ड की निन्दा के बावजूद मि० जिन्ना को सन्तोष ही हुआ होगा इस काण्ड के परिणामों से। क्या और कोई चीज इससे ज्यादा बेदर्दी से यह साबित कर सकती थी कि देश के आजाद होने पर हिन्दू और मुसलमान शान्तिपूर्वक नहीं रह सकेंगे और गृह-युद्ध होगा? यही उसका दावा था।

यह उम्मीद की जा सकती थी कि कांग्रेस के नेहरू और लीग के जिन्ना कलकत्ता आकर साथ-साथ घूमेंगे ताकि राजनीतिक लक्ष्य के लिए इस तरह की खूंरेजी के खिलाफ उनकी सम्मिलित भावना स्पष्ट हो सके। लेकिन दोनों को इस तरह के काम के लिए फुरसत नहीं थी। मि० जिन्ना मुस्लिम लीग की वर्किंग कमेटी के कान्फ्रेन्स में कांग्रेस के खिलाफ मोर्चेबन्दी के दावपेंच सुलझा रहे थे। पंडित नेहरू अन्तरिम सरकार की केबिनेट का चुनाव (मुसलमानों को छोड़कर) कर रहे थे।[1]

कलकत्ता के नागरिकों के साथ दुख-दर्द में शिरकत करने और आंखों देखे हाल पर दुख-दर्द भेजने वायसराय, लार्ड वेवेल कलकत्ता आए। उसने ही सुना कि इस खून-खराबी के बीच जब मुसलमान हिन्दू का और हिन्दू मुसलमान का कत्ल कर रहे थे, आशा की किरणें उस घने अन्धकार में भी दिखाई पड़ रही थीं। पूरे शहर में ऐसी घटनाएँ प्रकाश में आ रही थीं जब मुसलमान को बचाने में हिन्दू ने अपनी जान दे दी थी और हिन्दू को बचाने में मुसलमान ने अपनी जान का खतरा उठाया था, जब अन्त में हिन्दू और मुसलमान नौजवानों ने लीग और कांग्रेस के झण्डे को एक साथ बांधकर भीड़ को तितर-बितर किया था और सड़कों पर जुलूस निकालकर 'हिन्दू-मुस्लिम एक हों' के नारे लगाए थे।

रोंगटे खड़े कर देनेवाला यह दृश्य था। कलकत्ता के बदसूरत शहर में भी सभ्यता का चिह्न शेष था। अब भी कुछ हिन्दुस्तानी ऐसे थे जो कन्धे-से-कन्धा मिला

1 पीछे चलकर जब साम्प्रदायिक दंगा बिहार में फैला तो कांग्रेस और मुस्लिम नेता गए थे।

कर काम कर सकते थे, लड सक्त थे। धार्मिक मतभद उनके रास्त म नही आता था। उनके लिए नालियो मे पडी लाशें उनके लिए निराशा के बदले आशा का प्रतीक थी। शायद उनको देखकर सभ्यता का कुछ अंश मानवता की एक रेखा देश के बद-दिमाग मुसलमानो, हिन्दुओ और सिखो म फिर से जाग उठे।

अगस्त, 1946 के इस कत्ल स बहुत नसीहतें लेनी थी—कठिन, क्रूर खूनी और व्यावहारिक।

लेकिन कुछ सप्ताह बाद यह विश्वास करना कठिन था (शायद महात्मा गाधी को छोडकर) कि किसीने भी कोई सीख ली हो।

न हिन्दुओ ने, न मुसलमानो ने न अग्रजो न।

अध्याय 2

जार्ज, मेरी नौकरी गई

अगर उस खास तारीख का पता लगाना हो जब कांग्रेस ने तय किया कि वायसराय पद से लार्ड वेवेल को हटाया जाए, तो इतिहास के विद्यार्थी को 27 अगस्त, 1946 चुनना पड़ेगा।

उस दिन शाम को वेवेल ने गांधी और नेहरू को बातचीत के लिए बुलाया। अगर ये लोग अपनी ही उलझन में मशगूल नहीं होते तो उनको साफ पता चलता कि वेवेल काफी बड़ी मुसीबत का बोझ सिर पर उठाये हुए परेशान था। यह पहले ही कहा जा चुका है कि वेवेल को बातचीत बहुत आसान नहीं मालूम होती थी। गप्प करने की प्रतिभा उसमें थी ही नहीं और जब कभी वह मुंह खोलता तो सिर्फ इसलिए कि उसे खास बात कहनी होती।

27 अगस्त की शाम को अपने लिहाज से उसने काफी लम्बी-चौड़ी बातचीत की। उसने कहा—'मैं अभी तुरन्त कलकत्ता से लौटा हूं। जो कुछ मैंने देखा है, मुझे दहशत हो रही है।' उसने दोनों हिन्दू नेताओं को बताया कि कलकत्ता में हिन्दू और मुसलमान, दोनों की ओर से मानवता और सभ्यता के प्रति जो अत्याचार हुए हैं उनकी मात्रा क्या है और बार-बार दुहराया कि दोनों की बराबर जिम्मेदारी है। उसने कबूल किया कि अंग्रेज के नेता को हिन्दुस्तानी राजनीतिक पार्टियों की हरकतों की परख का कोई अधिकार नहीं; हालांकि उसने जो कुछ हुआ उसकी कड़ी निन्दा की और राजनीतिक पार्टियों के नाम पर जो जंगलीपन हुआ उससे उसका सिर भी झुका हुआ है।

उसने आगे कहा कि जब तक वह वायसराय के पद पर था, वह समझता था कि यह उसका कर्तव्य है कि इस तरह के कत्ल की पुनरावृत्ति को रोकने में उसे सारी ताकत लगा देनी चाहिए। वह अपनी जिम्मेदारी का दामन छोड़कर ही हिन्दुओं और मुसलमानों को परस्पर निकट लाने और उनको यह विश्वास दिलाने (स्वतन्त्रता का यही एकमात्र सही रास्ता है) के लिए चरम प्रयास करने से बाज आ सकता था।

उसने गांधी और नेहरू से कहा—'इस काम को पूरा करने में मेरी मदद कीजिए, यही मेरी अपील है।'

मिशन की जो योजना थी उसमे तीन टुकडे थे—ए (हिन्दुओ का प्रभुत्व), बी (मुसलमानो का प्रभुत्व) और सी (मुसलमानो का हलका प्रभुत्व)। निश्चय ही इन सबमे सबसे अधिक महत्वपूर्ण 'ए' टुकडा होगा जिस पर हिन्दुओ के बहुमत का नियन्त्रण होगा और जो बाकी दोनो टुकडो से हमेशा अधिक प्रभावशाली होगा।

नेहरू के उस भाषण के पहले जिसमे इस व्यवस्था की निन्दा की गई थी, मुस्लिम लीग ने व्यवस्था मान ली थी। नाज़िमुद्दीन का प्रस्ताव था कि काग्रेस एक घोषणा करे। यह साफ हो जाए कि काग्रेस ने अपने स्पष्टीकरण के अनुसार नही, मिशन के स्पष्टीकरण के अनुसार उनकी योजना मान ली है। वे लोग इस बात का भी आश्वासन दें कि योजना के अनुसार 10 वर्ष के पहले कोई टुकडा अलग होने के लिए स्वतन्त्र नही होगा। दूसरे शब्दो मे योजना को आजमाकर देखना चाहिए।

ऐसी हालत मे मुस्लिम लीग अपने फैसले पर फिर विचार कर सकती है और योजना को मानकर अस्थायी सरकार मे शामिल हो सकती है।

वेवेल ने गाधी और नेहरू से साफ सवाल किया—'मुस्लिम लीग जो आश्वासन चाहती है वह आप देंगे?'

तुरत ही गाधी के साथ जो बहस शुरू हुई वह शायद वेवेल के लिए सबसे कठिन थी। उन दिन गांधी सबसे ज्यादा गम्भीर और आलोचक था। यह ऐसा सन्त था जो अपने आश्रम मे ज्ञान की बातें कर सकता था, सहिष्णुता और समझदारी की सलाह दे सकता था, लेने के बदले दान पर जोर दे सकता था। लेकिन उस दिन शाम को सिर्फ काग्रेसी नेता की तरह उसने बातचीत की।

'मुझे सिर्फ यह सीधा आश्वासन दीजिए कि आप लोग केबिनेट मिशन योजना मानते है।' वेवेल ने पूछा।

गाधी ने उत्तर दिया—'हम लोगो ने तो कह ही दिया कि हम उसे मानते हैं। लेकिन उसकी जो व्याख्या मिशन ने की है उसके अनुसार नही। हम लोगो की अपनी व्याख्या है।'

वेवेल ने कहा—'अगर आपकी व्याख्या मिशन के लक्ष्य के विपरीत हो तो भी?'

गाधी ने उत्तर दिया—'हाँ, निश्चय! किसी भी हालत मे योजना का वह अर्थ नही है जो केबिनेट मिशन सोचती है बल्कि वह अर्थ है जो अस्थायी सरकार सोचती है।'

वेवेल ने ध्यान आकृष्ट किया कि 'अस्थायी सरकार के विचार तो काग्रेस के पक्ष मे होंगे और मुस्लिम लीग के विपक्ष मे। मुस्लिम लीग तो अस्थायी सरकार का बायकाट कर रही है, फिर ये विचार निष्पक्ष कैसे हो सकते हैं?'

गाधी ने जवाब दिया कि 'पक्षपात से उसे बहस नही। सिर्फ बातचीत का कानूनी पहलू ध्यान मे है। कानूनन, इस बात का फैसला अस्थायी सरकार ही कर सकती है। एक बार अस्थायी सरकार के हाथो सत्ता हाथ आ जाय तो मुस्लिम लीग की आकाक्षाओ और उसकी दुश्चिन्ताओ पर वोट लिया जा सकता है, उसके पहले नही।'

अपने स्वभाव के प्रतिकूल वेवेल ने उबलकर कहा—'आप यह क्यो नहीं समझते

कि यह कांग्रेसी सरकार होगी जिसमें निष्पक्षता का अभाव होगा ही।'

यहां पंडित नेहरू ने कहा—'आप कांग्रेस पार्टी की बनावट को गलत समझ रहे हैं और मैं कहूं कि यह पहला ही मौका नहीं है। कांग्रेस हिन्दुओं का पक्ष लेने वाली और मुसलमानों की विरोधी संस्था नहीं है। यह संस्था तो देश की सम्पूर्ण जनता की है। मुसलमानों के हितों के विरोध में यह कोई कानून नहीं बना सकती।'

वेवेल ने जवाब दिया—'पंडित नेहरू, किन मुसलमानों से आपका अभिप्राय है? कांग्रेस के मुसलमान जिन्हें गुर्गा भी कहते हैं? या मुस्लिम लीग के मुसलमान? आप यह क्यों नहीं समझते कि इस क्षण की मांग है मुस्लिम लीग को आश्वासन देना कि आप उसका खातमा नहीं चाहते। यह ऐसा मौका है, और जहां तक मैं समझता हूं आखिरी मौका है, जब कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच की खाई पाटी जा सकती है और मैं सिर्फ एक आश्वासन की मांग कर रहा हूं। क्या कांग्रेस एक घोषणा करने का विश्वास दिला सकती है जिससे मुस्लिम लीग को तसल्ली हो जाय और स्थायी तथा एकात्मक सरकार का आश्वासन हो?' मेज की दराज से एक कागज निकालते हुए उसने कहा—'मैं इसकी बात कर रहा हूं।'

घोषणा इस प्रकार थी—'साम्प्रदायिक सद्भावना के लिए कांग्रेस 16 मई के वक्तव्य (केबिनेट मिशन का वक्तव्य) की मंशा मानने के लिए तैयार है कि अगर टुकड़े या दल बनाए जायें तो कोई प्रान्त स्वेच्छा से उससे अलग नहीं हो सकता, जब तक कि 16 मई के वक्तव्य के पैरा 19 (viii) में सुझाये गए निश्चय नयी वैधानिक व्यवस्था के लागू होने और पहले आम चुनाव के बाद नयी विधान सभा द्वारा स्वीकृत नहीं होता।'[1]

गांधी ने घोषणा नेहरू को सौंप दी। नेहरू ने पढ़कर कहा—'इसका तो अर्थ यह है कि कांग्रेस अपने को कैदी बना लेगी।'

वेवेल ने जवाब दिया—'जहां तक केबिनेट मिशन योजना का सवाल है, आपको यही करना चाहिए। मैं विश्वास नहीं कर सकता कि इसके सभी अभिप्रायों को समझे बिना कांग्रेस ने केबिनेट मिशन योजना मान ली थी। ऐसी ही बात थी तो योजना मानी ही क्यों गई? देश के टुकड़े की बात योजना में निहित ही है। पलट कर आप अब यह नहीं कह सकते कि इसकी यह मंशा उस समय आप पर स्पष्ट नहीं हुई थी।'

गांधी—'केबिनेट मिशन की मंशा और हमारे विचार से मिशन की मंशा की व्याख्या एक ही हो, यह जरूरी नहीं।'

वेवल—'यह तो कानूनदां की बातें हैं। मुझसे सीधी बात करिए। मैं सीधा-सादा सिपाही हूं और कानूनी दलील मुझे उलझन में डाल देती है।'

नेहरू—'यह भी हमारी लाचारी है कि हम वकील हैं।'

वेवल—'नहीं। हिन्दुस्तान के भविष्य और भलाई में दिलचस्पी रखनेवाले

---

1 भारत सरकार के रेकर्ड से।

ईमानदार आदमियों की तरह तो आप बात कर सकते हैं। केबिनेट मिशन ने अपनी मशा तो एकदम स्पष्ट ही कर दी। उसके लिए कानून की या बाल की खाल खीचने की कहाँ जरूरत है। अगर काग्रेस यह आश्वासन दे तो मेरा विश्वास है कि अस्थायी सरकार मे भाग न लेने के फैसले को बदलने के लिए मैं मुस्लिम लीग और मि० जिन्ना को राजी कर सकता हूँ। हमे सरकार मे उनकी जरूरत है, देश को इसकी जरूरत है। और अगर आप मेरी ही तरह गृह-युद्ध के खतरे की सम्भावना के बारे मे आशकित हैं तो आपको भी इसकी जरूरत है। ऐसी हालत मे मैं समझता हूँ कि सिर्फ काग्रेस को सरकार बनाने देना अक्लमन्दी तो होगी ही नही, खतरनाक भी हो सकती है।'

गाधी—'लकिन आपने तो घोषणा कर दी है कि सरकार बनेगी। आप इसे पलट कैसे सकते हैं?'

वेवेल—'परिस्थिति बदल गई है। कलकत्ता के कत्ल के कारण देश गृह-युद्ध की सीमा पर खडा है। इसे रोकना मेरा कर्त्तव्य है। अगर मैं काग्रेस को सरकार बनाने दूँ जिसमे मुसलमान नहीं हो तो मैं अपना कर्त्तव्य पूरा नही कर सकूँगा। फिर मुस्लिम लीग यह फैसला करेगी कि 'डाइरेक्ट एक्शन' ही एकमात्र रास्ता है और बगाल की खूँरेजी सारे देश मे दुहराई जायगी।'

नेहरू—दूसरे शब्दो मे मुस्लिम लीग की धमकी के आगे सर झुकाने को आप तैयार हैं।'

वेवेल—(काफी गर्म होता हुआ) 'भगवान के लिए क्या मैं पूछ सकता हूँ कि धमकी की चर्चा करनेवाले आप कौन होते हैं?'

जहाँ तक नेहरू और गाधी का सवाल था, वायसराय की हैसियत से वेवेल के साथ बातचीत समाप्त थी। उस रात दोनो पत्र लिखने बैठ गए। पहले गाधी ने लेबर पार्टी की सरकार के प्रधान मन्त्री मि० एटली को तार दिया और वायसराय की मानसिक स्थिति और विचारधारा के बारे म चिन्ता प्रकट की। गाधी ने लिखा कि 'बगाल के काण्ड के कारण वह घबरा गए हैं। उनकी सहायता के लिए एक चुस्त और कानूनी दिमाग की आवश्यकता है।' इसके बाद गाधी ने वेवेल को पत्र लिखा। पत्र मे था —

'पिछली शाम कई बार आपने कहा कि आप सीधे-सादे आदमी हैं, एक सिपाही हैं और कानून नही जानते। हम सभी सीधे सादे आदमी हैं हालांकि हम फौजी नही और हममे से कुछ लोग कानून भी जानते हैं। मैं समझता हूँ कि हम लोगो की मशा है कलकत्ता की भयानक घटनाओ की पुनरावृत्ति रोकना। सवाल है कि यह काम किस तरह सबसे अच्छे तरीके से किया जाय। पिछली आपकी भाषा धमकानेवाली थी। राजा के प्रतिनिधि की हैसियत से सिर्फ फौजी आदमी होकर आपका काम नही चलेगा और न कानून की ओर से आँख मूँद कर ही, खासकर अपने बनाए कानून की ओर से। अगर जरूरत हो तो आपको ऐसे कानूनदाँ की सहायता लेनी चाहिए जिस पर आपका पूर्ण विश्वास हो। आपने धमकी दी कि जो हल आपने पडित नेहरू और मेरे

प्रभावित किया था, उस आदमी की स्वतन्त्रता और निर्णय-शक्ति के प्रति अन्याय होगा। सिर्फ कलकत्ता की खूँरेजी ही इस समय उसके दिमाग पर हावी थी। कलकत्ता एक विभीषिका की तरह सामने था। हिन्दुस्तानी हिन्दुस्तानी का क्या हाल कर सकता है इस पर दहशत थी। उसकी वितृष्णा गहरी थी, धुएँ की गंध से उसकी नाक फटती थी। लेकिन फिर भी उसकी ऐसी हालत नहीं थी कि वह यह सोचने पर मजबूर हो—ब्रिटेन अपना सम्बन्ध तोड़ ले और देश को अपनी किस्मत पर छोड़ दे।

ब्रिटेन में प्रचार अपना काम करने लगा था। लेबर पार्टी के सरकारी इलाके में वायसराय का कोई मित्र नहीं रह गया था। मि० एटली का उसमें कोई विश्वास नहीं रह गया था। अपने मित्रों में उसने चर्चा की थी—'अगर कोई अच्छा आदमी मिलता तो मैं उसे वायसराय बनाता।' यह बात कांग्रेस तक भी पहुँच ही गई। हिन्दुस्तान की साम्प्रदायिक स्थिति का इतना कम ज्ञान था कि गांधी के विचार 'एक अच्छे और कानूनदाँ' की सहायता ने उससे यह कहलाया—'नेहरू क्या बुरा है। वह भी कानूनदाँ है।' वह जिन्ना का नाम भी ले सकता था। जिन्ना भी कानूनदाँ था। सिर्फ हिन्दुस्तान के सेक्रेटरी ऑफ स्टेट लार्ड पेथिक लारेंस की सहानुभूति वेवेल के साथ रही। वह हमेशा अच्छी सलाह देता रहा, दोनों दलों में किसी तरह का समझौता कराने की उसकी ईमानदार कोशिशों की तारीफ करता रहा। पेथिक लारेंस मुसलमानों का पक्षपाती नहीं था। इस साल जब वह जिन्ना से मिला था तो उसके अड़ियलपन से धैर्य टूट गया था। लेकिन शायद जो मि० एटली को नहीं सूझा, वह पेथिक लारेंस देख सका कि जब तक देश की सबसे मजबूत पार्टी की हैसियत से कांग्रेस मुसलमानों का (जिन्ना और मुस्लिम लीग को न सही) यह विश्वास दिलाने की कोशिश नहीं करती कि वे सचमुच सहयोग के लिए तैयार हैं और स्वतन्त्र देश में सिर्फ हिन्दू राज्य नहीं होगा तब तक सच्ची शांति नहीं हो सकती।

वेवेल के वायसराय काल में घटनाओं के क्रमबद्ध आँकड़े देना इस पुस्तक का मन्तव्य नहीं है। यहाँ सिर्फ वह पृष्ठभूमि दी गई है जिसके बाद आगे का घटनाक्रम आया। निरर्थक बातचीत, कानूनी दलील, कांग्रेस के बहकने, जिन्ना के अड़ियलपन और गांधी के अस्पष्ट आदर्शवाद के बावजूद आनेवाली घटनाओं पर नक्कारखाने में तूती की आवाज से ज्यादा प्रभाव नहीं हुआ। 1946 में हिन्दुस्तान उस कड़ाह की तरह था जिसमें वे सब मसाले उबल रहे थे जो खराब-से-खराब रंग तैयार कर सकते थे—ज़िद, ज़हर, छुटपन, क्रोध, हिंसा, ईर्ष्या और रोष। सभी के हृदय में मानव-हृदय की कोमलता का अभाव था। औरों की तो बात ही क्या, गांधी भी उस वर्ष उदार नहीं रहा।

और शायद समस्या के निदान का सबसे बड़ा शत्रु था अविश्वास। जिन्ना और मुस्लिम लीग कांग्रेस पर अविश्वास करती थी। कांग्रेस को वायसराय पर अविश्वास था। वायसराय को ब्रिटेन की सरकार, खासकर एटली पर अविश्वास था। यह जरूरी नहीं कि एटली भी वायसराय पर अविश्वास करता हो, लेकिन यह भान भी ठीक थी कि वायसराय पर उसकी आस्था नहीं थी। 1946 के अगस्त के

सामने रखा उसे कांग्रेस ने नहीं स्वीकार किया तो कस्टीच्युएण्ट एसम्बली नहीं बुलाएँगे। अगर यही बात है तो 12 अगस्त को आपको वह घोषणा नहीं करनी चाहिए थी' ... ।'[1]

वेवेल ने यह सुझाया था कि अगर कांग्रेस अकेले सरकार बनाती है तो मुस्लिम लीग डायरेक्ट ऐक्शन से उसका जवाब देगी। और भी ज्यादा कत्ल होंगे, ब्रिटिश फौज की सहायता से शान्ति और व्यवस्था स्थापित करनी पड़ेगी। वेवेल बहुत ही बुरी तरह इस संभावना से बचना चाहता था। गांधी ने जो जवाब दिया वह गांधी के उस तर्क का बड़ा ही सटीक उदाहरण है जिसने वेवेल को छटपटा दिया था। गांधी का तर्क था—अगर वायसराय सचमुच चिन्तित हैं कि उन्हें शांति और अनुशासन कायम रखने के लिए ब्रिटिश फौज का उपयोग करना होगा तो इसका सीधा इलाज है—ब्रिटिश फौज वापस बुला लें और शान्ति कायम रखने का काम कांग्रेस पर छोड़ दें। गांधी ने यह नहीं समझा कि इस तरह की शांति कांग्रेस द्वारा लादी हुई शान्ति होगी और मुसलमानों को इससे क्षोभ हो सकता है।

'अगर ब्रिटिश फौज को शान्ति और अनुशासन के लिए देश में रखना पड़ा तो आपकी अस्थायी सरकार मजाक बनकर रह जायगी। ब्रिटिश फौज के सहारे लड़ने वालों पर अपना विचार कांग्रेस नहीं लाद सकती और बंगाल में प्रदर्शित खूरेंजी के कारण कांग्रेस अपने रास्ते से हटकर गलत रास्ता नहीं अपना सकती। इस तरह सर झुकाने से तो खूरेजी को दुहराने का प्रोत्साहन ही मिलेगा। दोनों ओर बदला लेने की भावना और गहरी पैठती जायगी और मौके की तलाश रहेगी जिससे इसका और भी खूंखार और शर्मनाक प्रदर्शन हो सके। और यह सब कुछ इसीलिए होगा कि देश में ऐसी विदेशी सत्ता मौजूद रहेगी जिसके पास शक्तिशाली फौज है और जो अपनी फौज पर गर्व करती है।—गांधी ने लिखा था।[2]

यह बिलकुल बेकार बात थी। नेहरू और कांग्रेस के अन्य नेता इसे जानते थे, चाहे गांधी भले न जानता हो। कलकत्ता में ब्रिटिश फौज की सुस्ती पर उन लोगों ने काफी शिकायत की थी। लेकिन कांग्रेस पार्टी का लौहपुरुष सरदार पटेल वायसराय के पास कई बार आया था कि ब्रिटिश फौज की सहायता मिल सके। बिहार में कलकत्ता का बदला लेने के लिए हिन्दुओं ने बलात्कार और खूरेजी का दौर शुरू कर दिया था और कांग्रेस अच्छी तरह जानती थी कि पंजाब में (16 000 000 मुसलमान और 12 000 000 गैर मुसलमान) वर्षों के गवर्नर सर इवान जेन्किन्स के कड़े अनुशासन और समय के अवसर पर ब्रिटिश फौज के हस्तक्षेप की संभावना के कारण ही शान्ति कायम थी।

उस समय जब हिन्दू-मुसलमान का सम्बन्ध पहले की अपेक्षा खराब था, ब्रिटिश फौज वापस बुला ली जाय—यह ऐसी सलाह थी जो कोई भी वायसराय नहीं

---

1 प्यारेलाल, गांधी, द लास्ट फेज।
2 प्यारेलाल, गांधी, द लास्ट फेज।

मान सकता था। वेवेल को यह बहुत जरूरी लगता था कि जाने के पहले अंग्रेजों को किसी तरह दोनों विरोधी दलों को एक सरकार में शामिल करा दिया जाए ताकि उनकी लड़ाई संसद् भवनों में हो, न कि गलियों में। वेवेल को लगता था कि जब तक मुस्लिम लीग का सहयोग प्राप्त करने की थोड़ी भी आशा है तब तक सिर्फ कांग्रेस को सरकार बनाने देना अपने कर्तव्य को भूल जाना है।

ऐसे विचार के लिए गांधी ने वेवेल पर खुल्लमखुल्ला मुसलमानों के पक्षपात का इलजाम लगाया (हालांकि पीछे चलकर उसने माफी मांगी और इलजाम वापस लिया)। पंडित नेहरू ने भी वही इलजाम लगाया लेकिन ब्रिटेन के अपने कुछ दोस्तों के व्यक्तिगत पत्रों में। पंडित नेहरू व्यक्तिगत पत्रों द्वारा सम्बन्धों की मजबूती में पक्का विश्वास रखनेवाला था। लिबरल या वामपक्षियों के बीच उसके कई दोस्त थे। और लड़ाई के जमाने की सम्मिलित सरकार में भी कांग्रेस की नीति की रूपरेखा प्रदर्शित करने में उन लोगों ने काफी सहायता की थी। लेबर सरकार के बन जाने पर वे बात सरकार के कर्णधारों के कान में सीधे पहुँचा सकते थे। वे सरकार की नीति तय करने में मदद कर सकते थे। इस चाल के लिए कोई नेहरू पर दोष नहीं लगा सकता। जिस राजनीतिज्ञ का विश्वास हो कि जिन्ना देश की स्वतन्त्रता का खतरा है वह इसे चकनाचूर करने के लिए तरकस का हर तीर काम में ला सकता था। अगर एक तीर वायसराय को गिरा देता है तो उसकी दृष्टि से अच्छा ही है। इसलिए पूरी वाक्चातुरी और तत्परता से वह चिट्ठी-पर-चिट्ठी लिखता गया। यह उम्मीद थी ही कि बात 10 डाउनिंग स्ट्रीट तक पहुँच जायगी कि वेवेल ईमानदार और सच्चा आदमी तो है, लेकिन कमजोर है। मि० जिन्ना और मुस्लिम लीग को खुश करने की कोशिश में उसका दिमाग एकदम जड़ हो गया है। नेहरू के विचार से इसका कारण था उसके दो प्रमुख सलाहकार। सिर्फ उनका ही प्रभाव वायसराय पर पड़ता था। वे दोनों कांग्रेस विरोधी थे और मुसलमानों का पक्ष लेते थे। जान-बूझकर ऐसी चाल चलते थे कि वेवेल अपने को ऐसी परिस्थिति में पाता था जिसमें मुस्लिम लीग का पक्ष लेता था। नेहरू ने इनको 'अंग्रेज मुल्ला' कहकर सबोधित किया था और इनके नाम थे सर फ्रांसिस मूडी (बम्बई का तत्कालीन गवर्नर) और वायसराय का प्राइवेट सेक्रेटरी मि० (पीछे चलकर सर) जार्ज एबेल। उन दोनों ने मिलकर वायसराय के दिमाग में यह बैठा दिया था कि मुस्लिम लीग शामिल न हो तो कांग्रेस को किसी भी हालत में अस्थायी सरकार बनाने नहीं दिया जाय। सर फ्रांसिस मूडी अपने मुसलमान साथियों की मदद करना चाहता था और मि० जार्ज एबेल हिन्दुस्तान की आजादी को टालना चाहता था।

इस दोषारोपण में सत्य का काफी अंश था कि सर फ्रांसिस मूडी जिन्ना और लीग का कट्टर पक्षपाती और कांग्रेस का विरोधी था। एबेल का दृष्टिकोण शायद इस तरह रखा जा सकता है—दोनों जहन्नुम में जायें। उसमें वेवेल से कम धैर्य था। और हिन्दुओं तथा मुसलमानों की बातचीत के दावपेंच, षड्यन्त्र और बारीकियों से घबरा उठता था। लेकिन यह सोचना कि इन दोनों ने वेवेल की विचारधारा को

खतम होने से पहले ही उसने इसे स्पष्ट भी कर दिया। एक व्यक्तिगत तार में उसने लार्ड वेवेल को बताया कि वह उसके अधिकारों की उपेक्षा करने जा रहा है। वेवेल अभी भी यही चाहता था कि जब तक मुस्लिम लीग अस्थायी सरकार बनाने के लिए राजी न हो जाय, नई सरकार को शासनारूढ़ न किया जाय। उसको पूरा विश्वास था कि लगातार कोशिश, दृढ़ निश्चय, कांग्रेस की ओर से उदारता का प्रदर्शन और जिन्ना पर थोड़े दबाव से काम बन जायगा। एटली का कहना था कि अब देर करने पर कांग्रेस के नेता नाराज होंगे और शायद ब्रिटिश सत्ता और उनके बीच का सम्बन्ध टूट जायगा। फल होगा कि असहयोग आन्दोलन और ब्रिटिश-विरोधी उपद्रव देश भर में हो जाएगा। कांग्रेसी नेताओं की विचारधारा समझने में यह भयानक भूल की गई क्योंकि असहयोग आन्दोलन का अर्थ होता सभी का जेल जाना। लेखक से नेहरू ने कहा है—'हम सभी थके थे। हम लोग फिर जेल जाने के लिए तैयार नहीं थे।' लेकिन ब्रिटिश प्रधान मन्त्री ने इसे नहीं समझा। उसने वेवेल को आज्ञा दी कि अस्थायी सरकार बना दी जाय। और 2 सितम्बर, 1946 को यह सरकार बन गई। पाँच व्यक्ति स्थानापन्न मिनिस्टर की तरह तब तक के लिए रख लिये गए जब तक कि मुस्लिम लीग भी शामिल न हो जाय।

वायसराय की हार करारी थी। ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस पर यह साबित कर दिया था कि वायसराय में उसका विश्वास नहीं था। इस क्षण के बाद हिन्दू या मुसलमान, दोनों में से किसी पक्ष को यह समझने की जरूरत नहीं थी कि बात-चीत के लिए वायसराय भी कोई महत्त्वपूर्ण व्यक्ति है। 1946 के अगस्त की इस हरकत ने वेवेल की ताकत प्रायः खतम कर दी और एक-दूसरे से उलझनेवाले साम्प्रदायिक नेताओं से जूझने के लिए बेसहारा छोड़ दिया। इस व्यक्तिगत मानहानि के समय वेवेल ने वितृष्णा के विलक्षण अभाव का परिचय दिया। उसका हृदय तो कहता था कि तुरन्त स्तीफा दे दे, लेकिन ऐसा कदम उठाने पर ब्रिटिश सरकार के सामने जो कठिन समस्या आएगी इसका उसे एहसास था। हिन्दुस्तान में जो संकट उठ खड़ा होगा इसका अन्दाज़ था। वह अपने पद पर बना रहा। नेहरू, जिन्ना और लियाकतअली खाँ से मिलने का थका देनेवाला क्रम भी चलता रहा हालाँकि गांधी से फिर उसकी मुलाकात इक्की-दुक्की ही हुई। (साम्प्रदायिक हिंसा के विरुद्ध अपने महान् मत जैसे और विलक्षण रूप से प्रभावशाली अभियान के लिए महात्मा बिहार और बंगाल चले गए थे) नेहरू, जिन्ना और लियाकत के साथ वह लंदन गया मि० एटली और पेथिक लारेंस के साथ वार्ता के लिए। इस यात्रा से वही नाटक बना रहा। लेबर सरकार के भीतरी क्षेत्र में (शायद मि० अर्नेस्ट बेविन को छोड़कर) नेहरू का बड़ा ही अच्छा प्रभाव हुआ। वे कांग्रेस के विचारों से सहमत होने के लिए झुके। सच हुए और अड़ियल जिन्ना के लिए उनके पास शायद ही कोई सहानुभूति हो। दूसरी तरफ टोरी पार्टी के सदस्यों से जिन्ना को काफी मदद मिली और कामंस के बाद पाकिस्तान पर भाषण देने के लिए वह रुक गया जिससे उसका पक्ष लेनेवालों की संख्या भी बढ़ी। वेवेल की हालत उस अतिथि-जैसी थी

जिसे पारिवारिक बातचीत के समय इसलिए चुना लिया गया था कि वह नाम के लिए मुखिया था लेकिन जिससे सभी ऊबे हुए थे। जब वेवेल लौटकर दिल्ली आया तो उसने कहा—'मैं अपने को गरीब रिश्तेदार महसूस कर रहा था।'

कांग्रेस और मुस्लिम लीग की विचारधारा लचीली होने के बदले लदन कान्फ्रेंस के बाद और भी सख्त हो गई। दोनों सम्प्रदायों के बीच बढ़ती हुई दुर्भावना और खूनी दंगे जो सारे देश में फैल रहे थे, जिन्ना का ही काम कर रहे थे। अब तो यह यह नारा था— हिन्दुओं को भी पाकिस्तान चाहिए, कम-से-कम अपने लोगों को कत्ल से बचाने के लिए।' कांग्रेस में भी ऐसे लोग थे जो उससे सहमत होने लगे थे। लेकिन उनमें नेहरू और गांधी का नाम नहीं था और उस समय कांग्रेस की विचारधारा पर असर डालनेवाले सबसे अधिक प्रभावशाली ये ही दो थे।

साम्प्रदायिक उपद्रव, राजनीतिक जिद और हिन्दू तथा मुस्लिम नेताओं की दुरंगी बातचीत की समस्याओं से उलझता हुआ वेवेल एक मामले में और भी सख्त होता गया। उसका निश्चय दृढ़ हो गया कि हिन्दुस्तान के भविष्य की समस्या चाहे जितनी गहन हो, देश और उसकी सेना के बँटवारे की जिम्मेदारी वह अपने सर कभी न लगा। उसकी नजर में सिर्फ एक ही रास्ता था—हिन्दुस्तान से ब्रिटिश शासन की क्रमिक वापसी ताकि टुकडे-ब-टुकडे, प्रान्त के बाद प्रान्त के सामने अपना भविष्य सम्भालने और आपस में समझौता करने का मौका आए।

अपने प्रधान सलाहकार मि० जार्ज एवल और कई अंग्रेज प्रशासकों की सहायता से उसने एक योजना बनाई। योजना का प्रकार ऐसा था कि उसे निष्क्रमण योजना (ऑपरेशन एब टाइड) कहा जा सकता है। इस योजना में निश्चित रूप से यह बुनियादी स्वीकारोक्ति थी कि हिन्दुस्तान में अंग्रेजों के दिन खतम हो गए। संक्षेप में अंग्रेजी फौज और अंग्रेजी शासन को धीरे-धीरे वापस लेने की यह योजना थी। लेकिन वेवेल के कुछ आलोचकों ने पीछे कहा कि यह सब छोड़-छाड़ कर चल देने की योजना थी। यह बात गलत है। जब विन्सटन चर्चिल ने सुना तो आग-बबूला हो गया। हिन्दुस्तान में पंजाब का सर इवान जेन्किन्स-जैसा प्रशासक और हिन्दुस्तानी फौज के कमाण्डर जनरल आचिनलेक इसके विरुद्ध थे। जेन्किन्स की राय में यह योजना कार्यरूप में परिणत नहीं हो सकती थी। आचिनलेक का विश्वास था कि हिन्दुस्तान में अभी भी ब्रिटेन को महत्त्वपूर्ण काम करना बाकी है और अशान्ति तथा रक्तपात के बावजूद घबराकर वापस नहीं होना चाहिए।

लेकिन निष्क्रमण योजना घबराहट की योजना नहीं थी। वेवेल की धारणा के अनुसार ब्रिटिश सत्ता और फौज की वापसी घबराकर और एकाएक नहीं हो सकती। किसी प्रान्त को तब तक नहीं छोड़ा जायगा जब तक कि विश्वसनीय सुरक्षा और शांति स्थापित न हो जाय। लेकिन यह स्पष्ट कर दिया जायगा, खासकर हिन्दुस्तानी नेताओं पर कि अंग्रेज जा रहे हैं और उन्हें आपस में मिल-जुलकर रहने की कोशिश करनी चाहिए जब वे खुदमुख्तार हो जाएँ।

वेवेल ने यह निष्क्रमण योजना 1947 के शुरू में मि० एटली के पास भेज

दी ताकि मन्त्रिमण्डल इस पर विचार कर सके। पीछे चल कर जो फैसला किया गया, उसके अनुसार मन्त्रिमण्डल की प्रतिक्रिया विलक्षण थी। घबराये हुए खरगोश की तरह वे भड़क उठे। पीछे वेवेल ने राजा जार्ज VI को लिखा था—'उनकी अनिच्छा खासकर इसलिए थी कि वे पार्लियामेंट के सामने खुलकर कहना नहीं चाहते थे कि ब्रिटिश सत्ता जल्द ही हटाई जा रही है।' अपनी ही पार्टी के दक्षिणपक्षियों का उन्हें डर था, टोरी पार्टी का डर था और खासकर डर था विन्सटन चर्चिल का। वेवेल की योजना को उन्होंने गर्म आलू की तरह फेंक दिया। हालांकि बहुत ही जल्द उन्हें और भी गर्म योजना सम्हालनी पड़ी। वेवेल की योजना के बारे में अर्ल एटली ने कहा

'तब तक वेवेल पराजयवादी हो चुका था। हिन्दुस्तानी सिविल सर्विस के लोगों की सहायता से उसने ब्रिटिश निष्क्रमण की एक योजना बनाई। जो कोई जहाँ था, वहाँ से कदम-ब-कदम पीछे हटता हुआ कराची या बम्बई पहुँचता। फिर जहाज पर रवाना हो जाना। मैंने सोचा कि इसे विन्सटन शर्मनाक और मूर्खता की मंशा देगा और ठीक ही देगा। मैं भी इसे देखने के लिए तैयार नहीं था।'

पीछे चलकर जो हुआ उसकी दृष्टि से ये शब्द न सिर्फ कटु थे बल्कि अन्याय-पूर्ण थे। ये अराजनीतिक भी थे, अज्ञान के चिह्न भी थे। कारणों की कमी नहीं जिनमें संकेत मिलता है कि निष्क्रमण योजना न सिर्फ कारगर होती बल्कि उससे लाखों जानें भी बच जातीं। कांग्रेस पार्टी तो इसका स्वागत करती ही, कुछ अपवाद के साथ जिन्ना और मुस्लिम लीग द्वारा भी इसका स्वागत होता। अभी भी कांग्रेस का नारा था, 'भारत छोड़ो'। गांधी के जीवनी लेखक और सहकर्मी प्यारेलाल ने लिखा है कि गांधी भी इसे न्यायोचित चुनौती मानकर स्वागत करता 'बशर्ते कि ब्रिटिश सरकार हिन्दुस्तानियों के हाथों सम्पूर्ण सत्ता सौंप दे और सद्भावना तथा शिष्टता के साथ ब्रिटिश फौज वापस हो जाय।' यह ठीक है कि मुस्लिम लीग का नारा था—'बँटवारा करो और जाओ।' लेकिन वेवेल की योजना के अनुसार वापसी के अर्से में अल्प-संख्यकों की सुरक्षा का उचित प्रबन्ध हो जाता। मुसलमान प्रधान क्षेत्रों में ही ब्रिटिश फौज इकट्ठी होती और इस तरह उस अर्से में जब तक कि कार्य-प्रणाली निश्चित नहीं हो जाती, मुसलमानों की सुरक्षा निश्चित हो जाती। वेवेल की योजना से जो अंग्रेज चिन्तित थे उनके अनुमान के अनुसार इस सिलसिले में लगभग 30,000 जानें जातीं। इस संख्या ने बहुतों को फिर से सोचने पर मजबूर कर दिया। हालांकि एक साल बाद जो कुछ हुआ उसकी संख्या के सामने यह बिलकुल नगण्य थी।

किसी भी हालत में लेबर सरकार को इससे कोई मतलब नहीं था। जहाँ तक मि० एटली का सवाल था, वेवेल का वायसराय पद समाप्त था। 19 फरवरी, 1947 को वेवेल जार्ज एबेल के साथ नाश्ता कर रहा था। डाक आई। एक तार पर लिखा था, 'व्यक्तिगत और गुप्त'। वायसराय ने तार खोलकर पढ़ा। फिर नाश्ता खाने लगा। लेकिन एबेल अपने अफसर को अच्छी तरह जानता था। उसकी भंगिमा कह रही थी कि कोई बात हुई है। वह प्रतीक्षा करता रहा कि उसे भी बताया

जायगा। पांच मिनट की शान्ति के बाद आखिर वेवेल ने ही पूछा।

'श्रीमन्, कोई महत्वपूर्ण बात है क्या?'

'जार्ज, मेरी नौकरी गई।' कुछ देर चुप रहने के बाद—'शायद उन्होंने ठीक ही किया।'

लेकिन मुझे शक है कि इतिहास इससे सहमत होगा।

20 फरवरी, 1947 को हाउस आफ कॉमन्स में मि० एटली ने घोषणा की कि जून 1948 के पहले ही एक जिम्मेदार हिन्दुस्तानी सरकार के हाथों में सत्ता सौंप दी जायगी। उसने वायसराय पद से लार्ड वेवेल के इस्तीफे और एडमिरल वायकाउंट माउण्टबेटन की नियुक्ति की भी घोषणा की। वेवेल के अनवरत परिश्रम की प्रशंसा शिष्ट लेकिन उत्साहरहित थी। पीछे चलकर उसने कहा—'मैं इस निष्कर्ष पर पहुँच गया था कि वेवेल की शक्ति समाप्त हो गई थी।' निष्क्रमण योजना की चर्चा नहीं थी और न इसी बात की चर्चा थी कि एटली के बहुत पहले वेवेल ने भारतीय समस्या का सामना किया था। उसने सिर्फ यह घोषणा की कि उसके काम के बदले अवकाश प्राप्त करनेवाले वायसराय को अर्ल की उपाधि (असफलता या मतविरोध का प्रचलित ब्रिटिश पुरस्कार) से विभूषित किया गया है। वेवेल की विनम्रता ने उस उपाधि को ठुकराने नहीं दिया। कुछ सप्ताह तक वह काम करता ही गया। उसी तरह हिन्दुस्तानी नेताओं की बातचीत सुनता, उसी तरह कांग्रेस को उदारता के लिए बढ़ावा देता, उसी तरह मुस्लिम लीग को राजनीतिज्ञों की तरह पेश आने के लिए सलाह देता। उसने सिर्फ एक ही कटु आलोचना की और वह भी व्यक्तिगत बातचीत में—'हमेशा मेरे हिस्से गंदगी ही पड़ती है। है न जार्ज?

जून, 1948 हिन्दुस्तान में सत्ता हस्तान्तरित करने के लिए तिथि निश्चित कर दी गई थी। कांग्रेस के लिए यह खुशी की बात थी।

नेहरू ने घोषणा की—'साफ और स्पष्ट घोषणा कि जून 1948 तक सत्ता हस्तान्तरित हो जाएगी, सभी प्रकार के शक और गलत धारणाओं को दूर कर देता है। लेकिन इसके साथ ही देश की वर्तमान स्थिति में एक तरह का तथ्य और गतिशीलता भर देता है।'' यह हम सभी के लिए एक चुनौती है और हम लोग साहस के साथ उसी दृष्टि से इसका सामना करने की कोशिश करेंगे।

मि० जिन्ना की प्रतिक्रिया छोटी थी—'अभी मैं अपने विचार नहीं व्यक्त करना चाहता। सिर्फ इतना ही कहूँगा कि मुस्लिम लीग पाकिस्तान की अपनी मांग से जरा भी नहीं हटेगी।'

ब्रिटेन में कुछ लोगों ने इस घोषणा की निन्दा की। सर जान एंडरसन के शब्दों में यह 'एक जुआ है, ऐसा जुआ जो न्याय-संगत नहीं।' वायकाउंट टेम्पलवुड ने इसे घोर खून-खराबी की भविष्यवाणी की। लॉर्ड साइमन ने कहा—'इसका अन्त देश में शान्ति की स्थापना नहीं है। इससे सिर्फ अंग्रेजों का नाम मिट्टी में मिलेगा।' विन्स्टन चर्चिल, जिसके लिए कांग्रेस पार्टी मात्र एक भीड़ और गांधी एक उपद्रवी था, इस घोषणा पर सूखी घास पर गिरे बम की तरह भड़क उठा। उसने कहा—'इस तथाकथित राज-

नीतिज्ञों के हाथों में हिन्दुस्तान की बागडोर देकर ऐसे लोगों के हाथों शासन सौंपा जा रहा है जिनका कुछ वर्षों में कोई चिह्न नहीं रह जायगा।' उनकी सलाह थी कि एक तिथि निश्चित करने के बदले संयुक्तराष्ट्र संघ की सहायता लेनी चाहिए। उसने अन्त में कहा—'दुश्मनों से बहुतों ने ब्रिटेन की रक्षा की है। लेकिन स्वयं अपने ही हाथों से कौन उसकी रक्षा कर सकता है। इस शर्मनाक पलायन, समय से पहले की इस भाग-दौड़ द्वारा कम-से-कम हम दुख-दर्द में योगदान तो न दें जो हममें से बहुतों को कचोट रहा है, शर्म की रेखा और रंग तो न बढ़ाएँ।'

ये अतिशयोक्ति पूर्ण शब्द थे जिनका न तो पार्लियामेंट में किसी पर असर पड़ा और न दुनिया में। सभी का रुख इन शब्दों में केन्द्रित किया जा सकता है—'तो ब्रिटेन जून, 1948 में हिन्दुस्तान छोड़ रहा है। शुक्र है, कहानी खतम हुई।'

लेकिन कहानी तो खतम नहीं हुई। और वी० पी० मैनन-जैसे हिन्दू इतिहास-कारों के लिए, जिन्होंने लिखा था, 'भारत में भी''''''यह दुस्साहस का काम समझा गया,' कई झटके आनेवाले थे।

मि० एटली ने माउण्टबेटन को नया वायसराय चुना। कारण गिनाया—'उस में हर तरह के लोगों के साथ मिलकर काम करने की विलक्षण क्षमता है। दक्षिण-पूर्वी एशिया के सैनिक प्रधान की हैसियत से उसने इसका परिचय दिया है। और साथ ही-साथ उसको असाधारण पत्नी पाने का भी सौभाग्य प्राप्त है।'

उसमें एक और गुण था। जब उसके हाथ कोई काम सौंपा जाता था तो वह देर नहीं लगाता था। दूसरे लोग हिचकिचा सकते हैं, समस्या पर समझ-बूझ कर गौर कर सकते हैं। लेकिन माउण्टबेटन काम में पिल पड़ने में विश्वास करता था, जरूरत पड़ती तो सरल रास्ता भी अपनाता था। जून, 1948 तक हिन्दुस्तान को आज़ाद करने की समस्या को उसने उस विशेषज्ञ की तरह सुलझाना शुरू किया जो किसी कारखाने में समय की बरबादी कम करने के लिए बुलाया गया हो और निश्चित अवधि से पहले काम पूरा करना चाहता हो।

अध्याय 3

भविष्य जिनके हाथों में था

1947 म किन लोगो के हाथो मे हिन्दुस्तान का भविष्य था ?

अब तक के वर्णन मे हम घटना-क्रम से परिचित होते रहे ; लेकिन जिन लोगो के कारण घटना-क्रम का निर्माण होना था उनके चरित्र या पृष्ठभूमि के बारे मे कुछ नही जाना। इस समय हमारे लिए भी ठीक वही करना उचित होगा जो हिन्दुस्तान जाने के पहले माउण्टबेटन ने किया था और जिस प्रकार के दल तथा नेताओ मे उलझना पडेगा, उन पर सोच विचार करता था।

यह ठीक है कि स्वतन्त्रता के नाटक में भाग लेनेवाले बहुत-से व्यक्तियो और पार्टियों की चर्चा अभी नही की गई है। इस कहानी मे अब, बुरे या भले के लिए, उनकी चर्चा बार-बार आयगी। इसलिए यह जान लेना जरूरी है कि वे क्या हैं ताकि यह समझ म आ सके कि उन्होने क्या किया और क्यो किया।

अब तक यह स्पष्ट हो गया होगा कि 1947 तक आजादी की लडाई का रूप हो गया था हिन्दुस्तानियों (काग्रेस) की हिन्दुस्तानियो (मुस्लिम लीग) के साथ लडाई। ब्रिटिश उस लडनेवाले रेफरी की तरह था जो ठीक खेल के लिए कभी-कभी दखल देता था और कभी-कभी छल मे खुद वार कर बैठता था। इसके अलावा (वाशिंगटन की ही भाषा मे) घेरे के कोनो मे सहायक इकट्ठे थे जो एक-दूसरे के दुश्मन थे और जो कभी-कभी बीच मे शामिल हो जाते थे। फिर तो जिसकी लाठी उसकी भैंस !

इनमे सबसे अधिक भाग लेनेवाले और डरपोक सिख थे हालाँकि उनकी सख्या (4,500,000) अन्य सख्याओ के मुकाबले मे बहुत ही कम थी। ये हिन्दुस्तान के उत्तर-पश्चिम भाग मे स्थित पजाब यानी पाँच नदियो के क्षेत्र म केन्द्रित थे। हालाँकि मुसलमानो की सख्या 16,000,000 थी और हिन्दुओ की 7,500,000 , फिर भी मनोवैज्ञानिक, आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से वे हमेशा अपनी मौजूदगी का एहसास कराते रहते थे। सिख हिन्दुस्तान की सबसे लड़ाकू जाति थी और अग्रेजो ने सबसे अन्त मे उन्हें सर किया था। तबसे स्वतन्त्रता तक सिखो ने ब्रिटिश राज के सबसे प्रभावशाली अस्त्र हिन्दुस्तानी फौज के लिए बाँके जवान दिए। पजाब में पाँचों नदियो मे नहरो का जाल उन लोगों ने बिछाया। धरती मुस्करा उठी। पजाब पूरे हिन्दुस्तान का खलिहान बन गया। ये लोग न सिर्फ अच्छे किसान थे बल्कि अपने पडोसियो के विपरीत मशीनों के काम मे भी कुशल थे। यातायात म उनका बडा हाथ था (ड्राइवर, मेकेनिक और भारी हिस्से के लिए पुलिस भी काफी तादाद म थे)।

धार्मिक दृष्टि से ये हिन्दुओं और मुसलमानों, दोनों से भिन्न हैं। इतना ही नहीं, इस भेद पर उन लोगों को बड़ा ही खूँखार फख्र है। एक परम सत्ता या भगवान में उन लोगों का विश्वास है और वे मानते हैं कि भगवान का आदेश दस गुरुओं की परम्परा में पृथ्वी तक आया है। उनमें से अधिकांश बहादुर योद्धा थे। जहाँ-जहाँ इन गुरुओं ने दम तोड़ा (साधारणतः मुगलों या मुसलमानों के साथ युद्ध में) वे स्थल मुख्यतः उत्तरी हिन्दुस्तान में हैं। इनमें सबसे प्रमुख पश्चिमी पंजाब का ननकाना साहब है। उनका रोम, मक्का, कैन्टरबरी, जो मर्जी हो कह लीजिए, अमृतसर का विशाल स्वर्ण मन्दिर (गोल्डन टेम्पल) है। मन्दिर के चारों ओर उनका पवित्र तालाब है जिसमें तरह-तरह की मछलियाँ भरी पड़ी हैं। लेकिन अन्य धर्मस्थलों या गुरुद्वारों की तरह स्वर्ण-मन्दिर (गोल्डन टेम्पल) में किसीके आने-जाने की रोक-टोक नहीं और धर्मार्थी के लिए हमेशा भोजन और आश्रय मिल जाता है (हालांकि दंगे के समय मुसलमान का उसके निकट जाना भी मूर्खता ही होगी)। कोई भी धर्म-परिवर्तन द्वारा सिख बन सकता है। इस धर्म में आचार विचार तथा नियमादि का बहुत झमेला नहीं है। मर्दों के लिए पाँच चीजें जरूरी हैं। इन्हें पाँच 'क'—ककार कहते हैं। केश यानी लम्बे बाल और मूँछ दाढ़ी जो सभी अन्य हिन्दुस्तानियों से उन्हें अलग कर देते हैं। (किसी तालाब में सर्द सिख नहा रहे हों तो अजीब तमाशा दृश्य उपस्थित होता है।) कंघा केश में लगा होता है। कच्छा एक तरह का जाँघिया है। कड़ा लोहे का होता है और दाहिने हाथ में पहना जाता है। कृपाण यानी छोटा-सा लेकिन तेज चाकू। नहाते समय छोड़कर ये हमेशा सिख के शरीर पर होने चाहिएँ।[1]

सिख कोई भी शराब पी सकता है लेकिन किसी भी हालत में तम्बाकू का सेवन नहीं कर सकता। बम्बई में जब दंगा हुआ था तो एक कार्टून में सिख को हुक्का पीते दिखाया गया था। कुछ सिख ऐसे भी हैं जो बाल और मूँछ-दाढ़ी कटवाते हैं। साधारणतः ये लोग बड़े शहरों में रहते हैं और इन्हें व्यंग्य में मैकेनाइज्ड सिख या मोना कहते हैं।

माउण्टबेटन के आने के पहले सिखों ने महसूस किया कि हिन्दुस्तान की आज़ादी की लड़ाई में उनकी स्थिति अजीब रही। उनकी आज़ादी का अधिकांश सारे पंजाब में बिखरा था और उनकी कुछ सबसे कीमती नहरें तथा सबसे अधिक उपजाऊ जमीन पंजाब के सुदूर पश्चिम में थी। उनके पड़ोसी मुसलमानों से उनके सम्बन्ध अच्छे नहीं थे। माउण्टबेटन के आने से ठीक पहले रावलपिंडी में सिखों का कत्ल हो चुका था। मुसलमानों के प्रति अपनी घृणा को न तो वे छिपाते थे और उसके जवाब में मुसलमान भी खुल्लमखुल्ला सिखों की बुराई करते थे। सिखों की दलील थी—जब आज़ादी आएगी तो हम लोगों का क्या होगा? अगर जिन्ना को पाकिस्तान मिल गया तो पंजाब कम-से-कम पश्चिमी पंजाब उसका होगा। मुसलमानों के अधीन अल्पसंख्यक बनकर हम रह नहीं सकते। और अगर हम नहीं रह सकते तो हमारी जमीन, मकान, नहर और

1 इससे दंगे के समय बड़ा संकट उपस्थित हो जाता था। सिखों को कृपाण लेकर बाहर निकलने से मना करने पर हमेशा धार्मिक उत्पीड़न की दुहाई दे सकते थे।

धार्मिक स्थानों का क्या होगा ? अगर केबिनेट मिशन योजना के रूप मे आजादी आई तो क्या होगा ? पंजाब B टुकडे मे जाएगा जिस पर मुसलमानो का आधिपत्य होगा। वे हमे पीस देंगे।

पंजाब मे सिखो के दो राजनीतिक नेता थे—बलदेवसिंह (अस्थायी सरकार मे सुरक्षा विभाग जिसके अधीन था) और ज्ञानी करतारसिंह। लेकिन आनेवाले दिनो मे जिसमे उलझना पड़ा उसका नाम था मास्टर तारासिंह—सफेद दाढ़ीवाला बूढा आदमी, चमकती हुई आँखें, बातचीत मे कबूतर-सी, लेकिन सार्वजनिक भाषण मे बाज-सी आवाज, मुसलमानो के प्रति खूंख्वार, घृणा और नए स्वतन्त्र राज्य खालिस्तान का प्रथम नायक होने की इच्छा। उसने चीखकर कहा—'दिल्ली मे जो भी फैसला होगा, हमारे आदमी बिना मालिक के देश मे अनाथ बच्चे-से होंगे।'

सिखो के धर्मग्रन्थ गुरुग्रन्थ साहिब, जो स्वर्ण-मन्दिर (गोल्डन टेम्पल) मे रखा है, के ज्ञान के कारण तारासिंह को मास्टर की उपाधि दी गई थी। सिखो की जीवन-प्रणाली के बारे मे उसने कहा था—'मूर्तिपूजा, जातिप्रथा, सतीप्रथा, विलास के लिए स्त्रियो का बन्धन, नशे का असंयमित सेवन, तम्बाकू का प्रयोग, बच्चो की हत्या, अपराध, हिन्दुओ के धार्मिक कुंडो मे स्नान मे परहेज तथा स्वामिभक्ति, कृतज्ञता, दान, निष्पक्षता, सभी के लिए न्याय, सचाई, ईमानदारी, शिष्टता और विनम्रता का प्रचार।'

इस कहानी मे पता चलेगा कि मास्टर तारासिंह खुद इन सिद्धान्तो को नही मानता था और मौका आने पर खून का प्यासा बुड्ढा बन जाता था। 1947 मे उसकी आयु 71 वर्ष थी।

डॉ० भीमराव रामजी अम्बेडकर की आयु 54 वर्ष थी। 50,000,000 हिन्दुस्तानियो या दूसरे शब्दो मे देश की आबादी के सातवें भाग के प्रतिनिधि की हैसियत से यह उम्मीद की जा सकती है कि वह बड़ा ही शक्तिशाली राजनीतिक नेता होगा। जिन लोगो का नेतृत्व अम्बेडकर के हाथो था, वे अछूत थे। अंग्रेज उन्हें परिगणित जाति (शिड्यूल कास्ट) के नाम से पुकारते थे।[1] उनका नेतृत्व पाना एक बात थी और उनकी संख्या का जनमत के समय उनसे उपयोग करा सकना दूसरी बात थी। आज अछूतो की हालत बहुत अच्छी है। सरकार मे उन्हें नौकरी मिल सकती है, शहरो मे वे स्कूल जा सकते हैं और कानूनन उन्हें पाखाना ढोने के लिए गाड़ी दी जाती है, सर पर ढोना नहीं पड़ता। लेकिन 1947 मे हिन्दुस्तान के अछूतो की हालत बहुत खराब थी।

हिन्दुओ के जातिमूलक समाज मे वे सचमुच अछूत थे। वे हिन्दुओ के देवता को पूजते थे लेकिन किसी भी मन्दिर का दरवाजा उनके लिए खुला नही था। उनके बच्चे स्कूल नही जा सकते थे। उसी घाट पर वे अपनी लाश नही जला सकते थे। जो थोड़ी-बहुत मजदूरी उनके पास होती, वह काफी नहीं होती। इसलिए यह काम

1 गांधीजी इन्हें हरिजन या ईश्वर की सन्तान कहते थे।

चीजों को ही पूरा करना पड़ता था। उनके लिए हमेशा छोटे काम होते थे—झाड़ू देना, कपड़े साफ करना, चमड़े का काम करना (मेहतर, धोबी, मोची—धार्मिक दृष्टि से नीच पेशा) और उनका तथा उनके बच्चों का भविष्य पहले से ही अन्धकारमय था। कहीं आशा की कोई रेखा नहीं। गाँवों में जहाँ जाति-प्रथा पर जोर था, किसी सवर्ण हिन्दू को देखते ही उन्हें दूर हट जाना पड़ता था ताकि उनकी छाया से वह अपवित्र नहीं हो। दक्षिण में अपवित्र होने की ऐसी विभीषिका थी कि रात को मार-पीट, भुखमरी और पानी की बन्दी का खतरा उठाकर ही वे अपने घरों में रात को निकल सकते थे।

अधिकांश अंग्रेजों ने अछूतों की हालत देखकर हमेशा यह महसूस किया है कि इन लोगों को हिन्दू धर्म छोड़ कर क्रिस्तान या मुसलमान हो जाना चाहिए। कुछ लोग हुए भी। लेकिन इतना कुछ होने के बावजूद भारत के 50,000,000 अछूतों में अधिकांश हिन्दूधर्म में विश्वास करते थे और इसलिए यह भी विश्वास करते थे कि इस जन्म का दुख-दर्द धैर्यपूर्वक झेल लेने पर अगले जन्म में उनकी अच्छी हालत हो जायगी।

इस तरह सर झुकाकर सब कुछ सहनेवाले एक महत्त्वाकांक्षी राजनीतिज्ञ के लिए उचित साधन नहीं थे। डा० अम्बेडकर के आने तक यही स्थिति थी। अधिकांश अछूत हिन्दू राजनीतिज्ञों के कहे अनुसार चलते रहे और कांग्रेस को वोट देते रहे। और तब उनके बीच वह आदमी आया जो इस बात का जीता-जागता सबूत था कि अछूतों के लिए भी जीवन सुधारने का मौका है। रेस के मैदान में भीख माँगते हुए एक लड़के को बड़ौदा के गायकवाड़ ने देखा। उसकी तेजी से प्रभावित होकर उसे पढ़ाया-लिखाया और अन्ततः कोलम्बिया विश्वविद्यालय, न्यूयार्क भेज दिया। उसके बाद जर्मनी और ब्रिटेन (लंदन स्कूल ऑफ इकॉनॉमिक्स) में शिक्षा हुई। अन्तत वह एक बैरिस्टर की हैसियत से हिन्दुस्तान लौटा। मंशा थी सिविल सर्विस में शामिल होने की। लेकिन नौकरी मिली एक किरानी की। पश्चिमी हिन्दुस्तान में तरह-तरह के काम करता हुआ वह घूमता रहा। लेकिन सभी नौकरियाँ उसी दम खतम हो जाती जिस दम पता चलता कि वह अछूत है। कभी-कभी उसकी पिटाई भी हो जाती।

अब तक वह बहुत ही जल-भुन गया था। हिन्दू जाति प्रथा के प्रति ईर्ष्या से जलता हुआ उसने बदला लेने की ठानी, अछूतों की एक पार्टी बना कर। बहुत ही जल्द बड़े शहरों में उसके बहुत से सहायक हो गये। अंग्रेजों ने उसमें दिलचस्पी लेनी शुरू कर दी। उन लोगों ने गोलमेज कान्फ्रेंस के अवसर पर अछूतों के प्रतिनिधित्व के लिए उसे लन्दन भेजा। इस चाल से सभी हिन्दुस्तानियों या हिन्दुओं के भी प्रतिनिधित्व का दावा कट जाता था।

अम्बेडकर का लक्ष्य था कि अछूतों को भी हिन्दुओं से अलग कर मुसलमानों की तरह एक पार्टी बनाई जाय जो अलग चुनाव लिस्ट पर दर्ज हो और उन्हें भी विशेष सुविधा (वेटेज) प्राप्त हो। इस तरह कांग्रेस और मुस्लिम लीग के मुकाबले

वे तीसरी शक्ति तुरत बन जाते। उसे इस हद तक सफलता मिली कि 1932 में ब्रिटिश अनुशासन ने यह घोषणा कर दी कि अछूतों की अलग चुनाव लिस्ट तैयार होनेवाली है।

कांग्रेस ने खतरे को महसूस किया क्योंकि वह नहीं चाहती थी कि 50 000,000 हिन्दू कांग्रेस-विरोधी दल में चले जायें। अम्बेडकर का कांग्रेस विरोधी झुकाव था। गांधी को बुलाया गया। उसने अपना प्रसिद्ध अनशन आरम्भ किया। हालांकि यह सिर्फ धार्मिक दृष्टि से अछूतों की अवस्था सुधारने के लिए किया गया था लेकिन इसका यह भी राजनीतिक लक्ष्य बन ही गया कि कांग्रेस उन लोगों के लिए भी है। अंग्रेजों ने अछूतों की अलग चुनाव-लिस्ट तैयार करने का फैसला रद्द कर दिया, गांधी ने अनशन तोड दिया लेकिन अम्बेडकर को अपने लोगों के लिए अधिक प्रतिनिधित्व मिल गया।

1947 में वह जल्दी गरम हो उठनेवाला, चिड़चिड़ा और शक्की नेता बन गया था। गांधी की कोशिशों के कारण अछूतों पर उसका अधिकार घट गया था लेकिन वह भी बाजार में कांग्रेस या मुस्लिम, दोनों में से जो अधिक सुविधा दे उससे सौदाबाजी करने के लिए तैयार था।

आजादी के पहले भी दो हिन्दुस्तान थे। एक हिन्दुस्तान तो वह था जिस पर वायसराय दिल्ली में शासन करता था। दूसरा हिन्दुस्तान वह था जिसके प्रान्तों में चुनाव के फलस्वरूप सिर्फ हिन्दुस्तानियों की अस्थायी सरकार शासन कर रही थी। यही वह हिन्दुस्तान था जहाँ कांग्रेस और मुस्लिम लीग आपस में जूझते थे, जहाँ गांधी, नेहरू और जिन्ना स्वच्छन्द घूमते थे, गान करते थे काम करते थे। लेकिन उन्हें और भी स्वतन्त्रता चाहिए थी।

फिर हिन्दुस्तानी राजदरबारों का भी हिन्दुस्तान था। क्षेत्रफल में यह भारत के पाँच भागों में से दो भागों के बराबर था। आबादी की दृष्टि से लगभग 80 000,000 लोग थे यानी देश की आबादी का एक-चौथाई से कुछ ही कम। 601 ऐसे राज्य थे। विभिन्न आकारों के इन राज्यों में बड़े-से बड़ा हैदराबाद था। मध्य-भारत में स्थित इस राज्य की 14,000,000 आबादी थी और इसका क्षेत्रफल, स्काटलैंड को छोड़ दिया जाय तो, ब्रिटेन से बड़ा था। पश्चिम हिन्दुस्तान के काठिया-वाड़ में कुछ राज्य थे जिनका क्षेत्रफल 10 वर्गमील से भी कम था और जिनकी आबादी सिर्फ 900 थी। इन राज्यों का शासन महारानाओं, राजा, महाराजा, नवाब, जागीरदार और (बड़ौदा के) गायकवाड़, (नवानगर के) जाम साहब (हैदराबाद के) निजाम, (स्वेन के) वली के हाथों में था। इनमें से बहुत धनी भी थे और गरीब भी। निजाम इतना धनी था कि कंजूसी भी उसको फबती थी। कश्मीर का महाराजा इतना धनी था कि 20 पौंड से लेकर 50 000 पौंड तक के रसोई और सवारी रखता था और जिनकी सहायता मैकर्गी थी। एक बार उसने लन्दन के एक होटल में किसी गैतान औरत के चक्कर में सिर्फ एक रात में 150 000 पौंड उसका मुँह बन्द रखने के लिए दिया था। दक्षिण के राजा और जागीरदार इतने गरीब थे कि 80 पौंड में वर्ष-भर

गुजारा करते थे।

राजकुमार अच्छे भी थे और बुरे भी! मैसूर का महाराजा अपना राज-काज ऐसे अच्छे और सुव्यवस्थित ढग से चलाता था कि उसके राज्य के लोगो का रहन-सहन का स्तर हिन्दुस्तान के बाकी हिस्से के लोगो से कही ऊँचा था। त्रावणकोर का महाराजा इतना प्रगतिशील था कि उसने जाति प्रथा से जकडे हुए समाज मे भी अपने मन्दिर अछूतो के लिए खोल दिये थे। कश्मीर का महाराजा अपना राज्य हिन्दू राज्य की तरह चलाता था हालाँकि वहाँ की 95 प्रतिशत आबादी मुसलमान थी। गो-मास खानेवाले मुसलमान गो-हत्या के लिए 7 साल की सजा पाते थे। जूनागढ का नवाब अस्पताल से ज्यादा अपने कुत्तो पर खर्च करता था। अलवर के महाराजा ने एक बार पेट्रोल छिडककर अपने एक घोडे को जला दिया क्योकि वह रेस नही जीत सका। राजकुमारो म बहुत सारे अपने महलो की अपेक्षा मोंटि कार्लो पेरिस और लन्दन मे ज्यादा समय बिताते थे।

फिर भी इन सभी मे एक चीज समान रूप से थी। दिल्ली और दिल्ली के बने कानून मे वे स्वतन्त्र थे। सिर्फ ब्रिटिश राजा की सत्ता वे मानते थे। सिर्फ वैदेशिक नीति को वे मानने थे और उसका अनुसरण करते थे। हालाँकि अग्रेजो ने इन राज्यो के आन्तरिक मामला मे दखल देने का अधिकार रखा था, फिर भी वे विरले ही ऐसा करते थे जबतक कि किसी महाराजा ने कोई सार्वजनिक काण्ड न किया हो। तब भी बात इस पर निर्भर थी कि काण्ड कैसा था। वह अपने राज्य की आमदनी का अधिकाश मनमानी जिन्दगी बिताने मे खर्च कर सकता था। सिर्फ राज्य के भीतर उसका प्रदर्शन खुल्लमखुल्ला नही होना चाहिए था, बम्बई या विदेश मे जो मर्जी हो वह ठीक। विदेश म कुलटाओ से मेलमिलाप की छूट थी, सिर्फ उन्हें राज्य के भीतर लाना मना था (देसी कुलटाओ की छूट थी)। रस के घोडे भी जलाए जा सकते थे लेकिन बार-बार नही। खून भी पचाया जा सकता था, अगर खुल्लमखुल्ला नही किया गया हो। उनकी अपनी सेना थी। वह अपना कर वसूल करता था, पोस्ट-ऑफिस का मुनाफा पाता था (कभी-कभी अपना टिकट और नोट भी छापता था), राज्य होकर जानेवाली रेल के मुनाफे का हिस्सा भी पाता था। न्याय की प्रणाली भी वही निश्चित करता था (कहीं-कहीं तो कोई भी प्रणाली नहीं थी)। जनता क्या टैक्स देगी, कौन-से स्कूल और अस्पताल का उपयोग करेगी, कौन-सी नौकरी करेगी—यह सब उसकी मर्जी पर निर्भर रहता था।

वास्तव म वह पुराने जमाने के सामन्तशाही सम्राट् की तरह शासन करता था और प्रगतिशील राज्यो मे भी जनता की किस्मत सिर्फ उसके ही इशारे पर निर्भर करती थी।

राजकुमारों के इस बेमेल जमघट म ब्रिटिश हिन्दुस्तान से अलग रहन के साथ-साथ एक और चीज गहरा थी—भय। सभी को भय था कि हिन्दुस्तान स्वतन्त्र हो जाने पर उनका राज्य उनकी इच्छा के विरुद्ध छीन लिया जायगा, उनकी उपाधियाँ हटा दी जाएँगी, व्यक्तिगत सत्ता और सुविधाएँ गायब हो जाएँगी और उनकी व्यक्तिगत

सम्पत्ति पर टैक्स लग जायगा। ऐसी परिस्थिति में उनमें कोई नहीं चाहता था कि आजादी आए हालाँकि उनमें जो ज्यादा प्रगतिशील थे वे जानते थे कि यह अवश्यम्भावी है। आत्मरक्षा के लिए लड़ाई से कुछ वर्ष पहले उन्होंने चैम्बर ऑफ प्रिन्सेज की स्थापना की थी ताकि उनकी सीमा के बाहर जो आन्दोलन या घटनाक्रम चल रहा था उसका सम्मिलित रूप से सामना कर सकें। जब माउण्टबेटन वायसराय की हैसियत से 1947 में भारत आया तो, चैम्बर ऑफ प्रिन्सेज का प्रधान एक मुसलमान, भोपाल का नवाब था और नए वायसराय को उसीसे पेश आना था।[1] यह चालाक और योग्य समझौते की बातचीत करनेवाला था। 1926 में उसकी माँ ने दूसरे के हाथ से गद्दी बचाने के लिए राजपद का त्याग किया था और उसे गद्दी मिली थी। तब से यह अपना राजकाज ढंग से तो चला रहा था लेकिन निरंकुश की तरह। हिन्दुस्तान के राजकुमार उत्सव के अवसर दी जानेवाली तोपों की सलामी की संख्या से अपना महत्त्व आँकते थे। 21 तोपों की सलामी वाले राज्य थे हैदराबाद, मैसूर, बड़ौदा, कश्मीर और ग्वालियर। भोपाल 19 तोपों की सलामी वाला राजकुमार था और इस तरह अपने प्रतिद्वन्द्वी राज्य जयपुर, जोधपुर और बीकानेर की अपेक्षा उसका स्थान कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण हो गया था। इसके साथ उसके ज़ोरदार व्यक्तित्व ने इस संस्था में उसे एक कारगर हस्ती बना दिया जिसमें सदस्यगण ब्रिटेन या अमेरिका के ट्रेड यूनियन नेता की तरह व्यग्र और एक-दूसरे के विरोधी थे।

चाहे उसे जितना भी क्षोभ हो, उसने महसूस किया कि स्वतन्त्रता अवश्यम्भावी है। चेम्बर ऑफ प्रिन्सेज को साधन बना कर उसने यह स्पष्ट कर लेना चाहा कि आज़ादी मिलने पर स्वतन्त्र हिन्दुस्तान और राज्यों की परस्पर क्या स्थिति होगी। 1946 में जब कैबिनेट मिशन आया तो उसका अभिप्राय पूरा हो गया था। सर स्टैफोर्ड क्रिप्स और पीछे चलकर लॉर्ड वेवेल ने भी इसको दुहराया कि जिस दिन हिन्दुस्तान से अंग्रेजी सत्ता हटा दी जायगी और देश स्वतन्त्र हो जायगा, ब्रिटिश सत्ता का एकाधिकार या उसके प्रति वफादारी स्वतः नयी स्वाधीन भारत की सरकार में हस्तान्तरित नहीं हो जायगी। दूसरे शब्दों में, ये छोटे-छोटे राज्य अपने वे अधिकार वापस पा जाएँगे जो उन्होंने अंग्रेजों को सौंप दिया था। ये बिलकुल स्वतन्त्र होंगे, अपनी शर्तों पर नए और स्वतन्त्र हिन्दुस्तान के साथ फैडरेशन में शामिल होने के इन्तजाम के लिए पुरमुख्तार होंगे। इस तरह भोपाल के नवाब ने उम्मीद की थी कि अपने ताज के लिए, अपनी सुविधा के लिए, अपनी सम्पत्ति और भविष्य के लिए चैम्बर ऑफ प्रिन्सेज बहुत ही ज़ोरदार साधन हो जायगा। कैबिनेट मिशन की योजना के अनुसार अगर एकसंघात्मक हिन्दुस्तान बना तो ये राज्य बड़ी ही शक्तिशाली तीसरी शक्ति बन

1. यह कहना भी गलत नहीं होगा कि कुछ राज्य चेम्बर ऑफ प्रिन्सेज़ से अलग ही रहे। उनमें प्रमुख थे—हैदराबाद, मैसूर और त्रावणकोर के राज्य। इनके अपने प्रधान मन्त्री थे—निश्चित वेतन पर बहाल किये गए बड़े ही कुशल प्रशासक जिनके सहारे ये अपनी बात कह सकते थे। हैदराबाद के निज़ाम ने सर वाल्टर (अब लॉर्ड) मान्कटन को वेतन पर सलाह के लिए नियुक्त किया था।

जाएँगे (भोपाल का नवाब अछूतों को तीसरी शक्ति के रूप में सोच ही नहीं सकता था) और मुस्लिम लीग के साथ समझौता कर कांग्रेस के मुकाबले खड़े हो सकेंगे-ज़रूरत पड़ी तो वोट में कांग्रेस को पराजित भी कर सकेंगे। वह स्वयं उत्कट कांग्रेस विरोधी था और उसका अनुमान ठीक ही था कि काफी हिन्दू राजे भी कांग्रेस-विरोधी थे। अगर पाकिस्तान बना तो भोपाल को उम्मीद थी कि राज्यों को इकट्ठा कर एक स्वतन्त्र फैडरेशन बना लेंगे और पाकिस्तान या हिन्दुस्तान के साथ ढीला-ढाला सम्बन्ध कायम रखेंगे।

इस दावपेंच में उसने तीन गलतियाँ कीं। या तो वह भूल गया या इस बात को उचित वजन नहीं दे सका कि अधिकांश राजकुमार अच्छी तरह आपस में संगठित नहीं हो सकते, और वे कितने कमजोर हैं तथा कितने ग़ैर-ज़िम्मेदार! उसने यह महसूस नहीं किया कि कांग्रेस किस हद तक कृत संकल्प थी कि हिन्दुस्तान मिल जाने पर ये राज्य भी उसे मिल जाएँ। इसके लिए इन राज्यों में कांग्रेस के आन्दोलनकर्त्ता भेज दिये गए थे जिन्होंने पार्टियाँ बना रखी थीं और समय पर उपद्रव या दंगा शुरू करा सकते थे। फिर वह लॉर्ड माउण्टबेटन की अदाओं और मक्खनबाजी के लिए भी तैयार नहीं था। किसीने लॉर्ड माउण्टबेटन के बारे में ठीक ही कहा था कि बातों में वह गधे से उसकी दुम ही नहीं उतरवा सकता था बल्कि राजकुमारों से ताज भी रखवा सकता था।

पहले ही बताया गया है कि ऐसे भी राज्य थे जो चैम्बर ऑफ प्रिन्सेज़ से अलग रहे। अगर हिन्दुस्तान स्वतन्त्र हो गया तो वे अपनी लड़ाई या समझौते की व्यवस्था खुद करना पसन्द करते थे।

इनमें हैदराबाद का निजाम सबसे महत्त्वपूर्ण साबित होनेवाला था। कंजूस तो था ही, उसके पास व्यक्तिगत सम्पत्ति इतनी थी कि कहा जाता था—दुनिया का वह सबसे धनी आदमी है। इसके अलावा उसका मशहूर खानदान था—मुगल शाहंशाह औरंगजेब के सेनापति गाजिउद्दीन खाँ फिरोजजंग का वंशज। 1911 में वह गद्दीनशीन हुआ। उसकी सेना और धन की सहायता के लिए 1918 में अंग्रेजों ने उसे विशेष उपाधि दी—हिज़ एक्जाल्टेड हाइनेस। इसके साथ ही पंचम जार्ज के दस्तखत से उसे पत्र भेजा गया था जिसमें उसके लिए 'ब्रिटिश सरकार के वफ़ादार दोस्त' विशेषण का प्रयोग किया गया था। इन उपाधियों का उसे बेजा गरूर था। ब्रिटिश हिन्दुस्तान और अन्य राज्यों में बिलकुल अलग वह अपना राज्य चलाता था। अपने टिकट खुद छापकर तैयार करता था। उसकी अच्छी सेना थी जो अंग्रेज अफसरों के अधीन थी और जिसके हथियार उसके ही राज्य में तैयार होते थे। कई देशों में उसके अर्द्ध-राजनीतिक दफ्तर भी थे। हैदराबाद में उसके अधिकांश अफसर और सलाहकार, जमीनों के बड़े मालिक और कारखानेवाले मुसलमान थे, लेकिन वहाँ की आबादी का 10 प्रतिशत हिन्दू।

स्वतन्त्र हिन्दुस्तान और खासकर कांग्रेस (जिसके सदस्यों को वह नफरत की नज़र से देखता था) से निज़ाम किसी भी तरह का सम्बन्ध रखने के लिए तैयार नहीं

था। कांग्रेस के आन्दोलनकारी उसके राज्य में कदम रखते ही जेल में डाल दिए जाते थे। हालांकि छिपे रूप में कांग्रेस और कम्युनिस्ट पार्टी बहुत ही मजबूती से काम कर रही थी उसके राज्य में। यह बात भी ठीक नहीं कि वह पाकिस्तान में शामिल होना चाहता था, हालांकि कुछ हिन्दुओं ने यह इलजाम लगाया है और सरदार पटेल के शब्दों में वैसी स्थिति में 'देश के पेट में ही दुश्मन' तैयार हो जाता। जिन्ना के साथ उसकी पूरी सहानुभूति थी लेकिन हैदराबाद के भविष्य के बारे में उसकी धारणा दूसरी थी।

माउण्टबेटन के आने के बहुत पहले निजाम ने यह स्पष्ट कर दिया था कि स्वतन्त्र हिन्दुस्तान से उसका कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा। अपने रीजेण्ट नवाब छतारी और कानूनी सलाहकार सर वाल्टर मान्कटन को 1946 में लॉर्ड वेवेल से बातचीत के लिए निजाम ने भेजा था। इस अवसर पर उसने जोर दिया था कि सत्ता हस्तान्तरित होते ही निजाम पूर्णरूप से स्वतन्त्र हो जायगा (हालांकि कॉमनवेल्थ के भीतर उपनिवेश के रूप में रहने की उसे उम्मीद थी) और अपने पड़ोसी स्वतन्त्र हिन्दुस्तान से वह सिर्फ एक रास्ते की माँग करेगा। उसकी उम्मीद थी कि पुर्तगाली सरकार से कुछ व्यवस्था हो जायगी जिससे गोआ को हैदराबाद के बन्दरगाह की तरह काम में लाया जा सके। यह रास्ता हैदराबाद से गोआ तक जाता।

एक और आदमी ने हिन्दुस्तानी राजकुमारों के अधिकार और सुविधाओं की लड़ाई में महत्त्वपूर्ण पार्ट अदा किया। लेकिन वह महाराजा नहीं था। वह इंगलैण्ड का रहनेवाला था—फिनचैम्पस्टेड के विकार का लड़का, उस राजनीतिक विभाग का प्रधान जिसका जिम्मा था राजकुमारों के राज्य के हितों की देखभाल और उसका नाम था सर कॉनराड कोरफील्ड। इन राजकुमारों को सलाह देनेवाले और इनके साथ रहनेवाले रेज़ीडेण्ट की नियुक्ति भी उसीका काम था। वही वायसराय और चैम्बर ऑफ प्रिन्सेज़ के बीच की कड़ी था। जरूरत पड़ने पर राज्यों के काम में दखल देने का उसे अधिकार था और 1946 में उसने एक राजा को सिंहासन से अलग भी किया था क्योंकि उसका प्रशासन बहुत ही खराब था। लेकिन जब तक यह बिलकुल अनिवार्य न हो जाय, पर्दे के पीछे इतनी सत्ता रहने पर भी जब-तब ही वह हस्तक्षेप करता था। राजकुमारों पर उसका बहुत बड़ा प्रभाव था और उनके लिए जो लड़ाई सामने थी उसमें सचमुच ही उसने बड़ा ही महत्त्वपूर्ण और नाटकीय पार्ट अदा किया।

अपने पद के कारण सर कानराड कोरफील्ड ने हिन्दुस्तान की राजनीति में खुल्लमखुल्ला कोई हिस्सा नहीं लिया। हालांकि इसमें कोई दो राय नहीं कि कांग्रेस के प्रति उसकी कोई सहानुभूति नहीं थी लेकिन मुस्लिम लीग के प्रति भी बहुत ही हल्की दिलचस्पी थी। माउण्टबेटन के आने से पहले उसका प्रमुख काम था इन राज्यों में प्रजातन्त्र और आधुनिकता का थोड़ा-बहुत समावेश कराना और चुनाव द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों के सहारे सरकार चलाने का विश्वास दिलाना ताकि आजादी मिलने पर राज्य की सीमा के बाहर से आन्दोलन करनेवालों का जोरदार विरोध हो

सके। लेकिन उनकी सारी कोशिश नक्कारखाने में तूती की आवाज की तरह लग रही थी।

मुस्लिम लीग और कांग्रेस के नेताओं की राजनीति और चरित्र के बारे में पिछले पृष्ठों में कुछ चर्चा की जा चुकी है। लेकिन उन हस्तियों में खास तौर पर जिन्होंने आनेवाले नाटक में महत्त्वपूर्ण पार्ट अदा किया, थोड़ा और बताना जरूरी लगता है।

शारीरिक दृष्टि से मुहम्मदअली जिन्ना में हड्डियों के ढाँचे पर मांस का नाम ही नहीं था। शायद किसी भी राजनैतिक पार्टी का नेता इतना दुबला-पतला नहीं रहा हो। लगभग 6 फीट से भी ज्यादा लम्बा था वह और वजन था सिर्फ 140 पौंड। सेविल रो (लन्दन का बड़ा ही फैशनबल इलाका) के बढ़े ही खूबसूरत सूट पहनता और जूतों के मामले में काले और सफेद रंग की वह डिजाइन उसे पसन्द थी जिसे 'कॉरेसपांडेण्ट शूज' कहते हैं। कभी-कभी वह एक आँख में चश्मा लगाता था। उसका सूखा हुआ और पिचका चेहरा (अधेड़ उम्र में भी उसके गाल पिचके हुए ही थे) और चमकीली जलती हुई आँखें एक खास किस्म के जानवर की याद दिलाती थी लेकिन जब वह मुस्कराता था तो उसका चेहरा बदल जाता था और एक तरह की विनम्र सहृदयता छा जाती थी। वह अपने चेहरे मोहरे पर बड़ा अभिमान करता था और जब कभी खादी की पोशाक पहननेवाले दीवाने कांग्रेसी नेताओं से मिलने का मौका मिला, वह अपनी वितृष्णा रोक नहीं सका।

एक बार जब एक मीटिंग के बाद गाधी के साथ वह बाहर निकला और फोटोग्राफरों ने चारों ओर से घेर लिया तो गाधी ने पूछा—'यह आपको अच्छा लगता है न ?'

जिन्ना ने जवाब दिया—'आपसे ज्यादा नहीं।'

गाधी और जिन्ना में इतना सामंजस्य होते हुए भी दोनों स्वीकार नहीं करते थे। दोनों अपने अनुयायियों पर सिर्फ अपने व्यक्तित्व के कारण अपना प्रभाव रखते थे। गाधी ने एक बार जिन्ना पर दोषारोपण किया—'आपने मुसलमानों पर मेस्मेरिज्म कर दिया है।' जिन्ना ने जवाब दिया—'और आपने हिन्दुओं पर हिप्नोटिज्म कर दिया है।'

हालाँकि जिन्ना का जन्म कराची में हुआ था, लेकिन उसकी पृष्ठभूमि वही थी जो गाधी की। दोनों का परिवार काठियावाड़ का गुजराती था। काठियावाड़ के छोटे-छोटे राज्य आजादी मिलने तक भूल भुलैया की तरह पश्चिमी भारत में बम्बई तक फैले हुए थे। जैसाकि पहले कहा जा चुका है जिन्ना का दादा हिन्दू था। वह भी वैश्य-वर्ण का था। लेकिन कोई बात हुई और जिन्ना के माता पिता ने इस्लाम धर्म मान लिया और कराची चले गए।[1] क्या बात हुई, इसका किसी को पता नहीं। वहीं 1876 के क्रिसमस के दिन जिन्ना का जन्म हुआ और वह मुसलमान की तरह पाला-पोसा गया। गाधी और जिन्ना का सामंजस्य यहीं खत्म नहीं हो जाता। एक काठियावाड़ी लड़की से उसकी मँगनी हुई और जब जिन्ना की शादी हुई उस समय वह पन्द्रह वर्ष का था

1 काठियावाड़ में वैश्य जाति बड़ी कठोर थी। एक बार गाधीजी को विलायत जाने पर बहिष्कृत कर दिया था। क्योंकि हिन्दू धर्म में समुद्र पार यात्रा करना निषिद्ध समझा जाता है।

और लड़की ग्यारह वर्ष की (जब गांधी की शादी हुई थी, तो वह तेरह वर्ष का था और उसकी पत्नी बारह वर्ष की)। गांधी की तरह जिन्ना भी कानून की शिक्षा के लिए विलायत गया। लेकिन गांधी की पत्नी तो जीवित रही और कई सन्तानों की माँ भी बनी। जिन्ना की पत्नी, जब वह लन्दन में ही था, गुज़र गई।

जब जिन्ना ने लन्दन में कानून की पढ़ाई शुरू की उस समय उसकी आयु सिर्फ सोलह वर्ष थी। बहुत ही कम अर्से में यानी सिर्फ दो वर्ष में उसने परीक्षा पास कर ली। हालाँकि बीस वर्ष की आयु होने पर ही उसे 'लिंकन इन्न' में दाखिल किया गया। बम्बई लौटकर उसने बड़े ही कुशल वकील की ख्याति प्राप्त की और काफी पैसा कमाया। इसी अर्से में उसके साथियों और सहयोगियों ने उसे दो विशेषण दिए जो अन्त तक उसके साथ रहे—'उद्दण्ड जिन्ना और ईमानदार जिन्ना भी।'

तीस साल की उम्र में वह कांग्रेस में शामिल हो गया। इसमें कोई असंगति नहीं थी। उसका प्रधान लक्ष्य था हिन्दू-मुस्लिम एकता और दोनों पार्टियों को भारतीय स्वतन्त्रता के लक्ष्य की ओर बढ़ाना। 1920 तक हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रचार करता हुआ वह कांग्रेस के कर्ता-धर्ता की सूची में ऊपर चढ़ता गया। लेकिन इस समय तक कांग्रेस के कार्यकर्ताओं का ध्यान एक नया सितारा खींचने लगा था, नया सितारा जो नए और खतरनाक रास्तों की ओर इशारा कर रहा था। यह नया सितारा गांधी था। दक्षिण अफ्रीका में हिन्दुस्तानियों के अधिकारों की लड़ाई तुरन्त समाप्त हुई थी और उसका विश्वास था कि जो तरीके उसने वहाँ आज़माए थे यानी असहयोग और सविनय अवज्ञा, वह अंग्रेजों के खिलाफ भारत में भी सफल होंगे। एक ही प्रदर्शन के बाद जिसमें शान्तिपूर्ण प्रदर्शनकारियों ने दगा कर दिया, जिन्ना ने फैसला कर लिया कि न गांधी और न गांधी का तरीका उसके लिए है। दिसम्बर, 1920 के नागपुर अधिवेशन में वह आया और सभी प्रतिनिधियों से ज़ोरदार अपील की कि वे सविनय अवज्ञा का रास्ता छोड़कर वैधानिक तरीकों से अंग्रेजों से अपनी माँग पूरी करवाएँ। एक सहधर्मी मुसलमान ने ही उठकर उसको धता बताया। उसने जो कहानी कही वह इस प्रकार है

"तुम हमेशा वैधानिक तरीकों की इतनी लम्बी चौड़ी बात करते हो। एक नौजवान टोरी की कहानी मुझे याद आती है जो एक शाम कालटन क्लब से निकलकर टहलता हुआ पिकेडिली तक आया। वहाँ सेलवेशन आर्मी की मीटिंग चल रही थी। वक्ता कह रहा था—यह भगवान का रास्ता है, इसी रास्ते पर आपको चलना चाहिए। नौजवान टोरी ने पूछा—'कितने वर्षों से आप प्रवचन करते आए हैं?' वक्ता ने कहा—'बीस वर्ष।' टोरी ने जवाब दिया—'यदि बीस वर्षों में इस रास्ते आप पिकेडिली सरकस तक ही पहुँचे हैं तो इस रास्ते के बारे में मेरी अच्छी धारणा नहीं'।"[1]

उसके बाद जिन्ना धीरे-धीरे कांग्रेस पार्टी से अलग हो गया। वह गांधी के 'उपद्रव खड़ा करने' से ही असहमत नहीं था (जिन्ना की यह शब्दावली है) उसने यह भी महसूस किया कि जब तक गांधी के 'हिन्दू पुनरुज्जीवन' की चकाचौंध कांग्रेसवालों में है तब तक उसके व्यक्तित्व को सफलता नहीं मिल सकती। लेकिन

1 अपनी किताब 'जिन्ना' में हेक्टर बोलिथो द्वारा वर्णित।

1928 तक भी वह हिन्दू-मुस्लिम एकता का ही प्रचार करता रहा और इसके कुछ समय पहले उसने कहा था—'हिन्दू-मुस्लिम एकता और परस्पर उचित विश्वास के अभाव के कारण ही देश मे विदेशी सरकार जमी है।...... ...मैं यह भी कहने के लिए राजी हूँ कि भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य उसी दिन मिल जायगा जिस दिन हिन्दू और मुसलमान एक हो जाएँगे।'

क्यों उसका दिमाग फिर गया ?

हिन्दू कहते हैं, महत्त्वाकांक्षा ! कांग्रेस से अलग होने के बाद जिन्ना इंगलैंड चला गया। उसने प्रिवी कौंसिल म वकालत शुरू कर दी। उसी समय मुस्लिम लीग के सदस्य नवाब लियाकतअली खाँ से मुलाकात हुई। लियाकतअली खाँ यूरोप म सुहाग-रात मनाने गया था। लियाकत जिन्ना का बहुत बडा प्रशसक था और जब मुसलमान कांग्रेसी उसकी हँसी उडाते थे तो उसे बडा दु ख होता था। उसने मुस्लिम लीग की बडी ही दुखद तस्वीर खींची क्योंकि अच्छे नेता के बिना उसका यह हाल हो गया था। उसने जिन्ना से प्रार्थना की कि जनता की बागडोर सम्हाल ले। जिन्ना ने इस पर विचार किया और कहा कि लौटकर लियाकत इसकी सम्भावना देखे। यदि उसे सहयोग का आश्वासन हो, तो तार दे। बम्बई लौटने के 48 घण्टे के बाद लियाकत ने तार भेजा—'आइये !'

नेहरू के अनुसार, जिन्ना मुस्लिम लीग में सिर्फ इसलिए शामिल हुआ कि वह गाधी और अन्य कांग्रेसी, जिन्होंने उसका मजाक उडाया था, से बदला ले सके।[1] नेहरू ने यह भी कहा कि जिन्ना ने पीछे चलकर विभाजन और हिन्दू विरोध के पथ पर मुस्लिम लीग को इसलिए नही अग्रसर किया कि इस्लाम और पाकिस्तान मे उसका विश्वास था बल्कि इसलिए कि इस नीति से सभी का ध्यान आसानी से उसकी ओर आकर्षित होता और निरकुश सत्ता उसके हाथ आती। मेरी समझ मे जिन्ना की मानसिक स्थिति का यह अन्दाज़ उतना ही गलत था जितना 1946 47 का और जिसके कारण नेहरू से इतनी बडी गलती हुई। नेहरू यह विश्वास ही नहीं कर सकता था कि जिन्ना भी निष्कपट हो सकता था। फिर भी जिन्ना के बारे मे एक बात समान रूप से कायम रही। वह उद्दण्डतापूर्ण, मूर्खतापूर्ण गलती कर सकता था जिस पर गुस्सा भडक उठे लेकिन वह हमेशा ईमानदार रहा और निष्कपट। जिस घृणा-पूर्ण मानसिक प्रक्रिया के कारण नेहरू ने कहा था— उसने सिर्फ इसलिए कांग्रेस से नाता तोडा कि यह सुसस्कृतो की पार्टी नही रही और वह स्वय एक छैला था।' उसी प्रक्रिया के फलस्वरूप नेहरू अपने को विश्वास दिलाता रहा कि मुस्लिम लीग नेता सिर्फ एक धोखा है उसका आन्दोलन युक्तिसगत नही, इसलिए इसे सुगमता से नष्ट किया जा सकता है। पाकिस्तान जीवित ही नही रह सकता, इसलिए असम्भव है। यह ऐसी गलती थी जिसकी कीमत देश ने बहुतो की जान देकर ही 1947 म चुकाई।

कांग्रेस छोडने और मुस्लिम लीग की बागडोर सम्हालने के मध्य जिन्ना ने

1 लेखक के साथ बातचीत में।

41 वर्ष की अवस्था में दूसरी शादी की। कुछ दिनों तक उसका नाम कांग्रेसी और भारतीय कवियित्री सरोजनी नायडू के साथ लिया जाता था (यह स्वतन्त्र हिन्दुस्तान की पहली महिला गवर्नर बनी)। वह जिन्ना के प्रेम में पागल थी। प्रेम की कविताएँ लिखकर भेजती थीं। पंक्तियों के नमूने हैं, 'रात की वीरान घड़ियों में······मेरी आत्मा तुम्हारी आवाज़ की प्यासी है।' जिन्ना इसमें अप्रस्तुत होता था (वह कविता पढ़नेवाला नहीं था)। श्रीमती नायडू की अदाओं पर उसका दिल नहीं पसीजा। बम्बई की एक पार्टी में एक हसीन लड़की से उसका परिचय कराया गया। उसका नाम था रुटेन पेतित। वह पारसी थी, सिर्फ 17 वर्ष की थी, एक मित्र और हमपेशे की लड़की थी लेकिन इन सबके बावजूद जिन्ना ने उससे शादी करने का निश्चय किया। लड़की के माँ-बाप का विरोध भी उसे रोक नहीं सके।

दोनों चुपचाप निकल गये। लड़की के बाप को पहले-पहल 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' में समाचार दिखाई पड़ा कि लड़की ने इस्लाम धर्म मान लिया है और जिन्ना की पत्नी हो चुकी है। उन लोगों ने लड़की को तो माफ कर दिया लेकिन जिन्ना को नहीं। और शादी भी बहुत सफल नहीं रही। एक लड़की पैदा हुई और फिर दोनों में झगड़ा शुरू हुआ। युवती पार्टियों में जाने को तरसती रही लेकिन जिन्ना के क़ानूनी कोड़ों के बीच उसे तड़पना पड़ा। चार साल के बाद घर छोड़कर वह बम्बई के ताजमहल होटल में रहने लगी। उसके कुछ ही दिन बाद वह अपने माँ-बाप के साथ यूरोप के लिए रवाना हो गई। कुछ महीनों के बाद जिन्ना भी वकालत के लिए लन्दन चला गया। जिस मेल-मिलाप की उसने उम्मीद की थी जब वह नहीं हो सका तो उसने आत्महत्या की कोशिश की। जिन्ना दौड़ा हुआ पेरिस आया, डाक्टर बुलाये गए। उसके स्वस्थ होने तक उसके ही पास रहा। लेकिन यह पुनर्मिलन बहुत दिनों तक नहीं रह सका। रुटेन बम्बई लौट गई और जिन्ना लन्दन जहाँ उसकी वफ़ादार बहन फातिमा उसकी देखभाल करती थी। 1928 में बड़ी ही रहस्यमय परिस्थिति में रुटेन की मृत्यु ताजमहल होटल में हुई। उसके बाद जिन्ना की एकमात्र संगिनी उसकी बहन ही रही और उसने बड़े ही उत्साह और प्यार से उसकी देखभाल की।

मगर पाकिस्तान को ऐब कहा जाय तो इसे छोड़कर जिन्ना में और कोई ऐब नहीं था। न तो सिगरेट पीता था, न शराब। जल्दी गरम हो उठता था। मगर कोई उसपर रौब डालना चाहे या उसकी उपेक्षा करे तो प्रतिद्वन्द्वी को डाँटने-फटकारने से कभी नहीं हिचकता था। हमेशा खाँसी बनी रहती थी, शायद लंग कैंसर भी हो। उसके एक डॉक्टर की राय थी कि वह हमेशा थका हुआ, बेहाल और कमज़ोर महसूस करता होगा। लेकिन जो भी उससे पार्क में या मुलाकात के लिए गया, कभी नहीं यह महसूस कर पाया। चील की तरह वह चौकस था और कभी-कभी बिच्छू की तरह डंक मार सकता था। 1947 में उसकी आयु 71 वर्ष थी और लगता भी ऐसा ही था। लेकिन जब वह बातचीत शुरू कर देता तो बात बदल जाती। उसे लोग 'क़ायदे आज़म' या 'बड़ा रहनुमा' कहते थे। उसकी उपाधि उसके लायक थी।

1946 के बाद से मुस्लिम लीग वर्किंग कमेटी के सदस्यों के नामों को

चर्चा होने लगी थी। लेकिन यहाँ लियाकतअली खाँ को छोड़कर और किसी नाम से हम बहस नहीं। मुस्लिम लीग का यह वह नेता था जिसने जिन्ना को मुस्लिम लीग के नेतृत्व के लिए राजी किया था। इस तरह अपनी महत्त्वाकांक्षा के अभाव और दूसरे स्थान से संतोष को उसने बिलकुल स्पष्ट कर दिया था। वह नेता पैदा ही नहीं हुआ था बल्कि नेतृत्व के बदले सेवा भी चाहता था।[1] जहाँ तक जिन्ना के विचारों के साथ सहमति का प्रश्न था, अन्य सभी सदस्यों की तरह वह भी सिर्फ रबर की मुहर भर था। फिर भी पाकिस्तान की पवित्रता स्थापित करने मे उसका कम हाथ नहीं था। वह अपने नेता का दाहिना हाथ था जिसके बिना बहुत कुछ सम्भव भी नहीं था। वह जिन्ना को इतने आदर से देखता था, स्कूल के विद्यार्थी की तरह, कि उसके सामने वह हमेशा खामोश ही रहता, हालांकि जिन्ना अक्सर उसे प्रतिनिधि बनाकर खुद चुप रहता, फिर भी जब तक अपने नेता का इशारा नही पा लेता, वह कभी बोलना शुरू नहीं करता।

लियाकत नाटा, मोटा और थलथल था। चश्मा पहनता था और लम्बे, दुबले-पतले अमीराना अंदाजवाले जिन्ना के सामने मजदूर नेता-जैसा मालूम होता था। दरअसल जिन्ना के मुकाबले लियाकत बडे ही प्रसिद्ध खानदान का था। मुस्लिम यूनिवर्सिटी अलीगढ से बी० ए० पास कर उसने अपनी शिक्षा एक्सिटर कालेज, ऑक्सफोर्ड मे पूरी की और अन्तत, यह भी बताना पडेगा कि वकील बना। जिन्ना से बीस वर्ष छोटा था, बडे जोश-खरोश के साथ भाषण करता था और उत्तेजित लोगों के बीच बोलना उसे अच्छा लगता था। जिन्ना ने विश्वविद्यालय का मुँह नहीं देखा था और दुनियादारी के अलावा पुस्तकीय ज्ञान मे उसकी कोई दिलचस्पी नहीं थी। फिर भी सार्वजनिक सभाओ मे वह एक दूरी रखकर पुस्तकीय ज्ञान बघारनेवालो की ही तरह बात करता था। वह कभी भावुकता या जोश खरोश का परिचय नही देता था। अपने प्रतिद्वन्द्वी को वह हमेशा एक ठंडी उपेक्षा की नजर से देखता था। दूसरी तरफ लियाकत सिर्फ पढा लिखा और विद्वान ही नही था, बल्कि बहुत ही अच्छा वक्ता भी था। जिन्ना के पाकिस्तान को गाँवो तक पहुँचाने, स्थानीय संस्थाओ को रुपये-पैसे, उत्तेजना और गौरव की भावना से भरने का श्रेय उसीको है। और इन सबके लिए जिन्ना की मातहती के अलावा उसने कोई कामना नही की। अपने नेता की तरह वह भी पाकिस्तान के लिए परेशान था या मुसलमानो के अधिकार का आश्वासन देनेवाले हिन्दुस्तान (फेडरेटेड) को वह पसंद करता था, हम कभी नही जान पाएँगे। सिर्फ इतना मालूम है कि वह बम्बई को प्यार करता था और कराची, लाहौर और रावलपिंडी से उसे घृणा थी। बम्बई हिन्दुस्तान मे पडा और ये तीनो पाकिस्तान मे।

लॉर्ड माउण्टबेटन के बारे मे उसने एक बार कहा था—"मैं सुनता हूँ कि वह

---

1 शायद उसकी आत्मा ठीक ही कहती हो। जिन्ना की मौत के बाद जैसे ही उसने नेतृत्व अपने हाथों में लिया, उसकी हत्या कर दी गई।

अनिच्छापूर्वक हिन्दुस्तान आया है। दरअसल वह फौजी बेड़े का एडमिरल होना चाहता था। अगर वह हम लोगों को तुरत पाकिस्तान दे दे तो पहले बजट में हम एक जंगी जहाज बनवा देंगे और जहाजी मल्लाहों के समूह भी साथ कर देंगे—'आजाद होगा कपड़ों की धुलाई के लिए, नेहरू जहाज की दिशा ठीक करेगा (यानी हम लोगों के नजदीक आएगा ही नहीं) और गांधी रहेगा भट्टी में गरम हवा झोंकने के लिए।'

मोहनदास करमचन्द गांधी के बारे में इतना कुछ लिखा जा चुका है कि एकाध पैराग्राफ इस भले और विलक्षण व्यक्ति का चित्र स्पष्ट करने के लिए काफी है। *ब्रिटेन की भारत वाली कहानी के अन्तिम परिच्छेद में सभी राजनीतिज्ञ, सिपाही,* प्रशासक की अपेक्षा एकमात्र गांधी का ही ऐसा व्यक्तित्व था जो उत्तरोत्तर ऊपर चढ़ता गया। यह सही है कि ऐसे मौके भी आये जब उसके बरताव के बारे में शंका प्रकट की जा सकती थी, उसके वक्तव्य विरोधी और एकपक्षी थे, उसके काम अस्पष्ट लेकिन फिर भी अन्तिम दिनों में उसकी सफलता बड़ी महान थी और जाति या धर्म-निरपेक्ष प्रत्येक भारतवासी के हित के लिए थी।

अगर किसी मनोविज्ञानशास्त्री को गांधी का इतिहास बताया जाय, उसकी राष्ट्रीयता और परिचय छिपाकर, तो निस्सन्देह उसका फैसला होगा कि बड़ी ही तीव्र यौन-प्रेरणा को दबाने के ही कारण उसका राजनीतिक व्यक्तित्व निखरा (शायद सभी मसीहा और धार्मिक लोगों के बारे में भी वे यही कहेंगे)। लम्बी आत्मकथा *'सत्य के मेरे प्रयोग' में गांधी ने बड़े ही स्पष्ट ढंग से इस यातना की चर्चा की है* जिसने पहली बार अपना कुरूप चेहरा शादी के समय दिखलाया। काठियावाड़ के छोटे-से रजवाड़े पोरबन्दर में उसके माता-पिता ने शादी की थी। उसकी आयु तेरह वर्ष थी और उसकी पत्नी की बारह वर्ष (गांधी का कहना है कि उसकी उम्र सिर्फ दस वर्ष थी)। हालांकि कस्तूर बा निरक्षर थी और गांधी उसे पढ़ाना चाहता था, फिर भी कामदेव की शिक्षा से मुक्ति नहीं थी। तीन सन्तान के बाप होने के बाद ही यौन-प्रेरणा को कुचलने की इच्छा बलवती हो गयी। कस्तूर बा से उसने समझौता कर लिया कि इसके बाद से उनका सम्बन्ध शारीरिक धरातल पर नहीं रहेगा। पति की अपेक्षा पत्नी के लिए यह काम ज्यादा कठिन था, क्योंकि उसके पास यौन-प्रेरणा को परिष्कृत करने का कोई साधन न था। जनता के प्रति गांधी का उत्साह बढ़ता गया और इसके साथ ही उसकी यौन-आवश्यकताएँ भी। बकरी का दूध वह आहार साबित हुआ जिससे उत्तेजना नहीं होती थी और धीरे-धीरे, बड़े ही कष्टदायक रूप *में उसने ब्रह्मचारी की तरह जीवन बिताना और काम करना सीखा। गांधी ने जिस* तरह अपनी कमजोरी को स्वीकार किया है, वही उसे इतना मानवीय बना देती है और उसकी सफलताओं को इतना महान्।

अन्य लोगों की ही तरह गांधी भी वकील था (ब्रिटेन में प्रशिक्षित)। अपनी जोरदार वकालत छोड़कर उसने दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों की लड़ाई लड़ी और लड़ाई खतम होने के बाद भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम में भाग लेने भारत आया।

उसके आने के पहले कांग्रेस का सबसे मुखर राजनीतिज्ञ मुहम्मदअली जिन्ना था जो वैधानिक तरीकों से उपनिवेश की स्थापना की मांग करता था। गांधी ने सब-कुछ बदल दिया। उसने होमरूल एसोसिएशन का नाम बदलकर स्वराज्य कर दिया। वह ब्रिटिश के खिलाफ बडे ही जोरदार ढंग से बोलता था और सविनय अवज्ञा की सिफारिश करता था। हालांकि उसके देशवासियो ने जिस 'विनय' का परिचय दिया उससे वह हतोत्साह तो हुआ लेकिन धीरे-धीरे इस राष्ट्रीय असहयोग को एक शक्तिशाली अस्त्र का रूप दे दिया।

उसमे नाटकीयता की विलक्षण सूझ-बूझ थी। उसने कांग्रेस के भीतर सभी को मिलाकर एक कर दिया (जिन्ना को बाहर निकाला)। उसने प्रसिद्ध डाडी-यात्रा की जिसमे समुद्र के किनारे नमक बनाया गया। यह सरकार की नीति के विरुद्ध ही प्रदर्शन नही था, यह तो सरकार के अस्तित्व पर ही प्रतीकात्मक चोट थी। वह जेल गया और वहाँ भी प्रसन्न रहा। हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए उसने पहला अनशन किया और वह मौत के इतने करीब आ गया कि हिन्दू और मुसलमान दोनो ने मिलकर भाई-भाई की तरह रहने का वायदा किया और अनशन तोडने की प्रार्थना की। कई बार उसने अनशन किया, कई बार जेल गया और दूसरी लडाई के समय 1939 मे राष्ट्र का सबसे प्रभावशाली व्यक्ति वही था।

कई दृष्टि से वह संत था। उसके जीवन के तीन महान् लक्ष्य थे—भारतीय स्वतन्त्रता, हिन्दू मुस्लिम एकता और अछूतो का उद्धार। इन तीनो के लिए वह सभी-कुछ झेलने के लिए, जान की बाजी लगा देने के लिए तैयार था।

लेकिन गाधी वकील और राजनीतिज्ञ भी था। लॉर्ड वेवेल की ही तरह जिन्ना को भी उसके साथ मुसीबत होती थी। जिन्ना कहता था—'इस आदमी को किसी एक बात तक लाना असम्भव है। वह साँप की ही तरह चालाक है।' एक बार एक सम्मिलित वक्तव्य के लिए गाधी से उसकी बातचीत तय हो गई। पीछे चलकर गाधी मुकर गया। उसने कहा—'उसकी आत्मा की पुकार थी कि यह फैसला बदल दिया जाय।' जिन्ना भडक उठा—'जहन्नुम मे जाय यह आत्मा। साफ साफ वह स्वीकार क्यो नही करता कि वह उसकी गलती थी।'

हम लोगो ने पहले ही देखा है कि गाधी अपनी आत्मिक शक्ति का कांग्रेस के हित के लिए उपयोग करने से नही चूकता था। अछूतोवाली कहानी इसका उदाहरण है। जब कभी कोई टेढा-मेढा या भोंडा सवाल सामने आता तो पेंसिल से लिख देता—'आज मेरा मौन दिवस है।' हालांकि कांग्रेस से उसका सम्बन्ध 1941 मे ही खतम हो गया था, परदे के पीछे अन्त तक उसका बडा ही महत्त्व था। दुर्भाग्य की बात है कि यह महत्त्व उतना बडा नही था जितना होना चाहिए था। अंतिम दिनो में कांग्रेस से उसका कई बातो पर मतभेद रहा लेकिन जब कभी घोषणा-पत्र आदि का मसविदा तैयार करना होता, कांग्रेस के नेता गाधी के पास आते। कांग्रेस के सभी घोषणा-पत्रों का मसविदा, जिनसे गांधी असहमत भी था, गांधी के ही हाथो तैयार हुआ था और हर मसविदा अपने आप मे एक विलक्षण है।

1947 में जब माउटबेटन दिल्ली आया तो गाधी बिहार मे शान्ति स्थापित करने की कोशिश मे था। बिहार मे हिन्दू मुसलमानो को कत्ल कर रहे थे, उनकी जायदाद लूट रहे थे। काग्रेस ने उसे वापस बुलाया। काग्रेस की यह चाल थी कि वेवेल के विपरीत माउटबेटन गाधी के व्यक्तित्व से मोहित हो जाएगा।

1942-45 तक के कारावास की अवधि मे लिखी गई अपनी पुस्तक 'डिस्कवरी आँफ इडिया' मे अग्रेजो के उन हथकडो पर विचार किया है जिससे उन्हे भारत का साम्राज्य मिला और लिखा है

'इस अरसे तक सोचने के बाद ऐसा लगता है कि सयोग और आकस्मिक घटनाओ के ही कारण अग्रेजो को भारत का साम्राज्य मिल गया। अगर फल की ओर देखा जाय तो बहुत ही कम परिश्रम से उन लोगो ने इतना बडा साम्राज्य और इतनी सम्पत्ति हासिल कर ली।''' ऐसा लगता है कि घटनाओ के क्रम मे ऐसे मोड का आना कठिन नही था जिससे उनकी सारी आशा और आकाक्षा धूल म मिल जाती।''''' फिर भी गौर से देखा जाय तो उस समय की जो परिस्थिति थी उसमे यही होना था, जो हुआ।'

अगर काग्रेस और देश म नेहरू के गौरव को देखा जाय तो ये ही वाक्य नेहरू पर एक दम फिट बैठते हैं। सिर्फ ब्रिटिश की जगह नेहरू लिखने की जरूरत है और सम्पत्ति को हटा देना है। नेहरू की चरम सत्ता और उदार एकाधिकार की कहानी मे भी ऐसी खाई और ऐसे मोड हैं जो उसे गिरा सकते थे।

सिर्फ सयोग की बात है कि वह काग्रेस आन्दोलन म आया। उसके जीवन के पहले वर्ष उस वातावरण मे बीते जिसमे पलकर कोई विशिष्ट और सुसभ्य अग्रेज बनता। घर पर इलाहाबाद मे, जहाँ उसके पिता बडे ही सम्पन्न वकील थे, जवाहरलाल का बडे वैभव और अग्रेजी प्रभाव के वातावरण म लालन-पालन हुआ। एक के बाद एक कई अग्रेज शिक्षक मिले। उसके घर मे अग्रेज अतिथियो की भरमार थी, हालाँकि हिन्दू और मुसलमान भी अक्सर आया करते थे (नेहरू के पिता के घर तीन प्रकार का भोजन बनता था)। हिन्दी और सस्कृत मे तो कोई प्रगति नही हुई लेकिन बहुत ही जल्द वह साफ अग्रेजी बोलने लगा। पन्द्रह वर्ष की आयु मे जब वह हैरो गया, तबसे लेकर बाईस वर्ष की आयु तक जब वह कैम्ब्रिज और लदन की पढाई समाप्त करता हुआ वकील होकर लौटा, अग्रेजी वातावरण और परम्परा से बिलकुल ओत-प्रोत हो गया। पीछे चलकर उसने लिखा—'दिल मे मैं अग्रेजो का कायल था।' विदेशी शासन के प्रति उसकी घृणा उन्ही अग्रेजो तक सीमित थी जो दुर्व्यवहार करते थे। उसने यह भी लिखा है—'जहाँ तक मुझे याद है, किसी अग्रेज के प्रति मेरी व्यक्तिगत दुर्भावना नही थी।' 1912 में जब बैरिस्टरी पास कर वह लौटा तो अपने ही देश में परदेसी था। लेकिन हर दृष्टि से वह रईस था—जाति से कश्मीरी ब्राह्मण और सभ्यता और शिक्षा की दृष्टि से विलायती लॉर्ड। 'मैं समझता हूँ कि मैं थोडा दम्भी और अहकारी था'—उसने अपने ही बारे मे लिखा है। लेकिन जिन्ना की तरह वह एक आँखवाला चश्मा नहीं लगाता था।

और इसके बाद अमृतसर का हत्याकाड हुआ। 13 अप्रैल, 1919 को जनरल डायर के कमाड में काग्रेस के लिए प्रदर्शन करनेवाले हिन्दुस्तानियों को फौज ने कत्ल कर डाला। इसमें कोई शक नही कि हिन्दुस्तानियो का वहाँ इकट्ठा होना गैरकानूनी था, क्योकि कई दिन पहले ही शहर में मार्शल लॉ का एलान कर दिया गया था (क्योकि एक दगे म 5 यूरोपीय मारे गए थे)। और जिन काग्रेसी नेताओ ने ऐसी परिस्थिति मे प्रदर्शन के लिए भडकाया था उन पर भी, जो कुछ हुआ, उसकी जिम्मेदारी आ ही जाती है। लेकिन अनुशासन स्थापित करने का जो तरीका जनरल डायर ने अपनाया वह ऐसा खूँखार और मूर्खतापूर्ण था कि तनावपूर्ण शहर मे शाति के बदले आग ही भडकती। लोगों के इकट्ठा होने के खिलाफ कानून और कर्फ्यू ऑर्डर करना ही उसके लिए काफी होता लेकिन वह उससे भी आगे बढ गया। मिशन की एक अग्रेज औरत मिस एलिस शरवुड को दगे के समय कुछ हिन्दुस्तानियों ने पीटा था। भारतीय जनता के सच्चे मित्र के खिलाफ ऐसी हरकत लज्जाजनक थी। लेकिन शायद मिस शरवुड ही, जो कुछ उसके बाद हुआ, उसका विरोध करती। जनरल डायर ने कानून निकाला, 'कि उस मार्ग से होकर जो भी हिन्दुस्तानी जाएगा उसे रेंगकर जाना पडेगा।'

अमृतसर तग गलियो का ऐसा शहर है जहाँ अफवाह और घबराहट सूखी लकडी की आग की तरह फैलती है। शहर उबलकर फूट पडा। काग्रेस के नेताओ ने जनरल डायर की गोलियों की कोई परवाह न कर बडी ही मूर्खतापूर्ण लापरवाही से मार्शल लॉ के विरोध म सभा बुलाई। और जलियाँवाला बाग के सार्वजनिक पार्क मे, जिससे निकलने का एक ही रास्ता था, 20,000 हिन्दुस्तानी 150 अग्रेज सिपाहियो के सामने इकट्ठे थे। सिपाहियो ने रास्ता रोक दिया था। एक अग्रेज अफसर ने कानून पढकर सुनाया और भीड को तितर बितर होने का हुक्म दिया। यह असम्भव था। उसके बाद गोलियो की जो बौछार हुई उसम 379 मारे गए और 1,000 घायल हुए।

1961 तक 'सनडे टाइम्स' मे प्रकाशित पत्रो से पता चलता है कि अब भी अमृतसर के गोलीकाड को न्यायसगत समझनेवाले लोग हैं। यह सही है कि एक दर्दनाक उलझन मे अग्रेज अफसर फँस गए थे। मैंने पहले ही कहा है कि काग्रेस का भी इसमें कम दोष नही। लेकिन समझदार अग्रेज सिपाहियो ने पहले भी ऐसी परिस्थिति मे कत्ल के बदले दूसरा रास्ता अपनाया था। एक बात निश्चित है। अमृतसर के गोलीकाड ने अधिकाश हिन्दुस्तानियो को अंग्रजों के विरुद्ध कर दिया, क्योकि उन्हें विश्वास हो गया कि ब्रिटिश पर विश्वास नहीं किया जा सकता, वे हिन्दुस्तानियों की जिन्दगी की परवाह नही करते और हिन्दुस्तानियों को नीची नजर से देखते हैं।

यह काग्रेस मे शामिल होने का सबसे बडा आह्वान था। हजारो की सख्या मे लोग काग्रेस मे शामिल हुए। जवाहरलाल नेहरू भी उनमें था। शिमला मे वह मोट रहा था। वहाँ उसे ऐसा अनुभव हुआ जो उसके लिए बहुत ही अपमानजनक था।

संयोग ऐसा था कि जिस होटल में वह ठहरे थे उसी होटल में संधि की बातचीत के लिए आये हुए अफगान शिष्टमण्डल के सदस्य भी ठहराये गए थे। नेहरू ने 1916 में शादी की थी। एक अंग्रेज मजिस्ट्रेट नेहरू से मिला और साफ-साफ बोला कि *शायद श्रीमती एनीबेसेंट के होमरूल लीग का सदस्य होने के कारण उसकी उपस्थिति* अवांछनीय है। उसमें कहा गया कि वह अफगानों से न मिलने की शर्त मंजूर करे। नेहरू ने पहली बार यह समाचार सुना लेकिन बात उसे प्रतिष्ठा के विरुद्ध लगी। उसने इस तरह की शर्त से साफ इंकार कर दिया।

मजिस्ट्रेट ने कहा—'*ऐसी हालत में चार घंटे की मुहलत दी जाती है।* शिमला छोड़ दो वरना शिमला से बाहर कर दिए जाओगे।'

दक्षिण जाती हुई गाड़ी में तीन अंग्रेज अफसर अमृतसर में उसी डिब्बे में चढ़े जिसमें नेहरू था। *जिस तरह कुछ अंग्रेज विदेश में पेश आते हैं, उसी तरह ये* अंग्रेज दिल्ली जाते हुए हिन्दुस्तान और हिन्दुस्तानी के बारे में बात करते रहे। एक सह-यात्री हिन्दुस्तानी का खयाल कर उन्होंने अपनी जबान पर कोई लगाम नहीं रखी। बड़ा रस लेकर वे अमृतसर-कांड *का वर्णन कर रहे थे। उनमें से एक ने कहा—'हरामजादे काले लोगों को सबक मिल जाएगा।'* जब तक गाड़ी अपनी जगह पर पहुँची, जवाहरलाल में परिवर्तन हो चुका था। अंग्रेजों के खिलाफ क्षोभ, अपमान और घृणा की भावना से वह सुलगने लगा। उसी क्षण से उसने अपने आपको कांग्रेस आन्दोलन में झोंक दिया और गांधी का अनुयायी बना रहा। एक साल से भी कम बीता होगा कि उसे पहली बार जेल जाना पड़ा। तब से अंग्रेजों के चंगुल से देश को छुड़ाने के लिए वह जी-जान से पिल पड़ा और अपने लोगों की हीनता की उसकी *अनुभूति तीव्रतर होती गई, क्योंकि अंग्रेजों से उनके अपनेपन की भावना चकनाचूर* हो चुकी थी।[1]

1923 में नाभा के रजवाड़े में जो घटना घटी उसमें अपमान की भावना अंग्रेजों को मार भगाने के निश्चय में बदल गई। वह और उसके कुछ साथी जो वहाँ की हालत की जाँच करने के लिए गए थे, गिरफ्तार कर जेल में डाल दिए गए। नेहरू के क्षोभ का अन्त नहीं था जब सबको हथकड़ियाँ पहनाकर साधारण कैदी की तरह सड़कों पर ले जाया गया। जेल की कोठरी कीड़े मकोड़ों से भरी थी और *रात को सोते समय चूहों ने उन लोगों पर जो दौड़ लगाई थी वह नेहरू कभी नहीं* भूल सका।

दूसरे दिन ब्रिटिश रेजिडेंट ने यह शर्त रखी कि अगर सार्वजनिक रूप से वे *माफी माँग लें तो छोड़ दिए जाएँगे। नेहरू ने इंकार किया। उसके बाद मुकदमे* की कार्रवाई शुरू हुई। हिन्दुस्तान के हिस्सों से वकील बुलाने की दरख्वास्त नामंजूर

1 अनजान अंग्रेजों का रुख गांधी दूसरी नजर से देखता था। दक्षिण अफ्रीका में एक रेलवे स्टेशन पर जब एक अंग्रेज ने उसे पुकारकर कहा—'ए कुली, यह सामान उठाओ', तो गांधी ने चुपचाप सामान उठाकर गाड़ी तक पहुंचा दिया। यह [illegible] का हवाला था।

कर दी गई। स्पष्ट था कि मजिस्ट्रेट को किसी कानूनी कार्रवाई की जानकारी नही थी। मुकदमे का मजाक होता रहा और ब्रिटिश रेजिडेंट चुपचाप बैठा रहा। फलस्वरूप नेहरू का पारा गर्म होता गया। मुकदमे के फलस्वरूप नेहरू और बाकी लोगो को 18 महीने की सजा हुई। पीछे चलकर यह फैसला रद्द कर दिया गया और नेहरू तथा उसके साथियो को रजवाडे की सीमा से बाहर निकाल दिया गया। लेकिन नेहरू कुछ महीना तक टायफाइड से पीडित रहा।

इन घटनाओ ने अंग्रेजो की नकल करनेवाले नौसिखिए को कांग्रेस का सिपाही बना दिया।

1936 मे इसी तरह की एक आकस्मिक घटना ने उसे कांग्रेस का नेतृत्व दे दिया। 1935 के सुधारो के फलस्वरूप इसी वर्ष पहला सार्वजनिक चुनाव होने वाला था। चुनाव मे भाग लेने से पहले कांग्रेस की बैठक हुई और यह फैसला हुआ कि इस समय कांग्रेस को एक शक्तिशाली और तेज नेता चाहिए। पार्टी के अधिकाश लोगों के लिए बम्बई के शक्तिशाली नेता सरदार वल्लभभाई पटेल का नाम सामने था। सरदार वल्लभभाई पटेल के ही हाथो मे पार्टी की मशीन थी। असतुष्ट और विद्रोहियो को वह सीधे रास्ते पर रखता। पार्टी की नीति भी ऐसी रखता कि कांग्रेस का पक्ष लेनेवाले करोडपतियो से पार्टी-कोष के लिए अच्छे पैसे मिलते। वह कांग्रेस के सभापतित्व के लिए कटिबद्ध था। जहाँ तक भारतीय स्वतन्त्रता का प्रश्न है, नेहरू से उसके विचार जरूर मिलते थे लेकिन स्वतन्त्रता के बाद की परिकल्पना मे दोनो एक-दूसरे के विरोधी थे। वह पूंजीपतियो को भी साथ ले चलने का पक्षपाती था, नेहरू समाजवादी था। इसमे कोई सन्देह नही कि पार्टी की सहायता से वह चुनाव मे जीतकर सभापति बन जाता। लेकिन अंतिम समय मे गाधी ने पटेल से बातचीत की और सिफारिश की कि वह अपना नाम वापस लेकर नेहरू को सभापति बनने दे, क्योकि ऐसे समय मे नेहरू के व्यक्तित्व का जनता पर ज्यादा प्रभाव पडेगा। आखिरकार बडी ही अनिच्छापूर्वक पटेल राजी हुआ। वह न तो नेहरू को पसन्द करता था और न उसका प्रशसक ही था। उसकी यह भावना समय के साथ बढ़ती ही गई लेकिन उस समय वह राजी हो गया, क्योंकि अपने अनुयायियो पर गाधी का ऐसा ही प्रभाव था।

पटेल ने कांग्रेस के प्रतिनिधियो से कहा—'कुछ विशेष बातों मे मेरे विचार जवाहरलालजी के विचार से मेल नहीं खाते।' नेहरू को चेतावनी देते हुए उसने यह भी कहा—'किसी व्यक्ति विशेष को चुन लेने से ही कांग्रेस की अपनी महान् शक्ति नहीं छिन जाती, यह व्यक्ति विशेष चाहे जो भी हो।' फिर भी उसने अन्त मे नेहरू के चुनाव की ही अपील की।

मगर नेहरू के दृष्टिकोण से देखा जाय तो इससे अच्छा मौका नहीं था सभापतित्व के लिए। चुनाव के प्रचार में वह कूद पड़ा। सारे देश का दौरा किया। जनता के बीच जोशीला और सुन्दर भाषण देता रहा, अपने और अपने विचारों के अनुयायियों की संख्या बढ़ाता गया। इधर पहले वह पर्दे के पीछे रहनेवाले बुद्धि-

जोखिमों में से एक था। लेकिन अब जनता को उसे देखने का मौका मिला। वह जनता से मिला, जनता उससे मिली; फिर नेहरू ने कभी मुड़कर नहीं देखा।

फिर एक बार 1946 में ऐसा मौका आया जब लगा कि नेहरू का सितारा डूबनेवाला है। लेकिन तकदीर ने उसका साथ दिया। जैसाकि पहले ही कहा जा चुका है, उसी साल कांग्रेस के सभापति मौलाना अबुलकलाम आज़ाद ने अपना पद छोड़ देने का फैसला किया। पार्टी में बहुत-से ऐसे लोग थे जो चाहते थे कि वह सभापति बना रहे। लेकिन अपनी पुस्तक 'इण्डिया विन्स फ्रीडम' में उसने लिखा है—'मैंने महसूस किया कि कांग्रेस के नेताओं के बीच कुछ मतभेद है। मुझे पता चला कि सरदार पटेल और उनके मित्र चाहते हैं कि वह सभापति हों।'

दरअसल बात यही थी। सत्ता के लिए पटेल बहुत दिनों से इन्तज़ार कर रहा था। उसने महसूस किया कि यही समय है जब आज़ादी की बातचीत का कुछ फल दिखाई पड़ने लगा है। बदकिस्मती से आज़ाद को पटेल नहीं भाता था। व्यक्तित्व, पृष्ठभूमि और संस्कृति, हर मामले में दोनों परस्पर-विरोधी थे। आज़ाद न्याय और तर्क की, मेहनत की विद्वत्तापूर्ण हिमायत करता था तथा धैर्य और समन्वय का देवता था। पटेल कांग्रेस की शक्ति का प्रतीक था जो कभी इसे छिपाने की भी कोशिश नहीं करता था। सिर्फ शक्ति और संख्या के ज़ोर पर वह अपनी बात मनवाने का क़ायल था। इस समय आज़ाद का विश्वास था कि आनेवाले संकट के लिए पटेल उचित सभापति नहीं होगा। उसने नेहरू का पक्ष लिया कि वह भी उसकी ही तरह समझदार होगा (कम-से-कम उसने सोचा यही था)।

आज़ाद ने लिखा है—'मैं परेशान था कि ऐसा आदमी कांग्रेस का सभापति हो जो मेरी विचारधारा को मानता हो और उसी नीति को चलाए जिसे मैं चलाता था। सभी पहलुओं पर सोच-विचार करने के बाद मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि जवाहरलाल को सभापति होना चाहिए। इसलिए 26 अप्रैल, 1946 को उसने एक वक्तव्य द्वारा जवाहरलाल का नाम सभापति पद के लिए प्रस्तुत किया और अपील की कि निर्विरोध चुनाव हो।'

सभी जानते हैं कि बात वहीं खतम नहीं हो गई थी। इस क्षण तक पटेल को विश्वास था कि गांधी उसका ही चुनाव चाहता था, क्योंकि इसके पहले बातचीत में महात्मा ने इस ओर इशारा किया था। कांग्रेस के सभी प्रतिनिधियों की तरह पटेल भी गांधी के इशारे की प्रतीक्षा करता रहा। वह इतना आश्वस्त था कि गांधी का इशारा उसके पक्ष और नेहरू के विपक्ष में होगा कि उसने विशेष कोशिश भी नहीं की।

लेकिन कांग्रेस के चुनाव का दिन आ गया और गांधी ने कोई इशारा नहीं किया। पटेल हैरान था। वह जानता था कि इस आयु में फिर कभी यह मौका हाथ नहीं आएगा। फिर भी उसे चुपचाप बैठना पड़ा और इस बार भी, ऐसे महत्त्वपूर्ण मौके पर सभापतित्व को छिनते हुए वह देखता रहा। 1946 की घटनाओं के लिए उसने आज़ाद को कभी माफ नहीं किया। गांधी, जिसका भक्त अनुयायी वह था, उससे भी

वह दूर होता गया। समय काटने का उसने निश्चय किया और उस समय की प्रतीक्षा करने लगा जब नेहरू गलती करेगा (उसका विश्वास था कि जरूर करेगा) और तब पूरी कांग्रेस नेहरू समेत उसकी मुट्ठी में होगी।

अन्तत लार्ड माउटबेटन ने यह मौका दिया।

1947 में जवाहरलाल नेहरू की आयु 57 वर्ष की थी। अब वह अपनी अंग्रेजी पोशाक नहीं पहनता था। चूड़ीदार पाजामा और बण्डी ही उसका लिबास बन गई। हाँ, लाल गुलाब का एक फूल उसकी बण्डी में हमेशा लगा रहता था। उसका शरीर कुछ झुकने लगा था और विश्राम की अवस्था में वह थका हुआ लगता था। आँखों के नीचे कालिमा दिखाई पड़ने लगी थी। वह चिडचिडा हो गया था (अब भी है) और बेवकूफी पर बहुत जल्दी गरम हो उठता था। लेकिन जो उसकी तारीफ करे, कविता और खूबसूरत औरतों की बात करे उससे खुश होता था। शाम को शेरी पीना उसे पसन्द था, उग्र हिन्दुओं का निरामिष भोजन उसे नहीं रुचता था (हालांकि गांधी के लिए उसने सख्त कोशिश की थी) और उसका प्यारा अंग्रेजी अखबार 'न्यू स्टेट्समैन' शाम को देर से मिलता था, कभी मिलता नहीं था, इसके लिए वह उठता था। इस आयु में भी वह बड़ा ही खूबसूरत था और इसका उसे गौरव था। गांधी पर तो एकदम नहीं, लेकिन नेहरू पर जेल जाने का असर पड़ा था। जेल के हर क्षण को वह नफरत की नजर से देखता था।[1] निश्चय ही इसमें सभी ब्रिटिश चीजों के प्रति उसकी शंका बढ़ती ही गई। हाल की घटनाओं के प्रति उसका दृष्टिकोण यूरिपिडीस की प्रसिद्ध रचना 'एलसेस्टीज' की इन पंक्तियों में स्पष्ट है

> रहस्य के अनेक आकार प्रकार हैं
> ईश्वर की सृष्टि में
> भय आशा के परे भी
> बहुत कुछ होगा।
> और जिस अन्त की कामना है वह आता नहीं,
> और जहाँ कुछ नहीं सूझता, वहीं एक रास्ता है।

या शायद जेल से लिखी गई उसकी इन पंक्तियों में ही उसका दृष्टिकोण समन्वित है

'बहुत वर्ष पहले ऐसे भी दिन थे जब मैं काम में उलझा हुआ, बुरी तरह व्यस्त होता और जीवन भावनात्मक उत्तजना में बीतता। मेरी जवानी के वे दिन, लगता है, बहुत पीछे छूट गए। सिर्फ इसलिए नहीं कि इतने वर्ष बीत गए बल्कि ज्यादातर इसलिए कि आज मेरे और उन दोनों के बीच अनुभवों और दुखदायी विचारों का समुद्र आ गया है। वह पुराना उफान अब बहुत कम हो गया है, नियन्त्रणहीन प्रवृत्तियों का रंग भी उतर गया है और भावना तथा उद्वेग पर भी लगाम कस गई है। अक्सर विचारों का बोझ रोड़ा बन जा जाता है और दिमाग में जहाँ कभी निश्चितता थी, अब सन्देह घर कर लेता है। शायद यह सब आयु का तकाजा है ......'

1. इसी कारण से उसकी सबसे अच्छी पुस्तक 'डिस्कवरी आफ इण्डिया' दी।

अंगाधि मिन पहल लिगा है, 1947 में नाल्म की भायु 57 वर्ष थी। कभी-कभी वह और भी ज्यादा भावुकता की तरह बात करता था।

लेकिन फिर भी यह कहना गलत नहीं होगा कि कभी-कभी उसमें उफान भाता था और वह सिनेमा स्टार की तरह पेश भाता था। चाहे उसकी जो भी राय हो, कभी भी उन्हीं अनियन्त्रित प्रवृत्तियों का वह शिकार हो जाता था जिन्होंने बीते दिनों में उसे और उसकी पार्टी को मुसीबत में डाला था। केबिनेट मिशन के समय जो भयानक भूल उसने की वह एक मात्र नहीं थी। वह जिन्ना और मुस्लिम लीग को उचित महत्त्व दे ही नहीं सका। हालांकि कांग्रेस के लोग उसे इस खतरे से आगाह करते रहे कि मुस्लिम लीग की शक्ति पूरे भारत में बढ़ती जा रही है और मुसलमान कांग्रेस छोड़कर जिन्ना के दल में जा रहे हैं, पर वह विश्वास करने से इन्कार करता रहा।

उसने कहा—'यह कैसे हो सकता है। उत्तर-पश्चिम सीमान्त प्रदेश में, जहाँ सभी मुसलमान हैं, कांग्रेस का शासन अब भी चल रहा है।'

यह बताया गया कि वहाँ कांग्रेस का प्रभुत्व तेजी से घट रहा है और पार्टी की मशीन कमजोर होती जा रही है।

'तो मैं जाऊँगा और उसमें नई जान डाल दूंगा।'—उसने कहा। अपने सेक्रेटरी को पेशावर की यात्रा की तैयारी करने के लिए कहा। उसे पूरा विश्वास था कि उसके हाथ के इशारे और दो-चार जोशीले भाषणों से स्थानीय कांग्रेस प्रशासन की किस्मत खुल जायगी। वहाँ जाकर उसने देखा दंगा के लिए आमादा जनता, खतरनाक परिस्थिति जिसमें रिवाल्वर की गोलियाँ चलानी पड़ीं और जनता ने ईंट-पत्थर बरसाए। दिल्ली लौटा तो दिमाग कुछ हद तक ठीक हो गया था लेकिन फिर भी उसे विश्वास नहीं था, उसे कभी भी विश्वास नहीं हो सकता था कि मुस्लिम लीग की शक्ति में कुछ वास्तविकता भी है।

नए वायसराय की हैसियत से माउटबेटन के आगमन का एक व्यक्तिगत पहलू भी था नेहरू के लिए। किसीने उसे बताया था कि 1945 के चुनाव में लेबर पार्टी की सिफारिश के लिए एक आदमी लॉर्ड और लेडी माउटबेटन से मिलने आया। माउटबेटन ने कहा—'हम समझाने की जरूरत नहीं। लेकिन रसोईघर में मुसीबत होगी। रसोइया और बाकी नौकर-चाकर सोलह आना टोरी हैं।'

अपने साथी कांग्रेसियों की ओर हाथ उठाकर नेहरू ने कहा—'इन हिन्दुओं के बाद एक सीधे-सादे अंग्रेज सोशलिस्ट से मिलना अच्छा ही होगा।'

कम-से-कम इस समय तक के लिए, सरदार वल्लभभाई पटेल के बारे में जो कुछ कहा जा चुका है उससे ज्यादा कहने की जरूरत नहीं। हाँ, एक बात पर जोर देने की जरूरत है कि कांग्रेस पार्टी और उसकी मशीन पर उसका कड़ा नियन्त्रण था। उस आदमी में व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा बहुत थी लेकिन गांधी का उस पर ऐसा प्रभाव था कि 1946 तक उसने दो बार नेहरू को आगे बढ़ने दिया। हालांकि उसे दृढ़ विश्वास था कि नेहरू की भावना की झोंक में बहनेवाला स्वप्नदर्शी था और वह स्वयं उससे बहुत अच्छा आदमी था।

यह बडा ही विचित्र सयोग है कि गाधी को छोडकर 1947 मे तीन सबसे प्रमुख राजनीतिक नेता विधुर थे। शायद यह मनोविज्ञानशास्त्रियों की खुराक हो। कहा यह जाता है कि बम्बई की अदालत मे पटेल मुद्दालह की तरफ से बहस कर रहा था। इसी बीच उसे एक तार मिला कि उसकी पत्नी का देहान्त हो गया। तार को जेब मे डालकर उसने अपनी बहस जारी रखी। नेहरू की ही तरह उसके बाद उसकी लडकी ने उसकी देखभाल की।

पटेल जानता था कि काग्रेस के वामपक्षी लोग उसे पूँजीपति ही समझते थे, क्योकि वह काग्रेस के प्रशासन की ओर हमेशा ध्यान देता था और इसलिए वह आदर्शवादी और बुद्धिवादी नही था (ये मेरी नही काग्रेस के कागजात से ली गई उक्तियाँ हैं)। कभी-कभी अपने नेताओ की बुद्धिवादी सफलताओ मे काग्रेस को ज्यादा गर्व होता था, जनता के सम्पर्क म नही। काग्रेस के जिन ग्यारह नेताओ को अग्रेजो ने 1942 मे गिरफ्तार किया उनके बारे मे नेहरू ने लिखा

'लगभग सभी जीवित भाषाओ और सभी महान् उच्चकोटि की भाषाओ, जिन्होंने भूत और वर्तमान मे हिन्दुस्तान को प्रभावित किया है, का प्रतिनिधित्व था। स्तर भी अच्छा विद्वत्तापूर्ण था। उच्चकोटि की भाषाओ म सस्कृत और पाली, अरबी और फारसी थी।'

फिर भी सिर्फ गुजराती और अग्रेजी बोलनेवाला पटेल काग्रेस पार्टी के लिए करोडपतियो से धन बटोरता, अक्सर पार्टी की मशीन की सफाई और मरम्मत करता। काम ऐसा था कि नेहरू से इस सबकी उम्मीद ही नही थी।

जब घोषणा हुई कि माउटबेटन नया वायसराय होगा तो पटेल ने अपने लोगो से रिपोर्ट माँगी। खबर मिली कि माउटबेटन 'क्रान्तिकारी झुकाववाला उदार रईस' है। पटेल की प्रतिक्रिया थी—'जवाहरलालजी को एक खिलौना मिल जायगा, हम लोग क्रान्ति की तवतक व्यवस्था करेंगे।'

लेकिन कार्यक्रम थोडा भिन्न साबित हुआ। फिर भी बात वही हुई जो पटेल के दिमाग मे थी। 1947 म उसकी उम्र 72 वर्ष थी।

काग्रेस पार्टी मे और भी महत्वपूर्ण नाम थे लेकिन आजादी के सिलसिले में उनका पार्ट महत्वहीन था। मद्रास मे राजगोपालाचार्य ने शुरू से मुस्लिम लीग को महत्त्व देने की वकालत की थी ताकि फेडरल हिन्दुस्तान मे उन्हें एक सुरक्षित स्थान मिले या ज्यादा-से-ज्यादा पाकिस्तान। लडाई के पहले के यूरोप और अमेरिका के फासिज्म-विरोधियों की तरह उसने समय से पहले ही और बडे ही साफ ढग से कहना शुरू कर दिया था। इसीलिए उस पर किसीका ध्यान नही गया। लेकिन वह तीव्रबुद्धि था, पटेल की ही तरह उसकी अदा और वाणी थी (हालाँकि उसने न कभी सिगार पिया और न दाढी)। राजगोपालाचार्य का परदे के पीछे प्रभाव तो बना रहा लेकिन कभी ऐसा लगता नही हो गया कि जब बातें काग्रेस अन्तिम छोर तक जाने को तैयार थी तो उसे व्यवहारबुद्धि की ओर खीच कर ला सके।

जब तक मौलाना अबुलकलाम आजाद काग्रेस का सभापति था, काग्रेस और

कांग्रेस-मुस्लिम लीग समझौते की बातचीत पर उनका प्रभाव काफी था जिसमें धार्मिक विरोध की भावना बन्धन में रही। उनके सभापति पद छोड़ने के बाद ही घृणा का द्वार खुल गया। भारत में अभी ऐसे लोग हैं आज भी जिनका विश्वास है कि अगर आजाद को सभापतित्व के लिए राजी किया जा सकता तो जो दर्दनाक घटनाएँ हुईं वे टाली जा सकती थीं। हिन्दुस्तानी इतिहास के इन विद्यार्थियों के अनुसार आजाद का सभापति पद से अलग होना इस बात का सिगनल था कि कांग्रेस में मुसलमानों का प्रभाव खतम हो गया और निश्चय ही देश की स्वतन्त्रता सिर्फ हिन्दुओं के लिए होगी। इसमें कोई शक नहीं कि सभापति पद छोड़ने का फैसला कर आजाद ने बहुत बड़ी गलती की। हालांकि आजाद ने खुद इसे पीछे चलकर महसूस किया लेकिन उस समय भी कांग्रेस में ऐसे लोग जरूर होंगे जिन्होंने यह महसूस किया होगा और यह भी महसूस किया होगा कि आजाद-जैसे प्रसिद्ध कांग्रेसी मुसलमान को सभापति पद पर रखने से अच्छा कोई कदम नहीं हो सकता जो यह साबित करे कि कांग्रेस सभी जाति, सभी धर्म का प्रतिनिधित्व करती है। जबतक वह कांग्रेस का सभापति था, कोई भी यह कैसे कह सकता था कि कांग्रेस मुसलमान-विरोधी संस्था है।

कांग्रेस के सभी अधीनस्थ सदस्यों की अपेक्षा आजाद अपना काम करता ही रहा। शुरू से आखिर तक वह एक हिन्दुस्तान में विश्वास करता रहा जिसे आजादी पाने के समझौते के लिए धार्मिक आधार पर दो टुकड़ों में बाँटने की जरूरत नहीं थी। जब लेबर सरकार ने वेवेल को वायसराय पद से हटाया तो दुख-दर्द की अनुभूति में कांग्रेस के भीतर वह अल्पमत में था। खासकर नेहरू का विश्वास था कि वेवेल मुस्लिम लीग का पक्ष लेता था। पटेल का विचार था कि देश में गृहयुद्ध की सम्भावना रोकने और लोगों के बीच एक भावना पनपाने की वेवल की चिन्ता अंग्रेजी शासन को और दस साल तक देश में रखेगी। सिर्फ आजाद वेवेल के विचार के साथ था ताकि दोनों लड़नेवाले एक साथ हो जाएँ—समझौते की बातचीत करना, इन्तजार करना, दलील देना, और फिर समझौते की बातचीत करना ताकि हिन्दू और मुसलमान मिल जुलकर रहना सीख सकें। बहुत हद तक अपनी सीमा से बाहर जाकर उसने वेवेल के इस्तीफे की घोषणा के बाद वक्तव्य प्रकाशित कराया। किसी अन्य कांग्रेसी नेता ने इससे सहमति नहीं प्रकट की। वक्तव्य के कुछ अंश ये हैं

'मुझे पता नहीं कि गत दो-तीन सप्ताह में लार्ड वेवेल और अंग्रेजी सरकार के बीच कैसा पत्र-व्यवहार हुआ। जाहिर है कि कुछ मतभेद थे जिसका फल हुआ यह इस्तीफा। परिस्थिति का जो मूल्यांकन वेवेल ने किया उससे हमारा मतभेद हो सकता है। लेकिन उनकी ईमानदारी और लक्ष्य के प्रति सचाई में हम कोई शक नहीं हो सकता। हिन्दुस्तान और ब्रिटेन के आपसी सम्बन्ध में जो नया मोड़ आया है वह भी 1945 के उनके साहसपूर्ण कदम के कारण और इसके लिए उसका जो श्रेय है, मैं उसे भी नहीं भुला सकता। क्रिप्स मिशन की असफलता के बाद चर्चिल की सरकार ने तो हिन्दुस्तान के सवाल को लड़ाई के अरसे तक के लिए टालना ही चाहा था। हिन्दुस्तानी विचार-धारा के लिए कोई दूसरा रास्ता नहीं था। 1942 की घटनाओं ने कटुता और भी

बढा दी थी। बन्द रास्ते खोलने का श्रेय लार्ड वेवेल को ही है। "मुझे पूरा विश्वास है कि लार्ड वेवेल की सेवाओ को हिन्दुस्तान कभी भूल नही सकता और जब ब्रिटेन और हिन्दुस्तान के परस्पर सम्बन्ध का लेखा-जोखा लेने का समय आएगा तो आजाद हिन्दुस्तान का इतिहासकार इस नए अध्याय का श्रेय लार्ड वेवेल को ही देगा।'

मौलाना अबुलकलाम आजाद का जन्म 1888 मे मक्का मे हुआ। 1947 म उसकी उम्र 59 थी, यानी नेहरू से डढ साल ज्यादा। वह अरबी, उर्दू, हिन्दी, सस्कृत और अग्रजी का प्रसिद्ध विद्वान था (काहिरा के अल अजहर मे उसकी शिक्षा हुई थी)। एक बार नेहरू ने उसके बारे मे कहा था—'मौलाना अबुलकलाम का अगाध अध्ययन हमेशा मुझे पुलकित करता था, लेकिन कभी-कभी मैं उससे अभिभूत भी हो जाता था।'

सारी जिन्दगी वह अग्रेजो के खिलाफ लडता रहा, लेकिन उनके गुणो का कायल भी था। उनकी ईमानदारी और भलमनसी म उसका बहुत विश्वास था, मेरा मतलब नए वायसराय के आने के पहले तक से है।

दो और हिन्दुस्तानियो की चर्चा, मैं समझता हूँ, यही पर करनी चाहिए। उन्होने आजादी की लडाइ मे बहुत बडा पार्ट अदा किया और खासकर इसलिए भी क्योकि उनके बिना आजादी की शक्ल ही कुछ और होती। इन दोनो म से कोई भी न तो काग्रेस और न ही मुस्लिम लीग का सदस्य था। हालाँकि इनम से एक था हिन्दू और दूसरा मुसलमान।

दोनो हिन्दुस्तानी सिविल सर्विस के सदस्य थे लेकिन आई० सी० एस० नही। उत्तर प्रदेश म लखनऊ के पास चौधरी मोहम्मदअली का मुसलमान परिवार म जन्म हुआ। लदन विश्वविद्यालय और लदन स्कूल आफ इकॉनॉमिक्स म उसकी शिक्षा हुई। अततः वकालत पास कर उसन शिक्षा पूरी की। (यह भी बताना पडेगा क्या?) इडियन आडिट और एकाउटस सर्विस म एक किरानी की तरह उसने जिन्दगी शुरू की और अर्थ विभाग म उत्तरोत्तर आगे बढता गया। 1946 म वह अपने विभाग का दूसरा अफसर था जिसके बारे म उसके अग्रेज अफसर ने कहा था—बडा ही होशियार और कुशल शासक तथा बहुत बढिया अर्थशास्त्री।

अब तो चौधरी मोहम्मदअली का कहना है कि इगलैण्ड के दिनो से ही वह पाकिस्तान म विश्वास करता था। जो भी हो, 1946 म मि० जिन्ना से मिलने के बाद ही उसने दफ्तर के काम म भी राजनीति को बरतना शुरू कर दिया। जिन्ना के व्यक्तित्व और मुस्लिम लीग के प्रचार से वह इतना अभिभूत था कि जब कभी वह दफ्तर आता उसका अफसर 'पाकिस्तान जिन्दाबाद' के नारे से स्वागत करता।

चौधरी ने बताया—'दरअसल मेरा यह परिवर्तन बहुत पहले से हो गया था। अर्थशास्त्र के विशेषज्ञ की हैसियत से मैं अपनी कीमत समझता था। जब मेरे अफसर ने, जो अभी इगलैण्ड के एक बडे बैंक के डायरेक्टर हैं, फेडरल बैंक ऑफ इंडिया के डायरेक्टर के पद के लिए मेरे नाम का प्रस्ताव किया तो मैं खुश हुआ। बोर्ड म सिर्फ पारसी और हिन्दू सदस्य थे। मैं पहला मुसलमान डायरेक्टर होता। पर तो बडे

जोश के साथ वह राजी हो गए। लेकिन उसके बाद ही मेरे अफसर ने गलती की ओर बताने लगे कि मैं मुद्राशास्त्र का माहिर था, मुझे बडा अनुभव था और मैं बडे ही काम का साबित होऊँगा। वह मेरी जितनी ही तारीफ करते, उतना ही बोर्ड के सदस्य ठण्डे पडते जाते और आखिर मे किसी बहाने से उन्होने मेरा नाम खारिज कर दिया। बात यह थी कि बेवकूफ या हाँ-मे हाँ मिलानेवाला मुसलमान होता तो उनके लिए ठीक था। जातीय या साम्प्रदायिक एकता का दिखावा हो जाता। लेकिन जैसे ही उन्हे विश्वास हो गया कि मैं अच्छा काम करूँगा, वे मुकर गए। कांग्रेस के साथ भी यही बात थी। वे मुसलमानो का ख्याल नही करते थे। वे सिर्फ तेज और सक्षम मुसलमानो से डरते थे।'[1]

जहाँ तक आजादी की लडाई का सवाल है, चौधरी मोहम्मदअली की जिन्दगी मे अहम पार्ट अदा करने का मौका लार्ड माउटबेटन के आने के ठीक पहले आया। तब तक अस्थायी सरकार मे मुस्लिम लीग ने पाँच स्थान ले लिये थे। वायसराय और कांग्रेस के साथ उनकी बातचीत चल रही थी कि कौन सा प्रमुख विभाग उन्हे दिया जाए। जिन्ना ने साफ कह दिया था कि वह मन्त्रिमण्डल म शामिल नही होगा। उसने यह काम लियाकतअली को सौंप दिया था। उसे उम्मीद थी कि कोई महत्त्व-पूर्ण स्थान उसे मिलगा। वायसराय का सुभाव था कि लियाकत को होम मम्बर बनाया जाए (ब्रिटिश होम सेक्रटरी-जैसा स्थान)। कानून और पुलिस विभाग के काम उसके हाथ हागे और इसके साथ-साथ सीनरी अनुशासन भी। ऐसा हुआ कि सरदार वल्लभभाई पटेल ने होम मेम्बर का पद ले लिया था। कांग्रस की हिमायत और नीतियो पर अनुशासन रखने के लिए यह ओहदा बडा ही अच्छा साबित हुआ था। उससे यह पद लियाकत के लिए छोडने का अनुरोध किया गया। पटल नाराज हुआ और उसने मना कर दिया। यह तो किसी पुराने पोस्टमास्टर जनरल को अमेरिकी शासन-व्यवस्था म, नए रिपब्लिकन के लिए जगह खाली करने-जैसी बात थी। उसन *सुझाव दिया कि लियाकत को वित्त विभाग दिया जाए।*[2] *पटेल ने समझा कि भारी-*भरकम नामवाला एक पद मिल जाएगा लेकिन इस तरह अस्थायी सरकार की राजनीति मे उसका हाथ नही रहगा।

यह बहुत बडी गलती थी जिसका भयानक फल निकला। जब लियाकत ने यह पद अपने हाथ म लिया तो इसके महत्त्व का उस कुछ पता न था। लेकिन चौधरी मोहम्मदअली तब सामने आया। उसने बताया कि कांग्रस पार्टी नेहरू द्वारा समाज-वाद के प्रति अपनी सहानुभूति और जनता के हितो तथा देश के धन के बँटवारे की बात तो करती रही है। लेकिन कांग्रेस पार्टी की आर्थिक सहायता करोडपतियो स ही होती है जिन्होने लडाई के जमाने म बहुत पैसा कमाया। चौधरी ने लियाकत को सलाह दी कि वह ऐसा बजट बनाए जिसम कांग्रेस की सहायता करनेवाल इन करोड-पतियो का दम निकल जाए।

1 लेखक के साथ बातचीत में।
2 अंग्रेजी अनुशासन में चॉसलर ऑफ एक्सचेकर-जैसा पद।

और हुआ इससे भी ज्यादा। गुस्से से नेहरू और पटेल भी चौंक उठे। और, जैसा आगे चलकर स्पष्ट होगा हिन्दुस्तान के भविष्य के बारे म उनका दृष्टिकोण ही बदल गया।

पीछे चलकर चौधरी मोहम्मदअली पाकिस्तान का प्रधान मन्त्री भी बना और अभी एक बीमा कम्पनी का प्रधान है। वह हिन्दुस्तान की आजादी का खुद इतिहास लिख रहा है जिसमे मजेदार बातें होनी चाहिए। कांग्रेस पार्टी म जिस आदमी का वह कायल था वह था सिर्फ गाधी। उसने बताया—'गाधी का दिमाग बडा ही लचीला था और उसकी सादगी के पीछे उसकी वकालतवाली चालाकी होती थी। मैंने सुना, कुछ लोग उस महात्मा भी मानते थे।'[1]

इगलैण्ड की शिक्षा, विश्वविद्यालय की शिक्षा और वकालत—इन सबके न रहने पर भी वी० पी० मेनन ने हिन्दुस्तान की आजादी की लडाई म बडा ही महत्त्वपूर्ण पार्ट अदा किया। कुछ लोग तो कहेंगे कि सबसे महत्त्वपूर्ण पार्ट अदा किया उसने।

लिनलिथगो, वेवेल और माउटबेटेन का वह रिफार्म्स कमिश्नर और वैधानिक सलाहकार था। हिन्दुस्तान की सरकारी नौकरी का यह सबसे बडा पद था और यदि उसकी पृष्ठभूमि की ओर नजर डाली जाय तो उसकी सफलता और भी शानदार मालूम होगी। 1889 म मलाबार म उसका जन्म एक जैनी परिवार मे हुआ। पन्द्रह साल की उम्र म उसे टायफाइड हुआ और कई महीनो तक वह स्कूल नही जा सका। मैट्रिकुलेशन की परीक्षा फिर भी उसने दी, पास भी हुआ लेकिन उस सर्टिफिकेट नही मिला, क्योकि कई महीनो तक वह स्कूल नही जा सका था। सर्टिफिकेट पाने के लिए उसे एक साल और स्कूल म पढना पडता। इस समय उसके परिवार पर सकटो का पहाड टूट पडा। उसके पिता की मृत्यु हो गई। कई भाइयो को पटाना था। मेनन ने फैसला किया कि सिर्फ एक रास्ता था उसके लिए—घर छोड कर बाहर जाना, अपनी जीविका कामना और घर पैसे भेजना। मैट्रिकुलेशन के सर्टिफिकेट के बिना वह उस देश मे निकल पडा जहाँ सर्टिफिकेट की बदौलत आदमी अच्छा कमा-खा सकता है और उसके बिना भूखा मर सकता है। हिन्दू मालिको को वह बार-बार समझाता दिखाता कि अच्छी तरह अग्रेजी लिख, पढ और बोल सकता है, हिसाब का काम भी उसे अच्छा आता है, लेकिन हर बार सर्टिफिकेट नामधारी कागज के टुकडे के बगैर उसे नौकरी छोडनी पडती। रेल के कारखाने म उसने काम शुरू कर दिया और धीरे धीरे उसका स्वास्थ्य गिरने लगा। इसी समय एक अग्रज ने उसकी मदद की। मद्रास मेल म उसने एक विज्ञापन देखा—'मैसूर के कोलार सोने की खानो मे एक किरानी चाहिए।' उसी विज्ञापन के नीचे उन्ही लोगो की ओर स दूसरा विज्ञापन भी था—'खदानो म मजदूरो के काम की देखभाल के लिए ठकेदार चाहिए।' उसने दोनो जगहो के लिए दरखास्त दी और इटरव्यू के लिए बुलाया गया।

अग्रज मैनेजर को नौजवान मेनन बहुत पसन्द आया। सर्टिफिकेट का झमेला दरकिनार किया गया। अगर वह अच्छी तरह काम करे तो तरक्की भी दी जायगी—

---

1 लेखक के साथ बातचीत में।

इस आश्वासन के साथ मेनन को किरानी की नौकरी की सलाह दी गई। लेकिन मेनन ने सुन रखा था कि ठेकेदारों को काफी मिल जाते हैं। उसे बताया गया कि काम बड़ी ही मेहनत का था। फिर भी मेनन ने ठेकेदारी का ही काम चुना। मैनेजर ने कुछ रुपये दिये और कहा कि कुलियों को इकट्ठा कर काम शुरू करा दो। उसके कुली जितना सोना निकालेंगे उस पर कुछ प्रतिशत रकम उसे दी जाएगी। मैनेजर ने सलाह दी कि 'उनसे जितना ज्यादा काम लोगे उतना ही ज्यादा पैसा मिलेगा। लेकिन इतनी मेहनत भी मत कराना कि उनकी जान ही निकल जाए।'

मेनन वैसा आदमी नहीं था। पहले कुछ सप्ताह तो उसके कुलियों ने बहुत ही बढ़िया काम किया। उसे लगभग प्रति सप्ताह हजार रुपये मिल जाते थे। लगभग सब घर भेज दिया जाता। लेकिन उसके बाद मेनन ने गलती की—खुराक के पैसे बढ़ा दिए, बीमार पड़ने पर मजदूरी के साथ छुट्टी दी। मजदूरों ने समझ लिया कि आदमी सीधा है। खदान के नीचे जाकर ठंडी जगह में काम करने के बजाय मजदूर सो जाते। मेनन के हिस्से का काम प्रति सप्ताह कम होता गया। तीन महीने के बाद मेनन पर कम्पनी का कर्ज लद गया और हर समय मेनन यही उम्मीद करता था कि बुलावा आएगा और यह रकम उसे खुद मजदूरी कर चुकानी पड़ेगी। लेकिन अंग्रेज मैनेजर ने उसे आफिस में बुलाया।

'मैंने कहा था न कि बेवकूफी मत करना। तुम बहुत ही भले हो। चलो, किस्सा खत्म हुआ। यह सम्हालो और चलते बनो।'

उसने मेनन को एक लिफाफा दिया। भीतर सौ-सौ रुपये के दो नोट थे। बंगलौर के तम्बाकू के कारखाने के मैनेजर के नाम एक चिट्ठी थी। उसे कर्ज से मुक्ति मिल गई थी।

एक अंग्रेज ने ही मेनन को सरकारी नौकरी में दाखिल किया। बात यों हुई। कई साल बाद फटेहाल मेनन ने मलाबार वापस जाने के लिए कुछ रुपया कर्ज लिया। स्टेशन जाते समय उसकी एक अंग्रेज से मुलाकात हुई जो बम्बई में परिचित था। यह अंग्रेज होम डिपार्टमेंट का प्रधान था दिल्ली में। जब उसने मेनन का हाल सुना तो अपने विभाग में उसे नौकरी दिलवा दी और रात के स्कूल में पढ़ाई चालू करने की सलाह दी।

1940 तक हिन्दुस्तानी मामलों का वह विशेषज्ञ बन गया और अपने विभाग के लिए बड़ा ही महत्त्वपूर्ण। 1941 में उसने रजवाड़ों के एक फेडरेशन की योजना बनाई जिसमें वे लोग ब्रिटिश हिन्दुस्तान का हिस्सा बन जाएँगे। लेकिन भीतरी अनुशासन रजवाड़ों के अपने हाथ में रहेगा और सुरक्षा, विदेश विभाग तथा यातायात केन्द्रीय सरकार के हाथों में। इस योजना में एक केन्द्रीय हिन्दुस्तान की नींव पड़ सकती थी। लेकिन लार्ड लिनलिथगो ने इसे उस कूड़े में डाल दिया जिस पर किसी की नजर भी नहीं पड़ सकती थी।

एक बार उसने मेनन से कहा था—'ठीक है, तुम काम में लगे हो मेनन! शायद तुम चाहते हो कि मौका आने पर मैं तुमको रिफार्म्स कमिश्नर बना दूँ। है

न ? लेकिन इस बात को दिमाग से निकाल दो। यह काम हिन्दुस्तानियों के लिए नहीं है।'

जब जगह खाली हुई एच० वी० हडसन को यह पद दिया गया। मेनन ने इसका बुरा नहीं माना और न अंग्रेजों के खिलाफ कोई रंज ही रखा। हडसन और वह अच्छे दोस्त हो गए। सिर्फ लिनलिथगो को वह प्यार नहीं कर सका। वह अपने मौके की ताक में लगा रहा। 1943 में हडसन का वायसराय से झगड़ा हो गया। हडसन इंग्लैंड लौट गया और अन्ततः लंदन के 'सण्डे टाइम्स' का प्रसिद्ध सम्पादक बना। लिनलिथगो उस पद के लिए एक अंग्रेज की तलाश में था। उसके सलाहकारों ने बताया कि हिन्दुस्तानी मसलों, कानून अनुशासन और रजवाड़ों की जानकारी के मामले में मेनन का मुकाबला करनेवाला कोई नहीं था। लिनलिथगो ने मेनन को बुलाया। मेनन रिफार्म्स कमिश्नर बनाया गया और हिन्दुस्तान का सबसे अच्छा रिफार्म्स कमिश्नर साबित हुआ। लिनलिथगो और उसके पद के वारिस उस समय से मेनन पर निर्भर करने लगे। लेकिन उनमें से बहुत कम ने यह महसूस किया हो कि मेनन ने उन लोगों के लिए क्या किया। यह भी तो बहुत ही कम लोग महसूस करते हैं कि मेनन ने हिन्दुस्तान की आजादी के लिए क्या किया।

एक बात निश्चित है।। सरकारी नौकरी के इस ओहदे पर पहुँचनेवाले हिन्दुस्तानियों में वी० पी० मेनन निराला ही था। विश्वविद्यालय की डिग्री उसके पास नहीं। चोर दरवाजे से नौकरी में घुसा। बिलकुल साफ बोलनेवाला आदमी। और भारतीयों से कई मानों में बिलकुल अलग, किसी तरह का छिपाव नहीं और चाहे कोई भी गलती कर रहा हो, साफ साफ मुंह पर कहनेवाला। देश की गलती पर (अपनी गलती पर नहीं) वह पण्डित नेहरू की ही तरह बौखला उठता था। माउंटबेटन ने उसे बाद में लिखा था—तुम्हारी एकमात्र कमजोरी यह है कि भावनाओं के आवेश में तुम्हारा सतुलन खो जाता है। हिन्दुस्तान के बहुत से महान् नेताओं का भी यही हाल है। खुशकिस्मती की बात यह है कि नुकसान या गलत फैसले के पहले तुम अपना सतुलन वापस पा लेते हो। मेहरबानी कर तुमने इसे मेरा प्रभाव माना है लेकिन अगर तुमम अपना स्थायित्व निहित नहीं होता तो मैं कैसे मदद करता। अगर कभी भावनाओं के आवेश में तुम्हारा सतुलन खो जाय तो रुककर एक मिनट सोच लेना—'माउंटबेटन ने क्या कहा था ?

रिफार्म्स कमिश्नर का पद हासिल कर वी० पी० मेनन ने अपनी व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा पूरी की। अब सिर्फ एक चीज वह चाहता था—अपनी जिन्दगी में हिन्दुस्तान की आजादी देखना।

1946 में पहली बार सरदार वल्लभभाई पटेल से उसकी मुलाकात हुई। तुरन्त दोनों मित्र बन गए और जहाँ तक मेनन के विभाग का सवाल था, एक-दूसरे के सहयोगी। दोनों के इस मिलन ने हिन्दुस्तान के भविष्य निर्माण में इतना बड़ा हाथ बँटाया जिसका बहुत कम लोगों को एहसास है।

अध्याय 4

आखिरी छक्का

वायसराय और वायसराइन माउण्टबेटन 22 मार्च, 1947 को दिल्ली पहुँचे और हिन्दुस्तान के आखिरी वायसराय और उसकी पत्नी के पद पर 48 घंटे के भीतर जम गए। राजा के बिना गद्दीनशीनी की रस्म जहाँ तक मनाई जा सकती है वहाँ तक यह मनाई जाती रही है। और यह आखिरी वायसराय की गद्दीनशीनी थी इसलिए वायसराय के कर्मचारियों ने शान-शौकत और चमक-दमक में कोई कोर-कसर नहीं रखी। माउण्टबेटन की सलाह से इस जलसे के फोटो भी लिये गए पहली और आखिरी बार। कांग्रेसी, मुस्लिमलीगी और हीरे-जवाहरातों से लदे राजा-महाराजा तथा देश विदेश के रेडियो के लिए उसने परम्परा के विरुद्ध एक छोटा-सा भाषण दिया जिसमें इस बात पर जोर दिया गया कि वह सत्ता से चिपकने के लिए नहीं, उसे दूसरों को देने के लिए आया है। उसका तौर-तरीका बड़ा कटा छँटा था, विश्वासपूर्ण था और ब्रिटिश राज की शाम के बारे में कोई हायतौबा नहीं थी। उसकी आवाज और उसके आचरण से दोनों पार्टियों के नेताओं की धड़कनें तेज हो गईं और कई राजे महाराजे सिहर उठे। क्योंकि उसे देखकर ही ऐसा लगता था कि यह आदमी सौदा करने आया है, उच्छ्वास और आँसू की इसके पास जगह नहीं।

इसके विपरीत फील्ड मार्शल लार्ड इस्मे के चेहरे पर विषाद था। लार्ड इस्मे चीफ ऑफ स्टाफ की हैसियत से माउण्टबेटन के साथ हिन्दुस्तान आने के लिए राजी हुआ था। लार्ड इस्मे ने जवानी के दिन हिन्दुस्तान में सिपाही की हैसियत से बिताए थे और उसके लिए हिन्दुस्तान का राज ब्रिटिश ताज का जगमगाता नगीना था। उसकी मानसिक स्थिति का इसीसे अन्दाजा लगाया जा सकता है कि जब वह फील्ड मार्शल सर क्लाड आचिनलेक से मिला तो उसने कहा—'अरे क्लाड तुम्हारी टोपी कहाँ गई ?' वह माउण्टबेटन के आशावाद से दूर ही था और उसने कहा था कि उसका काम 'बड़ा ही नाजुक और शायद बदमजा है। बारह गोल से हारकर भी आखिरी छक्के तक खेलना पड़ेगा।'

नये वायसराय अपने साथ बड़े ही जोरदार कर्मचारी लाए थे। लार्ड इस्मे के बाद सर एरिक मेवील था। यह भी हिन्दुस्तान रह चुका था। लार्ड विलिंगडन का प्राइवेट सेक्रेटरी था, फिर छठे जार्ज का सहायक प्राइवेट सेक्रेटरी जिसे छोड़कर वह हिन्दुस्तान आया।

इनके अलावा चार पुराने नौसेना के सहायक थे जिन्होंने वर्मा और लड़ाई के दिनों में माउंटबेटेन के साथ काम किया था। इन वफादार सहकारियों का प्रमुख काम था अपने प्रधान के व्यक्तित्व को सफलता के प्रतीक रूप में स्थापित करना। इनके नाम थे कैप्टेन रोनेल्ड ब्रोकमन आर० एन०, कमांडर जार्ज निकाल्स आर० एन०, लै० कर्नल वर्नोन अर्सकाइन क्रम और एलेन कैम्बेल-जॉनसन। शायद इन चारों में कैम्बेज जॉनसन सबसे महत्त्वपूर्ण था। वह प्रचार का विशेषज्ञ था। लड़ाई के जमाने में उसी ने माउंटबेटन की नीतियों के पक्ष में प्रचार का काम सम्हाला था। नये वायसराय ने यह लक्ष्य किया था कि वायसराय के स्टाफ में प्रचार के काम के लिए कोई नहीं था और शायद इसी वजह से वेवेल इतना अलग रहा लोगों से। उसके विचारों को जनता और अखबारों तक पहुँचानेवाला कोई था ही नहीं। माउंटबेटन अपने व्यक्तित्व को किसी भी आड़ में छिपाना नहीं चाहता था। यह कैम्बेल-जॉनसन का काम था कि जनता और अखबारों को याद दिलाता रहे कि माउंटबेटन का नाम सफलता का प्रतीक है।

माउंटबेटन के ये चारों आदमी आपस में घुले-मिले थे और अनुशासन के बाकी लोग इन्हें 'डिकी बर्ड्‌स'[1] कहा करते थे।

इनके अलावा माउंटबेटन ने वेवेल के स्टाफ से भी कुछ पुराने लोगों को रखा था जिनमें दो महत्त्वपूर्ण हैं—जार्ज एबेल (विद्वान् और हिन्दुस्तान तथा हिन्दुस्तानी मामलों का अच्छा ज्ञाता) और रावबहादुर वी० पी० मेनन (जिसकी चर्चा पहले ही की जा चुकी है)।

हर रोज सुबह वायसराय के ये सहकारी (एक को छोड़कर) नाश्ते के टेबुल पर इकट्ठे होते, जब दिन-भर के दाँवपेच पर बहस होती। यह माउंटबेटन की विशेषता थी। वर्मा में लड़ाई के दिनों के कान्फ्रेंस की तरह इसमें हिन्दुस्तान की आजादी की लड़ाई का मसला टेबुल-टेनिस के गेंद की तरह इधर-से-उधर नाचता फिरता और वायसराय मुस्कराता हुआ तमाशा देखता, फैसला देता। यहाँ अंग्रेजों की बातचीत जिस तरह होती थी उसे सुनकर कोई भी विदेशी घबरा उठता। गहन समस्याओं पर बड़े ही हल्के-फुल्के ढग से बातचीत होती। हिन्दुस्तानियों को 'द वाड्स' कहा जाता, गांधी को 'हिज निब्स' और जिन्ना को 'गिमलेट'। पहले वी० पी० मेनन को इन बैठकों में नहीं बुलाया जाता था। एबेल ने सलाह दी थी कि हमेशा वी० पी० मेनन का आना मुसलमानों के दिमाग में यह बैठा देगा कि हम लोग कांग्रेस का पक्ष ले रहे हैं। इन्तजार करते हुए मेनन ने जवाब दिया कि जो कोई भी एबेल का दिमाग जानता है वह यह भी जानता है कि मुस्लिम लीग का पक्ष लेनेवाला एक तो अन्दर बैठा ही है ; फिर एक हिन्दू बुला लिया जायगा तो बात बराबर हो जायगी। लेकिन बहुत दिनों के बाद वी० पी० मेनन भी बुलाया जाने लगा। वह भी कभी-कभी। जब कभी वह आता, बैठकें बडी ही गम्भीर बन जाती।

---

1. एक ही थैली के चट्टे-बट्टे-जैसा अंग्रेजी मुहावरा—अनु०।

साल के इस हिस्से में परिश्रमी हिन्दुस्तानियों की शक्ति ढीली पड़ने लगती है। दिल्ली में मार्च के महीने में तापमान 100 से 103 डिग्री तक हो जाता है, फिर 103 से 106 भी। बाहर से आनेवाला पसीने से लथपथ होकर पूछता है—'यह तो हद ही हो गई न!' लेकिन यह हद नहीं होती, तापमान आगे भी बढ़ता है। दिल्ली का वातावरण भुनगा उठता है। पुरानी दिल्ली में सुबह कुछ ठण्डा रहता है। रात में कभी-कभी हवा चलकर झुलसी चमड़ी को सहला जाती है। इसके अलावा लोग छाँह और नींद की शरण लेते हैं। लेकिन नई दिल्ली का सेक्रेटेरियट तो दिन-भर जैसे गर्मी सोखता रहता है जिसे वह रात में छोड़ता है। इनके भीतर काम करनेवाले सरकारी नौकर पंखों के नीचे काम करते हैं जहाँ वजन के नीचे दबे कागज फड़फड़ाते रहते हैं। इनकी बीवियाँ गर्मियों में पहाड़ चली जाती हैं और ये गर्मी में झुलसते रहते हैं।

गर्मियों में ही हिन्दुस्तानी राजनीतिज्ञों की पकड़ ढीली पड़ जाती है, उनका उत्साह ठण्डा पड़ जाता है और पारा गर्म हो जाता है। यह याद रखने की बात है कि दोनों राजनीतिक पार्टियों के नेता समवयस्क थे और 57 वर्ष का नेहरू ही इनमें सबसे छोटा था। मुहम्मदअली जिन्ना को फेफड़े का कैंसर हो चुका था जिससे अन्ततः उनकी जान गई। हालांकि उस समय उसे पता नहीं था। नेहरू ने कबूल किया था कि सुबह तड़के यौगिक क्रियाओं के बावजूद वह थका हुआ और निरुत्साह महसूस करता था। उनमें से कोई भी एयर कण्डिशण्ड (वातानुकूलित) कमरों में न तो रहता था और न काम करता था। उनमें से बहुतों, मसलन मौलाना आज़ाद के लिए दिल्ली की गर्मी में आजादी की नई लड़ाई लड़ना खयाल के बाहर की बात थी।

दूसरी तरफ नया वायसराय गर्मी पर पनप रहा था। यह ठीक है कि दिल्ली की गर्मी के तापमान (115 से 120 डिग्री तक) से जोश और साहस पानेवाला वह पहला ही वायसराय नहीं था, लेकिन जैसाकि लेडी माउण्टबेटन ने एक बार कहा था—'मैं समझती हूँ कि डिकी और मेरे साथ ग्रन्थियों की बात जरूर है। हमलोग कभी थकान महसूस नहीं करते। मुझे सरदर्द हो जाता है और पाँव फूल जाते हैं। डिकी ने रात ज्यादा पी ली तो दूसरे दिन हल्का खुमार रहता है।'

दिल्ली की भट्ठी की गर्मी उसकी चमड़ी पर जलते सोने-सा काम करती रही और उसे काम से, अच्छी तरह जोड़ दिया। यह ठीक है कि जिन कमरों में वह अपना काम करता था, सभी वातानुकूलित थे। उसने काम करनेवाले और सोने के कमरों को अपने मनपसन्द हरे रंग से सजा लिया था। वायसराय के महल में 7,500 कर्मचारी थे जो उसकी हर इच्छा पूरी करने के लिए तैयार थे (इनमें 250 माली और मुर्गियों की खाल साफ करने के लिए एक खास आदमी था)।[1]

---

1. इनमें मन्त्रियों का काम करनेवाले शामिल नहीं हैं। एक बार लेडी लिनलिथगो के कुत्ते ने भोज के ठीक पहले कारपेट गन्दा कर दिया। उन्होंने नौकरों को सफाई के लिए बुलाया। भंगी की तरह के नौकर ढूँढने में इतनी देरी हुई कि लेडी लिनलिथगो खुद सफाई में लगीं और अतिथियों का आना शुरू हो गया।

कैम्बेल-जॉनसन के शब्दो मे उसम भूत की-सी शक्ति थी। जहाँ तक इसमे और मेवील का सवाल है, उनकी हालत उस बुड्ढे की सी थी जो मकान और उसके सारे साजो-सामान की बिक्री के लिए ठीक ठाक कर रहा हो। उन दिनो जिस मुस्तैदी के साथ वायसराय काम कर रहा था, लगता था कि नीलाम करनेवाला अभी काम शुरू कर देगा। उसके सहकारियो में से एक ने कहा था—'कसम, जैसा कटा-छँटा, साफ-सुथरा मामला हो गया था कि अचरज होता था।'

वायसराय का पद सँभालने के पहले ही उसने गाधी और जिन्ना को मिलने के लिए बुलाया था। लेकिन दरअसल उसस मिलनेवाला पहला व्यक्ति नेहरू था। लडाई खत्म होने के पहले एक बार मलाया मे दोनो की मुलाकात हुई थी। हिन्दुस्तानी सिपाहियो को देखने के लिए नेहरू गया था। दोनो एक दूसरे को पसन्द आए। दोनो में बहुत सारी बातें एक-जैसी भी थीं। दोनों गर्वीले थे। दोनो अमीराना तबियत के थे, लेकिन जनता के हितो के लिए आवाज बुलन्द दोनो ने अपने विश्वास के कारण की थी। लेकिन गहराई और सवेदनशीलता नेहरू के हिस्से थी। विजय के क्षणो में भी शका और आत्म निरीक्षण उसे झकझारते थे। इसलिए शायद यह स्वाभाविक ही था कि नए वायसराय का व्यक्तित्व उसे बुरी तरह आकर्षित करता, क्योकि उसका आत्म विश्वास बडा ही शान्त और दृढ था। शका का कहीं लश भी नही दिखाई पडता था और अपने ऊपर तथा उसके दायरे म आनेवाल हर व्यक्ति पर उसको पूर्ण नियन्त्रण मिल जाता था।

माउटबेटन से बात करना नेहरू को आसान लगा। उसन बिना किसी झिझक या सकोच के बातचीत की। वायसराय की तेज निगाह ने साफ देखा कि नेहरू की क्या कमजोरी है। बढावा मिलने पर नेहरू खुलकर बात करता है और अपने साथियो तथा सहकर्मियो की आलोचना भी। माउटबेटन ने नेहरू से ही प्राप्त गोला-बारूद का उपयोग पीछे चलकर कायसिया पर किया। जब उसने बातचीत को मोडकर जिन्ना तक पहुँचाया तो नहरू ने उसी स्पष्टवादिता से कहा— मामूली वकील है जिसे पाकि-स्तान की बीमारी है।' ऐसा लगा जैसे नेहरू विश्वास दिला रहा हो कि हमलोगो-जैसा यह नहीं।

तीन घण्टे की बातचीत खत्म कर जब नेहरू जाने लगा तो नेहरू पर पूरा रग चढ चुका था और माउटबेटन ने अच्छी तरह उसे जाँच परख लिया था। इस आदमी को राजी किया जा सकता है। उसने कहा—'मि० नेहरू, मैं चाहता हूँ कि ब्रिटिश राज का अन्त करनेवाला आखिरी वायसराय आप मुझे न समझें बल्कि नए हिन्दुस्तान का रास्ता बतानवाला पहला वायसराय।'

नेहरू पर गहरा असर पडा। उसने कहा—अब मेरी समझ म आ रहा है कि आपकी मोहनी को जब लोग खतरनाक कहते हैं तो उनका मतलब होता है।'

लेकिन उस क्षण के बाद से वह माउटबेटन का ही आदमी रहा। लेडी माउटबेटन से मुलाकात के बाद तो रग और गहरा हो गया। वह बहुत दिनो से विधुर था, एकाकी। लेडी माउटबेटन ने उसके जीवन की एक बडी महत्वपूर्ण कमी पूरी कर दी। जिस तरह वह

वायसराय के भोज या गार्डेन-पार्टी मे रानी की तरह सभी कुछ सँभालती, उसका आकर्षण बढता गया। लेकिन हिन्दुस्तान के प्रति जो उसकी गहरी सहानुभूति थी और जिस तरह व्यावहारिक रूप में वह हिन्दुस्तानियों की मदद करना चाहती थी उसने तो नेहरू को ऐसी भावनाओं से ओतप्रोत किया जो आकर्षण की सीमा से बाहर चली गयी।

माउंटबेटन की मोहनी और एडविना की सहानुभूति का नुस्खा गांधी पर उतना कारगर नही हुआ। लेकिन वह भी अछूता नही रहा। बिहार के साम्प्रदायिक दंगों के क्षेत्र में महात्मा था, जब माउण्टबेटन का निमन्त्रण मिला।

जवाब में उसने लिखा—'बिहार से बाहर निकलने की मेरी दिक्कत का आपने ठीक ही अन्दाज लगाया है। लेकिन आपके निमन्त्रण की मैं उपेक्षा नहीं कर सकता। अभी तो मैं बिहार के एक परेशान इलाके में जा रहा हूँ। इसलिए अगर दिल्ली पहुँचने की तारीख मैं न लिख सकूँ तो मुझे माफ करेंगे। बिहार के इस तीसरे दौरे से मैं 28 तारीख को लौटूंगा। इसलिए 28 के बाद जितनी जल्दी हो सका, मैं रवाना हो जाऊँगा।'

माउंटबेटन इस मुलाकात को बहुत ही महत्त्वपूर्ण मानता था इसलिए गांधी को जो भी समय चाहिए, दिया गया। दरअसल दो दिन मुलाकात हुई। पहले दिन गांधी ने तीन घण्टे तक बातचीत की, ज्यादातर अपने ही बारे में—बीते हुए दिनों और संघर्षों की कहानी। जो आदमी समझता हो कि घण्टे भर से ज्यादा किसी को भी लग ही नही सकता अपनी बात समझाने में उसके लिए तीन घण्टे बैठकर ध्यान से सुनना थका देनेवाला तो हुआ ही होगा। दूसरे दिन गांधी ज्यादा व्यावहारिक हुआ। उसने एक योजना सामने रखी। यह योजना ऐसी थी जिसे देखकर वेवेल चीख उठता। उसकी योजना थी कि कांग्रेस और मुस्लिम लीग का गतिरोध आसानी से हटाया जा सकता है। वायसराय को चाहिए कि मि० जिन्ना को बुलाकर सरकार बनाने का काम सौंपा जाय। इस सरकार में सिर्फ मुसलमान ही रहें या हिन्दू और मुसलमान दोनों, यह सारा कुछ उन्ही की मर्जी पर छोड दिया जाय। वायसराय के वीटो के अलावा यह सरकार अपनी मर्जी से शासन चलाने के लिए पूर्ण स्वतन्त्र हो।

वायसराय ने तुरन्त जवाब दिया कि योजना बडी 'आकर्षक' थी और वह सहानुभूतिपूर्वक विचार करेगा; अगर कांग्रेस भी इसे अमली समझे। उसने गांधी और लेडी माउंटबेटन के साथ फोटो खिचवाया। अपनी लडकी पेमेला का परिचय कराते हुए उसने कहा कि उसे कल प्रार्थना-सभा में भी भेजूंगा। अपने जीवनी-लेखक प्यारेलाल के शब्दों में, 'गांधी पर वायसराय की सचाई, साफदिली और ईमानदारी का गहरा असर पड़ा।' लेकिन कुछ समय बाद यह असर इतना गहरा नहीं रह गया। कांग्रेस ने इस योजना को बुरी तरह ठुकरा दिया और वायसराय ने भी गांधी को लिखा कि इस योजना-सम्बन्धी उसके विचारों के बारे मे भी गलतफहमी हुई है। हुआ यह कि बैठक के तुरन्त बाद माउंटबेटन और उसके अफसरों ने इस योजना की हत्या शुरू कर दी, क्योंकि उनका (बहुत सारे कांग्रेसियों का भी) यह विश्वास था कि यह योजना काम में नहीं लायी जा सकती। यह काम इतनी अच्छी तरह से किया गया कि

बहुत जल्द गाधी ने घोषणा कर दी कि वह वायसराय के साथ बातचीत में और हिस्सा नहीं लेगा, सिर्फ कांग्रेस के मामला म सलाह दिया करेगा। बिहार के अपने दौरे पर गाधी वापस चला गया। हिन्दुस्तान आने के सिर्फ पन्द्रह दिन बाद उसने आजादी की बातचीत से गाधी को अलग कर दिया। हिन्दुस्तान के लिए यह बडी ही महत्वपूर्ण तथा गम्भीर बात थी, क्योंकि कांग्रेसियो म गाधी ही उन दो मे स एक था जो सभी दबाव और प्रचार के बावजूद हिन्दुस्तान के बँटवारे का विरोधी था।

जिन्ना की पहली मुलाकात के बारे म वायसराय ने पीछे चलकर कहा था—'हे भगवान! यह तो बिलकुल ठडा था। उसकी ठडक दूर करने म ही मेरी जान निकल गई।' वायसराय को तुरन्त पता चला कि इस आदमी पर उसकी मोहनी नहीं चल सकती। जिन्ना न बातचीत का श्रीगणेश ही इस तरह किया—'मैं एक ही शर्त पर बातचीत कर सकता हूँ कि ।'

जैसाकि वायसराय के कर्मचारियो म से एक ने बताया, वायसराय ने यह तुरन्त महसूस किया कि इसकी थोडी मक्खनबाजी करनी पड सकती है। उसने मुस्करा कर जिन्ना की बात काटी— मि० जिन्ना, जब तक मैं आपको अच्छी तरह जान न लू, आपके बारे में आपके मुंह से ही काफी कुछ सुन न लूं तब तक शर्तों के बारे म क्या, आज की परिस्थिति के बारे म भी बातचीत करना नही चाहता।'

इस तरह तो बहुतो का शक दूर हो जाता, उनका दरवाजा खुल जाता। लेकिन सत्तर साल का जिन्ना किसी के लिए ऐसी रियायत नही कर सकता था, खासकर उस आदमी के लिए जिस पर हिन्दुओ का पक्षपाती और मुसलमानो का विरोधी होने का इलजाम था। वायसराय न सोचा हो कि जिन्ना की ठडक दूर हो गई होगी लेकिन जब बातचीत खतम हुई तो जिन्ना की वही हालत थी। वायसराय की कोठी से बाहर निकलते हुए उसन सवाददाताओ से कहा— वायसराय तो कुछ समझता ही नही।'

यह बात ठीक नही थी। वायसराय बहुत अच्छी तरह समझता था। माउटबेटन मिशन के बारे म चाहे जो कुछ भी कहा जाय, यह बात शुरू मे ही साफ-साफ समझ लेनी चाहिए। हिन्दुस्तान पहुचने के तीन सप्ताह के भीतर ही माउटबेटन के दिमाग में किसी तरह का शक नही रह गया था कि अपनी सरलता के लिए उसे क्या करना चाहिए। 28 मार्च की पहली मुलाकात के बाद ही वी० पी० मेनन ने लिखा था—

> 'उतने दिन पहले नये वायसराय के आने के चार दिन बाद ही मुझे लगा कि वायसराय ने अपना रास्ता चुन लिया है और मसले का हल भी सोच लिया है। इस अवसर पर मैंने अपनी राय भी जाहिर कर दी कि केन्द्रीय सरकार मे हिस्सा लेने के बजाय मि० जिन्ना और मुस्लिम लीग कटा हुआ पकिस्तान मानने के लिए राजी हो जायेंगे। बात उसने पकड ली। मुझे ऐसा लगा कि वह जो सत्ता लेकर आया है', उसम दोना पार्टियाँ राजी नही हुईं तो उसे ही फैसला करना पड़ेगा जो शायद मेरी समझ से किसी को अच्छा न लगे।[1]

1 वी० पी० मेनन 'द ट्रांसफर आफ पावर'

माउंटबेटन में पास एक ताकत थी और उसी के आधार पर उसने आते ही साफ कर दिया था कि यह अस्थायी रूप में आया तो है लेकिन जब तक वह वायसराय के पद पर है, उसका अधिकार भी उसी तरह निर्विवाद है। ब्रिटिश प्रधान मन्त्री मि० एटली ने उसे सीधा सादा निर्देश दे दिया था जिसके लिए वेवेल की हर कोशिश असफल रही। अपने साथ वह एटली का ऐसा सन्देश लेकर हिन्दुस्तान आया था जिसने उसके काम की सीमा-रेखा खींच दी थी और इस तरह की उसे अपने चुनाव आदि के बारे में कोई शंका ही नहीं थी।

प्रधान मन्त्री ने लिखा था—'बर्तानिया सरकार का यह स्पष्ट लक्ष्य है कि ब्रिटिश कॉमनवेल्थ के दायरे में विधान सभा की सहायता से एक सरकार कैबिनेट मिशन की योजना के आधार पर बने और काम करे। अपनी पूरी ताकत लगाकर आपको सभी पार्टियों को इस लक्ष्य की ओर ले जाना चाहिए और जो भी नई बातें हों उनके बारे में सरकार को सलाह देनी चाहिए कि कौन-से कदम उठाये जायें।'

लेकिन चिट्ठी में यह भी था—

'चूँकि यह योजना प्रमुख पार्टियों की रजामन्दी से ब्रिटिश हिन्दुस्तान में ही लागू हो सकती है, इसलिए किसी पार्टी को मजबूर करने का सवाल नहीं उठता। अगर 1 अक्तूबर तक आप समझते हों कि हिन्दुस्तानी रजवाड़ों की सहायता के साथ या उनके बिना ब्रिटिश हिन्दुस्तान में एक सरकार बनाने की कोई सम्भावना नहीं है तो आपको इसकी खबर सरकार को देनी चाहिए और सलाह भेजनी चाहिए कि किस तरह निश्चित तिथि को सत्ता हस्तान्तरित की जा सकती है।'

वायसराय को दिये गए निर्देश में और भी बहुत कुछ था, लेकिन उसकी प्रमुख बात यही थी। वायसराय को बातचीत करने के लिए सत्ता भी थी और गुंजाइश भी। माउंटबेटन ने इसका बड़ी तेजी से उपयोग किया। हो सकता है कि तीन सप्ताह के बाद वायसराय ने यह फैसला नहीं किया हो कि एक हिन्दुस्तान असम्भव है, लेकिन यह तो साफ समझ हो लिया था कि उसे हासिल करना बड़ा ही लम्बा और पेचीदा काम है, जिसमें खतरे और अनिश्चितता की भरमार है। माउंटबेटन खतरा उठाने के लिए हिन्दुस्तान नहीं आया था। वह तो सफलता के लिए आया था और वह भी जल्दी से-जल्दी। जैसाकि वी० पी० मेनन ने अपनी किताब 'द ट्रांसफर ऑफ पावर इन इण्डिया' में लिखा है—

'अपने निर्देश के अनुसार कैबिनेट मिशन की योजना के आधार पर संयुक्त हिन्दुस्तान के लिए एक सर्वसम्मत हल ढूंढ निकालना माउंटबेटन का काम था। इस रास्ते पर वह बड़ी मुस्तैदी और तेजी से चल पड़ा। लेकिन पार्टियों के नेता, खासकर जिन्ना और अपने साथियों के साथ बातचीत करते-करते उसका यह विश्वास गहरा होता गया कि उस आधार पर एक सर्वसम्मत हल की गुंजाइश नहीं। उसके बदले कोई नया फार्मूला ढूंढना पड़ेगा और बहुत जल्द उसे लागू करना होगा।'

दूसरा रास्ता देश को बाँटने का ही था, यानी पाकिस्तान। लेकिन देश-विभाजन के लिए कांग्रेस के नेताओं को खासकर गांधी और नेहरू को कैसे राजी

किया जाय जो इसके सख्त विरोधी थे ? देश विभाजन के लिए बर्तानिया सरकार को कैसे राजी किया जाय ? और फौजी आदमियों तथा सरकारी नौकरों को कैसे राजी किया जाय, क्योंकि देश को दो टुकड़ों में बांटने का भयानक काम उनके ही हाथों सम्पन्न होगा ?

जहाँ तक गांधी का सवाल है, काम मुश्किल नहीं था। गांधी से दो बार मुलाकात करने के बाद ही वायसराय की चालों ने गांधी को कांग्रेस आन्दोलन के एक किनारे फेंक दिया। कांग्रेस के नेताओं के साथ माउंटबेटन ने जो बातचीत की उसकी मंशा थी—गांधी व्यावहारिक आदमी नहीं है। जरा देखिये तो, हजरत कहते हैं कि हिन्दुस्तान जिन्ना के हाथों में सौंप दो। यह समय आदर्शवादिता का नहीं है, यह काम करने का समय है। इसके बाद कांग्रेस ज्यादा-से-ज्यादा अहम फैसले बिना उसकी सलाह के ही करने लगी। इनमें से एक फैसला कांग्रेस वर्किंग कमेटी के मार्च वाले प्रस्ताव में था। इससे वायसराय का काम सीधा बन गया।

इस प्रस्ताव को तैयार करनेवाला था सरदार पटेल ! शायद अपने सभी साथियों की अपेक्षा वही ठीक-ठीक जानता था कि वह क्या कर रहा है। इस प्रस्ताव को पटेल ने रखा और कांग्रेस वर्किंग कमेटी ने पास किया। इस प्रस्ताव में पंजाब को दो टुकड़ों में बाँटने की सिफारिश थी। एक टुकड़ा हिन्दुओं का, दूसरा मुसलमानों का। सिखों को यह आजादी थी कि वह कहाँ रहेंगे इसका फैसला खुद कर लें। फैसले का इशारा साफ था। अगर कांग्रेस एक प्रदेश का बँटवारा मान सकती है तो देश के बँटवारे का कैसे विरोध कर सकती है। पटेल के दिमाग में यही तस्वीर थी। *उसने फैसला कर लिया था। जहाँ तक उसका सवाल था,* मुसलमानों से वह मुक्ति चाहता था। कांग्रेस के संगठनकर्ता और संचालक की हैसियत से वह महसूस करता था कि आजाद हिन्दुस्तान में विरोधी दल के रूप में मुस्लिम लीग का मतलब है मुसीबत, उसकी योजनाओं का अन्त, कानूनों पर रोकथाम ! मुस्लिम लीग के उपनेता लियाकतअली खाँ ने अस्थायी सरकार के वित्त मेम्बर की हैसियत से ऐसा बजट बनाया था कि कांग्रेस पार्टी के समर्थक करोड़पतियों का बुरा हाल हो गया था और समाजवाद का कांग्रेसी दावा धूल में मिल गया था। पटेल ने न सिर्फ बजट में रद्दोबदल के लिए सरतोड़ कोशिश की और वायसराय की मदद से उसमें सफल भी हुआ बल्कि उसने फिर इस तरह के जाल में कभी न फँसने का ही फैसला कर लिया।

यह बात नहीं थी कि इतने साफ लफ्जों में पटेल ने सारी बात अपने साथियों को बता दी। उन लोगों के लिए तो उसने दूसरी दलील तैयार की जो हिन्दुस्तानी एकता को बनाए रखने की इच्छावालों के लिए ज्यादा उपयुक्त थी।

उसने वर्किंग कमेटी के एक सदस्य को लिखा—'अगर लीग पाकिस्तान के लिए अड़ जाती है तो फिर उसका एकमात्र तरीका है बंगाल और पंजाब का बँटवारा।'' '' मैं नहीं समझता कि बर्तानिया सरकार इस बँटवारे के लिए राजी हो जाएगी। आखिरकार सबसे शक्तिशाली पार्टी के हाथों सरकार सौंप देने की समझ आएगी। और अगर नहीं भी आई तो कोई बात नहीं। केन्द्र की मजबूत

सरकार होगी जिसमें पूर्वी बंगाल, पंजाब का कुछ हिस्सा, सिंध और बलूचिस्तान इस केन्द्र के मातहत स्वतन्त्र होंगे। केन्द्र इतना ताकतवर होगा कि आखिरकार वह भी इसी में आ जाएँगे।'

यह दलील पण्डित नेहरू को खासतौर पर पसन्द आई। कोई फायदा ही नहीं था। वह मुस्लिम लीग और जिन्ना को कोई अहमियत देने के लिए तैयार नहीं था। मंशा थी कि सदा-सर्वदा के लिए उनकी साख मिटा दी जाय और हिन्दुस्तान के मुसलमानों को अच्छी तरह स्पष्ट हो जाय कि कांग्रेस ही उनका भविष्य सम्मान सकती है।

पंडित नेहरू के लिए पटेल का प्रस्ताव सिर्फ एक चाल थी, बँटवारे को कबूल करना नहीं था। उसके ही सक्रिय सहयोग से पंजाब के बँटवारेवाला प्रस्ताव पास हुआ। पण्डित नेहरू ने सोचा कि इस तरह मुसलमानों के लिए यह साफ हो जायगा कि पाकिस्तान के लिए अड़ जाने का क्या अर्थ हो सकता है। मि० जिन्ना की समझ में भी यह आ जायगा कि उसके आन्दोलनों का अंत होगा ऐसे राज्य में जो बिलकुल अपंग होगा और फिर उसकी इच्छा ही नहीं रह जाएगी। इस प्रस्ताव के पास करने के लिए ऐसी तारीख चुनी गई जिसमें गाधी तो बिहार के पीड़ित क्षेत्रों का दौरा कर रहा था और कांग्रेस के ऊपरवाले लोगों में एकमात्र मुसलमान मौलाना अबुलकलाम आजाद बीमार था। क्योंकि पटेल और नेहरू दोनों को यह मालूम था कि आजाद और गांधी इसके विरुद्ध थे और इसके पास नहीं होने में पूरी ताकत लगा देंगे। जब प्रस्ताव पास भी हो गया तो इसे छिपाकर रखने की कोशिश की गई और गांधी को यह नहीं बताया गया कि क्या हुआ।

तीन सप्ताह बाद गाधी ने नेहरू को लिखा—"मैं काफी अरसे से वर्किंग कमेटी के पंजाब के बँटवारेवाले प्रस्ताव के बारे में लिखना चाह रहा था। मैं इसका कारण जानना चाहूँगा। मैं इसके बारे में कहना चाहता हूँ। चूंकि पूरी बात का मुझे पता नहीं इसलिए मैंने बहुत सम्भाल कर कहा है। कृपलानी (नेहरू से जिसने कांग्रेस का सभापतित्व लिया) ने मद्रास में एक सवाल का जवाब देते हुए कहा है कि यह सिद्धान्त बंगाल पर भी लागू किया जा सकता है। एक प्रमुख मुस्लिम लीगी ने मुझसे पूछा है—अगर यह सिद्धान्त मुसलमानों के बहुमतवाले प्रदेशों पर लागू किया जा सकता है तो उन प्रदेशों पर भी क्यों नहीं लागू हो सकता जहाँ कांग्रेस का बहुमत है; जैसे बिहार! मुझे लगता है वर्किंग कमेटी के इस प्रस्ताव के पीछे जो कारण हैं उनका मुझे पता नहीं। मेरे पास मौका भी नहीं था। मैं सिर्फ अपने विचार व्यक्त कर सकता था जो सम्प्रदाय या दो राष्ट्रों के सिद्धान्त पर किसी भी तरह के बँटवारे का विरोधी है। मजबूरी में तो कुछ भी सम्भव हो सकता था। लेकिन अपनी इच्छा से सम्मति देने का तो अर्थ है कि बात दिल और दिमाग को ठीक लगे। स्वेच्छा से किये गए कामों में तो मजबूरी या उसके प्रदर्शन के लिए कोई जगह नहीं।'

उसी समय गांधी ने सरदार पटेल को भी पंजाबवाले प्रस्ताव के स्पष्टीकरण के लिए लिखा।

पहले जवाब पटेल ने दिया जो बड़ा ही घिसापिटा था :—

'पंजाब वाले प्रस्ताव के बारे में आपको समझाना मुश्किल रहा है। बहुत सोच-समझकर ही इस प्रस्ताव को पास किया गया है। जल्दबाजी में या पूरी तरह बिना सोचे-समझे कुछ नहीं किया गया है। आपने इसके विरोध में अपने विचार प्रकट किए थे, यह तो अखबारों से ही मालूम हुआ।[1] आप जो ठीक समझते हैं उसे कहने का तो आपको हक है ही। पंजाब की हालत बिहार से बदतर है। सारा नियन्त्रण फौज के हाथों में चला गया है। इसलिए सतह पर तो लगता है कुछ शांति आ गई है। लेकिन कोई नहीं कह सकता कि कब स्थिति भड़क उठे। अगर वह हुआ तो मुझे डर है कि दिल्ली भी उससे अछूता नहीं रह सकेगी। लेकिन यह भी ठीक है कि यहां हम लोग स्थिति सम्भाल लेंगे।'

पंडित नेहरू ने एक दिन बाद जो जवाब भेजा वह और भी लचर था :—

'हमलोगों ने पहले जो फैसले किए थे, पंजाब के बँटवारे का फैसला स्वाभाविक रूप से उसके बाद आता है। पुराने प्रस्ताव नकारात्मक थे, लेकिन अब फैसले का वक्त आ गया है। और सिर्फ अपने विचारों को व्यक्त करनेवाले प्रस्ताव पास करने का कोई अर्थ नहीं होता। मुझे अच्छी तरह विश्वास हो गया है, और इसी तरह वर्किंग कमेटी के अधिकांश सदस्यों को भी कि हम लोगों को तुरन्त बँटवारे की माँग करनी चाहिए ताकि यथार्थ सामने आए। दरअसल जिन्ना ने जिस बँटवारे की माँग की है उसका यही एकमात्र जवाब है।'[2]

इस समय तक नेहरू को यह विश्वास नहीं था कि जिन्ना पाकिस्तान की माँग छोड़कर इस 'घुन लगे पाकिस्तान' को मान लेगा। पीछे चलकर नेहरू ने इसी नाम का प्रयोग किया था।

जार्ज एबेल और वी० पी० मेनन दोनों ने कांग्रेस के प्रस्ताव की ओर वायसराय का ध्यान खींचा और कांग्रेस की चाल में जो बुनियादी फर्क पड़ गया था उस पर जोर दिया। यह अलग बात है कि सदस्यों ने इसे महसूस किया या नहीं। उसने तुरत पटेल को बुला भेजा। बड़ी होशियारी से इस प्रस्ताव के पीछे जो मंशा थी उसे टटोला। पटेल ऐसा आदमी नहीं था जो हिन्दुस्तान की आजादी की लड़ाई में अपने हाथ के सब पत्ते दिखाकर बाजी खेलता। उसने उस थोड़े-बहुत बुद्धू हिन्दू राजनीतिज्ञ का पार्ट अदा किया जिसकी समझ में प्रस्ताव का पूरा-पूरा अर्थ ठीक-ठीक नहीं आ रहा था। इतनी बड़ी बाजी थी उसके लिए कि बुद्धू समझे जाने की उसे परवाह नहीं थी। अचरज और विस्मय के साथ उसने यह समझाने का मौका दिया कि पंजाब के बँटवारे का अर्थ है सिद्धान्ततः हिन्दुस्तान के बँटवारे की बात मानना। और इससे भी ज्यादा मन्दगति से और अनिच्छापूर्वक उसने माउंटबेटन की सलाह मान ली कि आखिरकार यही एकमात्र रास्ता था। जरा सोचिए कि हमेशा के लिए अगर

1. रेखांकित लेखक के हैं। गांधी ने किसी के दिमाग में खासकर पटेल के दिमाग में तो यह शंका भी नहीं छोड़ी थी कि वह किसी भी तरह के बँटवारे का विरोधी है।

2. रेखांकित लेखक के हैं।

मुसलमान चले जायें (छोटे और अव्यावहारिक देश में) तो कितनी शान्ति हो। कांग्रेस की योजना का कोई विरोध नहीं। कांग्रेस के लिए गलियाँ खोजनेवालों के खिलाफ कोई चालबाजी नहीं। एक पार्टी के शासन में स्वतन्त्र हिन्दुस्तान जहाँ उसकी योजनाओं का किसी तरह का विरोध नहीं।

अनिच्छापूर्वक पटेल ने माउंटबेटन को इस बात पर खुद को राजी करने दिया कि शायद यही एकमात्र रास्ता था। खुशी में उफनता हुआ माउंटबेटन इस मुलाकात के बाद अपने कर्मचारियों से बोला—'काम बन गया। पहले तो बडा ही सरल लग रहा था। लेकिन छिलका टूट गया तो अन्दर गुठली ही थी।'

न तो इस उद्गार को सुननेवाला वी० पी० मेनन और न पटेल ने ही माउंटबेटन को यह जानने का मौका दिया कि प्रस्ताव के असली मानों के बारे में वे लोग पहले ही सोच विचार कर चुके थे। दरअसल (जैसाकि स्पष्ट हो जाएगा) माउंटबेटन के कमरे में सरल व्यक्ति-सा सीधे तौर पर जाते समय भी पटेल अपना जाल बुनने में व्यस्त था।

पीछे चलकर मौलाना अबुलकलाम आजाद ने लिखा—'जैसे ही पटेल को विश्वास दिला दिया, माउंटबेटन ने अपना ध्यान जवाहरलाल पर जमा दिया। पहले तो जवाहरलाल राजी नहीं हुए, बँटवारे की बात पर भड़क उठे, लेकिन माउंटबेटन ने पल्ला नहीं छोड़ा। कदम-ब-कदम जवाहरलाल के सभी विरोध खतम हो गए। माउंटबेटन के हिन्दुस्तान आने के एक महीने के भीतर जवाहरलाल, जो बँटवारे के सख्त विरोधी थे, उसके समर्थक नहीं तो कम-से-कम उसके विरोधी भी नहीं रहे।'

आजाद ने यह भी लिखा—'मुझे अक्सर ताज्जुब होता है कि लार्ड माउंटबेटन ने जवाहरलाल को किस तरह अपनी तरफ कर लिया।'

इस तरह के मोर्चे बदलने के, दरअसल कई कारण थे लेकिन यह भी ठीक है कि इन कारणों में एक लेडी माउंटबेटन भी थी।

शुरू से ही वायसराय और उसके सहकारी एक दल की तरह काम कर रहे थे। उनकी पत्नी भी इस दल का एक हिस्सा थी। और हिस्सा थी, कुछ ही हद तक उनकी लड़की पेमेला भी। हर रोज अनुशासन के काम के अलावा वायसराय के ये लोग उसकी सदभावना का प्रचार करते हुए चक्कर काटते थे और समझौते की बातचीत का रास्ता साफ करते चलते थे। कैम्बेल-जॉनसन ने नेहरू-परिवार से काफी मेल-जोल बढ़ा लिया था। नेहरू की लड़की इन्दिरा से उसकी मित्रता हो गई थी और इन्दिरा का बाप पर काफी अच्छा प्रभाव था। नेहरू-माउंटबेटन सम्बन्ध की राह के सभी रोड़ों को दूर करने में वह सफल था। वह उन हिन्दुस्तानी विचारकों (जैसे पनिकर) के बीच भी अच्छा प्रभाव रखने लगा था जो कांग्रेस के सदस्य तो नहीं थे, पर कांग्रेस की विचारधारा पर जिनका अच्छा प्रभाव था।

लार्ड इस्मे का काम ज्यादा मुश्किल था—मुसलमानों को वायसराय की नेक-नीयती का विश्वास दिलाना। इस काम में जार्ज एबेल उसका सहायक था। इस्मे ने हिन्दुस्तान निवास का अधिकांश समय मुसलमान सिपाहियों के बीच बिताया था।

वह यह छिपाता भी नहीं था कि हिन्दुओं से ज्यादा मुसलमान उसे पसन्द थे। वह साफ तौर पर भला और अच्छी तबियत का आदमी था।[1] यह ठीक है कि मुहम्मदअली जिन्ना के दाक और बन्द जवानी पर उसका बहुत असर नहीं पड़ा लेकिन लियाकतअली खाँ के साथ उसे काफी अच्छी सफलता मिली। माउण्टबेटन के साथ आनेवाले बाकी सभी सदस्य हिन्दुस्तानी दिलों पर निरन्तर चोट मारते रहे।

अपने परिवार के लिए भी माउण्टबेटन ने काम बाँट दिए थे, हालांकि सच्ची बात कही जाय तो लेडी माउण्टबेटन को काम बताने की जरूरत नहीं थी। हिन्दुस्तान की चुनौती को उसने तुरन्त स्वीकार किया। वायसराय भवन की व्यवस्था या उसके 7,500 नौकरों पर हुक्म चलाना या कभी-कभी होनेवाले भोजों की देख-रेख तक ही अपने को सीमित रखने की उसकी मंशा नहीं थी। हिन्दुस्तान की राजनीति के बारे में अपनी लड़की पेमेला को भी समझा-बुझाकर उसने 'मित्रता और सद्भावना' के प्रचार में लगा दिया। दिल्ली में गांधी की प्रार्थना-सभा में पेमेला उपस्थित रहती। नौजवानों की जमात में वह डटकर बोलती।

लेडी माउण्टबेटन के पास उसकी मोहनी और सहानुभूति ही उसका प्रमुख साधन थी। अपने पति की ही तरह उसे भी जरूरत थी कि लोग उसे पसन्द करें, वह सफल हो। लेकिन उसकी इच्छा दिमाग के बदले दिल से निकलती थी। वह इतनी होशियार थी कि समझती थी कि चाहे कितना भी अंग्रेज विरोधी क्यों न हो, एक लेडी उसको अच्छी लगती है और राजघराने की चकाचौंध उनके मनभाती है। उसने अपनी पृष्ठभूमि, अपना व्यक्तित्व, अपनी सुन्दरता सभी का उपयोग लोगों से मिलने-जुलने के लिए किया। हिन्दुस्तानियों से मिलना-जुलना उसे अच्छा लगता था। अन्य मेमों की तरह उसमें रंग या सामाजिक स्तर की कोई अनुभूति नहीं थी। उसने बहुत से हिन्दुस्तानी नेताओं और उनकी पत्नियों से मित्रता की और अपने पति की नीति और विचारों को उनके लिए विश्वसनीय बनाती रही।

उसके सबसे अच्छे मित्रों में नेहरू था और मौलाना अबुलकलाम आज़ाद के शब्दों में 'उसपर पटेल या माउण्टबेटन से भी ज्यादा था प्रभाव लेडी माउण्टबेटन का··· वह अपने पति के गुणों से मोहित थी और बहुत-सी बातों में उसके विचारों को उन लोगों के लिए नया अर्थ दे सकती थी जो पहले उसके लिए राजी नहीं थे।'

लेकिन सिर्फ लेडी माउण्टबेटन ही नहीं बल्कि ऐसी परिस्थितियों (जिनमें उसने भी अपना पार्ट अदा किया) ने नेहरू के परेशान और अनिश्चित दिमाग को पाकिस्तान के हल की ओर मोड़ दिया। वह खुद पंजाब गया था और उस साम्प्रदायिक दंगे

1. यह ठीक उसके जैसे आदमी का ही काम था कि अपने एक नौकर को वह बीस साल से कुछ रुपये देता रहा था। हिन्दुस्तान आने के ठीक पहले उसके बैंक के मैनेजर ने उसे लिखा कि हफ्तों से पेंशन लेने कोई नहीं आया। जब वह दिल्ली आया तो राज खुला। रेडियो पर उसकी बहाली का समाचार सुनकर वह नौकर हफ्तों पैदल चलकर दिल्ली आया था काम करने के लिए और दिल्ली में उसकी प्रतीक्षा कर रहा था।

की भी एक झलक उसने देखी थी, जिसमें 2,000 आदमी मारे गए थे। हिन्दुस्तान खून-खराबी और नफरत के जाल में तेजी से फंसता जा रहा था। इस तरह का बेसहारापन नेहरू को खा रहा था। उसने लिखा भी— मैंने दर्दनाक नजारे देखे हैं, इन्सान की ऐसी हरकतों की कहानी सुनी है कि जंगली भी शर्म से नजर नीची कर लें।' कुछ साल पहले नेहरू इससे नहीं घबराता था बल्कि इसे वह अपने नेतृत्व और कांग्रेस की नीति की चुनौती मानता, खुद इससे लड़ने जाता। लेकिन अब वह थका हुआ था। वह अपने को जनता से अलग महसूस करता था।

" उसने गांधी को लिखा—'किसी हद तक सारे देश में स्थिति असंतोषजनक है। एक तरह की तोड़-फोड़ की शक्ति काम कर रही है जिसका हमारे काम पर हर दिशा में असर पड़ता है। पूरी कांग्रेस संस्था इससे परेशान हो रही है और हम लोग जो सरकार में हैं, इसके लिए समय निकाल नहीं सकते, क्योंकि सरकार के जरूरी काम सामने हैं।'' मैं कांग्रेस संस्था की तेजी से गिरती हुई हालत के बारे में चिन्तित हूं। हममें से जो सरकार में हैं वे कांग्रेस के काम के लिए समय ही नहीं निकाल सकते। जनता से हमारा सम्पर्क टूटता जा रहा है।'

जब नेहरू की मानसिक स्थिति यह थी तो लेडी माउण्टबेटन पंजाब के दौरे से वापस आईं। दंगे से पंजाब के जो इलाके सबसे ज्यादा पीड़ित थे उनका दौरा हवाई जहाज और मोटर से किया था। वह पहली दफा वायसराय भवन के वातानुकूलन से सही मानी में बाहर निकलकर धूल से भरी हिन्दुस्तानी गर्मी की मट्टी में आई थी। उसने जो कुछ देखा और अनुभव किया उससे घबरा उठी। सेंट जॉन एम्बुलेंस ब्रिगेड की एक रिपोर्ट में उसने लिखा—'यह गर्मी बहुत ही थका देनेवाली है। छांह में भी तापमान 114° तक चला जाता है। रात में भी तापमान 95° से नीचे यदा-कदा ही आता है। अब तो लगता है कि 90 और 100 के बीच तापमान टिक गया है लेकिन नमी बढ़ती ही जा रही है।'''इसने तो छोटे शहरों और गांवों में जमकर काम करना मुश्किल ही कर दिया है, जहां पंखा नाम की भी चीज नहीं। सच्ची बात तो यह है कि दिन में तीन बार मैं अपने सर के बाल निचोड़ती हूं। दरअसल यह भूल ही जाता है कि सूखा का क्या अर्थ होता है।'

अस्पताल और दंगे से तबाह गांवों में उसने साम्प्रदायिक क्रूरता का नजारा देखा—हाथ-कटे बच्चे, पेट-कटे हुए गर्भवती औरतें, सारे परिवार में अकेला बचा रहनेवाला बच्चा! वह दिल्ली लौटी तो बहुत दुखी थी, साम्प्रदायिक दंगे के नजारे से घबरायी हुई थी और उसका यह विश्वास दृढ़ हो गया था कि उसके पति और सहकारी जो कहते हैं, वह ठीक है, बंटवारा ही एकमात्र रास्ता है। जब वह ऐसी मानसिक स्थिति में थी तो उसे नेहरू से मिलने के लिए माउण्टबेटन ने भेजा। हिन्दुस्तान के दुःख-दर्द पर दोनों ने आंसू बहाए। चन्द दिनों के बाद नेहरू मौलाना अबुलकलाम आजाद से मिलने गया। पीछे चलकर आजाद ने लिखा— जवाहरलाल ने मुझसे परेशानी में पूछा—बंटवारे के सिवा चारा ही क्या है। जवाहरलाल मानते थे कि बंटवारा बुरा है लेकिन उनका विचार था कि परिस्थिति उसी ओर खींचकर ले जा

रही है।'''मुझसे भी बँटवारे के विरोध के लिए यत्न किया गया। उन्होंने कहा कि यह अनिवार्य है और उसका विरोध करना बुद्धिमानी नहीं होगी। उन्होंने यह भी कहा कि इस मामले में माउण्टबेटन का विरोध करना मेरे लिए अक्लमन्दी नहीं होगी।'[1]

काम हो गया। जिस आदमी ने इतने दिनों तक स्वतन्त्र और एकीकृत हिन्दुस्तान के लिए लड़ाई लड़ी, जो जिन्ना का मजाक उड़ाता था और मुस्लिम लीग को नीची नजर से देखता था, वही एक महीने के भीतर माउण्टबेटन की माहिरी और लेडी माउण्टबेटन के दुख में बदल गया, और हालांकि और भी कई कारण इसमें शामिल थे—खासकर बहुत-से कांग्रेसी नेताओं की थकान और मुसलमानों से पीछा छुड़ाने का सरदार पटेल का निश्चय,—किसी के भी दिमाग में कोई शंका नहीं थी कि नेहरू को राजी कर वायसराय ने इस युग का सबसे बड़ा जादू किया है। क्योंकि नेहरू का बदलना ही कुंजी थी। उसकी रजामन्दी के बिना कांग्रेस बँटवारे की बात कभी नहीं मानती।

सार्वजनिक रूप से मुहम्मदअली जिन्ना ने शान्त और संयत रुख अख्तियार किया। नेहरू के इस परिवर्तन को उसने ठोस तथ्यों की पहचान माना। लेकिन दोस्तों के बीच तो वह खुशी से फटा पड़ता था। उसे वायसराय से कम सन्तोष नहीं था। उसने कभी यह उम्मीद नहीं की थी कि इतनी जल्दी कांग्रेस पाकिस्तान मान लेगी। दरअसल उसे जाननेवालों में बहुतों का तो यह खयाल था कि उसे सचमुच पाकिस्तान की संभावना ही नहीं थी। और अब वह उसकी देहली पर खड़ा था।

11 अप्रैल, 1947 को लॉर्ड इस्मे ने रिफार्म्स कमिश्नर वी० पी० मेनन को यह पत्र वायसराय भवन से भेजा—

'प्रिय मेनन,—मैं सत्ता सौंपने की सम्भावित योजना का सिर्फ एक ढांचा भेज रहा हूँ। वायसराय को खुशी होगी अगर (क) आप जिस तरह चाहें इसमें रद्दोबदल कर दें और इस ढांचे पर थोड़ा मांस चढ़ा दें, (ख) बर्तानिया सरकार जब घोषणा करे तो ठीक उसके बाद कौन-सा रास्ता अपनाया जाय, इस पर विचार करें। उदाहरण के लिए क्या सारे हिन्दुस्तान में आम चुनाव की जरूरत होगी? पंजाब, बंगाल और आसाम का बँटवारा हम लोग किस तरह करेंगे? शायद फैसला वायसराय करेंगे और उस पर बहस नहीं होगी। जो इकट्ठा होकर विधान बनाना चाहते हैं उसकी मशीनरी क्या होगी, आदि आदि, (ग) एक मोटा-मोटा टाइम-टेबुल तैयार कर लीजिये। मैं यह स्पष्ट कर दूं कि इस समय साफ-साफ कुछ नहीं चाहिए। सिर्फ वायसराय को यह जताना है कि अगर इस योजना को मान लिया जाय तो इसे कैसे अमल में लाया जायगा और उसमें कितना समय लगेगा। —आपका।—इस्मे।'

कुछ दिनों के बाद वायसराय के साथ बातचीत के लिए बुलाये गये गवर्नरों की कांफ्रेंस में मेनन का मसविदा पेश हुआ। जैसे ही उन लोगों ने पढ़ा, वैसे ही महसूस किया कि उनके दिन गिनती के हैं। उनमें से एक ने कहा— कम्बख्त ने कर ही

---

१ इटैलिक स्थल लेखक के हैं।

डाला। यह है क्या—कोई स्वामी या और कुछ ?' पंजाब के गवर्नर सर इवान जेन्किन्स ने भी जो बँटवारे का सख्त विरोधी था, मसविदे पर कोई एतराज नहीं किया। सिर्फ बंगाल के गवर्नर सर फ्रेडरिक बरोज ने, जो बीमारी के कारण अनुपस्थित था, विरोध किया और इशारा किया कि हिन्दुस्तान और पाकिस्तान दोनों से अलग स्वतन्त्र बंगाल के आन्दोलन के प्रति उसकी सहानुभूति है (और यह तो निश्चय ही था कि इसका नेता था वह खुशमिजाज राजनीतिक प्रधान मि० शहीद सुहरावर्दी)[1]। बाकी गवर्नरों ने वायसराय को हरी झंडी दिखा दी। उनमें से अधिकांश को हिन्दुस्तान के भविष्य की चिन्ता नहीं थी—उन्हें चिंता थी आजादी के बाद अंग्रेजों के भविष्य की। उनको को ऐसा विश्वास था कि साहबों का कत्लेआम होगा ही।

उस बड़े हाल में गवर्नरों और उनकी पत्नियों के साथ वायसराय ने खाना खाया। हालाँकि खाना एकरात नहीं था। (लेडी माउण्टबेटन ने 'भूखे हिन्दुस्तान की सहानुभूति में कमखर्ची का दौर शुरू कर दिया था) लेकिन यादगार बड़ी ही अमीराना और दिल हिलानेवाली थी क्योंकि सभी को एहसास था कि फिर कभी यह नहीं होगा। दीवारों से पुराने वायसरायों की तस्वीरें इस आखिरी भोज को देख रही थीं। और इन तस्वीरों को बीच-बीच में देखनेवाले कम-से-कम एक गवर्नर ने सोचा ही था कि लॉर्ड कर्जन इसके बारे में क्या सोचता!

फिर भी यह वायसराय के लिए छोटी-मोटी विजय नहीं थी। कारण चाहे जो रहा हो—वायसराय की मोहनी, उसकी चाल, ऊँची नाक और दूकानदारी का *बेरहमी से प्रयोग—लेकिन एक छः महीने के भीतर स्थिति बदल गई थी—आशाहीन गतिरोध से आशापूर्ण समझौते में।*

व्यक्तिगत कारणों से भी वायसराय का सन्तोष ठीक ही था। जहाँ तक दुनिया का सवाल है, हिन्दुस्तानियों के हाथ में सत्ता सौंपने की तारीख 1 जून 1948 ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री मि० एटली ने मुकर्रर की थी ताकि हिन्दुस्तानी नेताओं को झटका लगे और वास्तविकता का कुछ एहसास हो। अगर सरकारी प्रवक्ताओं की चले तो इतिहास में भी यही दर्ज होगा। सच्ची बात तो यह है कि मि० एटली ने यह तारीख मुकर्रर नहीं की थी मुकर्रर की थी लार्ड माउण्टबेटन ने और वह भी हिन्दुस्तान सम्बन्धी नीति के कारण नहीं बल्कि व्यक्तिगत योजना के अनुसार। जब ब्रिटेन के लेबर पार्टी के प्रधान मन्त्री ने उसे आखिरी वायसराय बनने के लिए पूछा तो उसने इन्कार कर दिया। कारण सही था, वह नौसेना में जाकर अपना काम सँभालना चाहता था।[2] *एटली ने उसे समझाया। उसने बताया कि वह हिन्दुस्तानियों को अपना*

---

1 *सर फ्रेडरिक ने मजाक में कहा—रेल विभाग चलाने के लिए मैं रह जाऊँगा। हिन्दुस्तानियों को यह याद दिलाना उसे अच्छा लगता था कि वह रेल विभाग का पुराना कर्मचारी था। उसने कहा था—यहाँ जो लोग आते हैं वे शिकार और गोली चलाने—हंटिंग और शूटिंग के माहिर होते हैं। मैं रेल के डब्बे इधर उधर करने और सीटी बजाने—शंटिंग और हूटिंग—का माहिर हूँ।)*

2 नाम और ऊँचे वंश के कारण माउण्टबेटन के पिता प्रिंस लुई बैटनबर्ग को पहली लड़ाई में नौसेना के सर्वोच्च पद से इस्तीफा देना पड़ा था। अपने पिता की प्रतिष्ठा के लिए उनका लड़का इस पद को पाने के लिए कटिबद्ध था। उसकी यह आकांक्षा पूरी हुई और वह इससे भी आगे बढ़ा।

पर सँभालने के लिए एक अवधि देना चाहता था और उसका विचार था कि ज्यादा-से-ज्यादा दो साल तक वर्तमान स्थिति बर्दाश्त की जा सकती है।

माउण्टबेटन ने जवाब दिया कि दो साल का अरसा तो नौसेना से अलग रहने के लिए बहुत ही लम्बा अरसा होगा। प्रधान मन्त्री ने पूछा कि अगर नौसेना में उसका ओहदा, तरक्की का क्रम और अवसर सुरक्षित हो तो कितना समय वह दे सकता है? माउण्टबेटन ने इस पर सोचने-विचारने के लिए समय माँगा, इसके बारे में दोस्तों से बात की और राजा से भी।

दूसरे दिन वह मि० एटली से मिला। उसने पूछा कि क्या यह काम बारह महीने में पूरा हो सकेगा? यही समय वह दे सकता था, ब्रिटिश राज्य के खतम करने के लिए भी। प्रधान मन्त्री ने जवाब दिया कि सोचने-विचारने के बाद शायद अठारह महीने में यह काम पूरा हो सकता है, पर इसके बारे में समझौता कठिन नहीं।

समझौते के फलस्वरूप 1 जून, 1948 मुकर्रर हुआ—यानी वायसराय पद पर बैठने के पन्द्रह महीने बाद। मि० एटली ने माउण्टबेटन को विश्वास दिलाया कि इस तारीख के बीस दिन के भीतर ही वह नौसेना में वापस चला जायगा।

जब हाउस ऑफ कॉमन्स में 1 जून, 1948 का जिक्र हुआ तो चर्चिल चीख उठा—इतनी जल्दी, इतनी जल्दी। लेकिन माउण्टबेटन के आने के एक महीने बाद जो हालत थी, उससे तो लगता था कि और भी जल्दी समय आ जायगा।

उसके तरीके ऐसे थे कि उसकी योजनाओं का विरोध पिघलता जा रहा था। •

अध्याय 5

शिमला में नया सौदा

शायद यह गौर करने की बात है कि अप्रैल 1947 के अन्तिम और मई के पहले सप्ताह में माउण्टबेटन दिन में दो घण्टे अपने कुर्सीनामे पर काम करता था। दूसरी तरफ पंडित नेहरू की लड़की इन्दिरा ने बताया कि नेहरू सोने में फिर बड़बड़ाने लगा है। जहाँ तक माउण्टबेटन का सवाल है, पीढ़ी-दर-पीढ़ी ऊपर की ओर कुर्सीनामा तैयार करने का मतलब था कि सब कुछ ठीक चल रहा है। जहाँ तक नेहरू का सवाल है, नींद में बड़बड़ाने का मतलब है कि सब-कुछ गड़बड़ है।

जब उसे विश्वास हो गया कि हिन्दुस्तानी के सामने सही किस्म की भभकी दी जाय तो वे कागज के शेर साबित होते हैं, तो वायसराय ने अपने अंग्रेज कर्मचारियों को बुलाकर आज़ादी की योजना का मसविदा जल्दी-से-जल्दी तैयार करने के लिए कहा। खयाल यह था कि कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बहुत अधिक सोच विचार के पहले ही, देश में किसी तरह के विरोध के पहले ही समझौता हो जाय।

यह उम्मीद की जा सकती थी कि हिन्दुस्तान को प्यार करनेवाले लॉर्ड इस्मे और जॉर्ज एबेल समझौते की इस जल्दबाजी का विरोध करते। इस्मे इसलिए माउण्टबेटन के साथ भारत आया था कि वह जानता था कि काम बड़ा मुश्किल और जिम्मेवारी का है तथा माउण्टबेटन इसमें जल्दबाजी कर सकता है। जब अपने फैसले के बारे में इस्मे ने चर्चिल को बताया था तो कहा था—'जाकर बेवकूफी ही करोगे। तुम्हें कुछ मिलेगा नहीं।' वह कुछ ओहदा या पदवी के लिए हिन्दुस्तान जा रहा है, इस विचार ने ही उसे आग-बबूला कर दिया। अपने पुराने अफसर को चौंककर उसने कहा—'मैं जा तो रहा ही हूँ। आप जहन्नुम में जाइए।' उसका विचार था कि वह हमेशा माउण्टबेटन को सोच-विचार कर चलने की सलाह देता रहेगा, कन्धे पर दोस्त के हाथ की तरह दो पल रोक सकेगा, तेज चलनेवाली गाड़ी के मन्द्दे ब्रेक-सा काम कर सकेगा।

लेकिन हिन्दुस्तान में एक महीने के बाद वह सब बदल गया। रुककर सोच-विचार करने की बात तो दूर, वही माउण्टबेटन को जल्दी करने के लिए कह रहा था। पीछे चलकर उसने हेक्टर बोलिथो से कहा—'मैंने जो साम्प्रदायिक भावना देखी, उस पर विश्वास ही नहीं होता था। हमेशा वह मापके टुकड़े किए डालता था। हर जगह खून-खराबी। हम अंग्रेजों के सर पर सारी जिम्मेदारी तो थी, लेकिन हाथों में कोई ताकत नहीं। पुलिस की हालत गिरी हुई थी और सरकारी नौकर निराश तथा उत्सुक

थे। जो भी गलती होती थी उसके लिए जिन्ना और नेहरू, दोनों उनको दोष देते थे। यह एक कारण था कि बँटवारे में देरी करने पर मुसीबतें बढ़ जाती। दूसरा कारण भी था। वायसराय के एक्जीक्यूटिव काउन्सिल में छ-आठ अक्लमन्द आदमी निकल गए थे। उसके बदले में एक मन्त्रिमण्डल था जिसमें नौ कांग्रेसी और पाँच मुस्लिम लीगी थे। वह सिर्फ एक बात पर सहमत हो सकते थे—'अंग्रेजो, भारत छोड़ो।'[1]

जॉर्ज एबेल के लिए भी गृहयुद्ध से जख्मी हिन्दुस्तान एक वाक्या बन गया था। पंजाब और उत्तर-पश्चिम सीमान्त प्रदेश की खबरें बड़ी खराब थीं। पंजाब की खबर थी कि खानगी सेनाएँ तैयार हो रही हैं। उत्तर-पश्चिम सीमान्त प्रदेश की खबर थी कि लड़खड़ाती कांग्रेसी सरकार के खिलाफ मुस्लिम लीग का आन्दोलन जोर पकड़ता जा रहा है। लगता था कि जून, 1948 बहुत दूर है और तब तक सारा हिन्दुस्तान ही भँवर में पड़ जाएगा।

कम-से-कम वायसराय के दोनों प्रधान सलाहकारों का ऐसा ही विश्वास था। उनकी इस घबराहट ने ही उन्हें माउण्टबेटन की नीति का आसान शिकार बना दिया—जल्दी से इसे खतम कर निकल चलो। उनमें कड़वाहट भर गया था और उनकी आँखें खुल गई थीं। दोनों में से किसी के लिए यह वह हिन्दुस्तान नहीं था जहाँ वह रह चुके थे और जिसे वे प्यार करते थे। उनका दिमाग उस बाप की तरह काम कर रहा था जिसकी लड़की गलत आदमी के साथ भाग गई हो। इसमें की हालत थी—मैंने उसके लिए इतना किया। एबेल कहता था—वकील बुलाओ। मैं अपना वसीयतनामा बदल दूँगा।

ये लोग हिन्दुस्तान को आजादी नहीं दे रहे थे। ये लोग तो हिन्दुस्तान से पिंड छुड़ा रहे थे। और एक बार जब उन्हें यह विश्वास हो गया कि अब उनकी आँखें खुली हैं तो फिर ठंडे दिमाग से सोचने विचारने का सवाल ही नहीं था। वे माउण्टबेटन से सहमत थे कि जब हम लोग लंदन में थे तो राजनीतिक हल की जितनी जरूरत मालूम होती थी, दरअसल उससे कहीं ज्यादा है और जून, 1948 की सीमा-रेखा बहुत जल्द के बदले बहुत दूर दिखाई पड़ रही है।'[2] वायसराय और उसके सभी अंग्रेज कर्मचारी बड़ी मुस्तैदी से हिन्दुस्तान की आजादी की योजना तैयार करने में जुट गए। इस्मे को इसे लेकर लंदन जाना था। इस योजना को तैयार करने में सिर्फ अंग्रेजों को ही बुलाया गया था और वी० पी० मेनन भी इससे अलग ही रखा गया। रात दिन इस पर काम होता रहा और सारी बात बिलकुल पोशीदा थी। उम्मीद थी कि इस योजना से सभी समस्याएँ सुलझ जाएँगी।

इस समय तक वायसराय और उसके सहकारी अफसर वी० पी० मेनन से सलाह लिया करते थे। इसके बाद कैम्बेल जॉनसन के शब्दों में, 'उसे ग्रहण लग गया।' कारण बताना मुश्किल था। एक कारण साफ तौर पर यह हो सकता था कि वह हिंदू था और योजना के साथ उसका इतना सीधा सम्बन्ध मुसलमानों में शक पैदा कर

1 हेक्टर बोलियो, जिन्ना—ए बायोग्राफी।
2 एलेन कैम्बेल-जॉनसन [illegible]

सकता था। हालांकि इसके बाद जो हुआ उससे इस दलील मे कोई दम नही रह जाता। दूसरा कारण, जो ज्यादा ठीक लगता है, यह रहा होगा कि वायसराय के सहकारी उसे पसन्द नही करते थे, क्योंकि वह झुकनेवाला नही था और अपनी बातो पर निश्चित और दृढ। रिफार्म्स कमिश्नर और वैधानिक सलाहकार के पद पर जब अंग्रेज होता था तो यह पद बहुत ही महत्त्वपूर्ण माना जाता था। मेनन के आने के बाद इस पद का उतना महत्त्व नहीं रह गया था। उदाहरण के लिए मेनन यह जानता था कि विभाजित हिन्दुस्तान को किस तरह उपनिवेश के रूप म ही रखा जाय—यह वायसराय और उसके सहकारियो के लिए एक समस्या थी। काग्रेस ने यह हमेशा स्पष्ट कर दिया था कि आजादी का अर्थ था पूरी आजादी, कॉमनवेल्थ से भी कोई सम्बन्ध नही। हिन्दुस्तान की जनता के लिए कॉमनवल्थ के भीतर उपनिवेश का अर्थ था पराधीनता। हालाकि हालत कितनी बदल गई थी। और ब्रिटिश राजमुकुट की अधीनता हिन्दुस्तानियो के लिए असह्य थी।

दूसरी तरफ न सिर्फ पाकिस्तान कॉमनवेल्थ म रहना चाहता था, जिन्ना इस बात पर अडा हुआ था। लेकिन जब हिन्दुस्तान का बँटवारा होगा तो क्या होगा? वायसराय का विचार था कि जब दोनो में से एक राजी न हो तो दूसरे को उपनिवेश का दर्जा कैसे दिया जा सकता है! फिर तो सारी बात गलत तरीके से शुरू हो जाएगी और दोनो देशो के बीच शक पैदा हो जाएगा।

इसका जवाब था कि हिन्दू उपनिवेश म नही आना चाहते इसीलिए पाकिस्तान को नही निकाला जा सकता है। जरा यह भी तो सोचिए कि इस तरह खुल्लमखुल्ला जिन्ना की बेइज्जती करने से मध्यपूर्व के मुसलमानो पर क्या असर पडेगा।

मेवील ने बताया कि वी० पी० मेनन ने चलते-चलाते जिक्र किया था कि उसने सरदार पटेल से इस विषय पर बात की थी। काग्रेस उपनिवेशवाले मामले म उतना गरम नही है और इस पर विचार कर सकती है।

यह खबर इतने सादे ढग म दी गई कि किसी ने इस पर ध्यान ही नही दिया। मेनन ने क्या कहा, इसकी किसे परवाह थी। इस महान योजना की तैयारी म वे लोग लगे रहे, उपनिवेश के मामले से किसी तरह किनाराकशी की कोशिश करते रहे क्योंकि उन लोगो का तब भी विश्वास था कि काग्रेस ब्रिटिश ताज और कॉमनवेल्थ से कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहती। उन लोगों ने यह महसूस नही किया कि वे वायसराय के लिए गड्ढा खोद रहे थे। उनके दिमाग म यह भी नही आया कि मेनन को बुला कर पूछें कि जब उसने योजना के मसविदे पर हाड-मास चढ़ाते समय यह कहा था कि योजना ठोस नही थी और काम नही आ सकेगी तो उसका क्या मतलब था।

वी० पी० मेनन ने अपने कमरे से ही अपने अंग्रेज साथियों की सहायता करनी चाही, वेकफील्ड से उन्हें बचाना चाहा और अपनी जगह फिर से बनानी चाही। उसने समझाते हुए जॉर्ज एबल से कहा—

प्रिय एबल'—मैं आपको लिखना चाह रहा था कि रिफार्म्स कमिश्नर के कैसे कठिन पद पर मुझे बिठाया गया है। मैं यह सवाल ही नहीं उठाता, लेकिन इसके लिए

बहुत ही महत्त्वपूर्ण कारण है जिसकी अभी तुरन्त सख्त जरूरत है। चूंकि जून, 1948 तक सत्ता हस्तान्तरित करनी है इसलिए यह जरूरी है कि इसकी योजना तैयार करने के लिए एक सगठन होना चाहिए, जो काम का सिलसिला तय करे और उसे लागू करे। अब तक तो मैंने यही माना है कि वायसराय के निर्देश से रिफार्म्स आफिस उस सगठन का काम करेगा। अगर रिफार्म्स को यह काम करना है तो यह जरूरी है कि सभी ताजा खबरें मुझे मिलती रहें। जब तक कि सभी सवाल अपने सही रूप मे मेरे सामने न आएँ, उनका आपस का सम्बन्ध मेरे सामने साफ-साफ न रखा जाए, उनकी पृष्ठभूमि की मुझे पूरी जानकारी न हो तो मैं वायसराय को पूरी जानकारी से सलाह नहीं दे सकता'''यह निश्चित है कि हम अपना सामान्य दृष्टिकोण पहले निर्धारित करना होगा और उसके बाद उसका ब्योरा तैयार किया जा सकेगा। समय बहुत कम है और बहुत सारे मसले सुलझाने हैं। विभाग अगर एक-दूसरे से बिलकुल अलग काम करते रह तो उनका आपसी सामजस्य खो देने का बडा खतरा है।'' मेरी सलाह है है कि ऐसा कायदा होना चाहिए कि जो कुछ हो उसकी खुद-ब-खुद मुझे खबर मिलती रहे।'

न्याय की बात यह है कि वायसराय भवन मे जो कुछ हो रहा था उसके बारे मे मेनन बिलकुल दिलचस्पी न ले, यह बात नही थी। वह बडा ही वफादार सरकारी नौकर और अग्रेजो के गुणो का कायल था। लेकिन स्वाभाविक था कि वह हिन्दुस्तान की आजादी में भी उतने ही जोश खरोश के साथ विश्वास करता था। इसके साथ ही काग्रेस सस्था के लौह पुरुष सरदार पटेल का वह अच्छा दोस्त और भक्त भी था। वह पहला ही सरकारी नौकर नही था जिसके बडे ही दृढ विचार थे और एक पक्ष का ज्यादा कायल था। लेकिन यह भी ठीक है कि हिन्दुस्तान की सरकार की नौकरी के दौरान मे उसने कभी किसी तरह का पक्षपात नही दिखाया। अचरज की बात तो यह है कि ऐसे कठिन समय मे वायसराय के सहकारियो ने उससे सलाह नही ली। काग्रेस से जिसका सीधा सम्पर्क था और उन्हे तुरन्त बता सकता था कि वे गलती पर हैं। माउण्टबेटन के लोगो म कुछ के लिए हिन्दुस्तानी हिन्दुस्तानी ही था।

2 मई 1947 को लार्ड इस्मे और मि० जॉर्ज एबेल वायसराय के इन कर्मचारियो की योजना लेकर लदन गए।

वी० पी० मेनन ने अपनी किताब 'द ट्रासफर आफ पावर इन इडिया' के एक अध्याय 'लार्ड माउण्टबेटन्स ड्राफ्ट प्लान' मे लिखा है कि वायसराय ने इस अस्थायी योजना को 'गवर्नरो और पार्टी के नेताओ से हुई बातचीत के आधार पर दुहराया और इस दुहराई योजना को लार्ड इस्मे तथा जॉर्ज एबेल के साथ 2 मई, 1947 को लदन भेजा। ' पार्टी के नेताओ तथा अन्य लोगो की बहुत तरह की बातें सामने आई और वायसराय को उन्हे सुलझाना पडा, अपने विचारो को नया रूप देना पडा, लेकिन कही भी वायसराय की निष्पक्षता या बर्तानिया सरकार की नेकनीयती पर शक नहीं जाहिर किया गया।

मेनन ने और लिखा है—'लार्ड इस्मे और जॉर्ज एबेल जो योजना लेकर लदन

गए थे, मैं शुरू से उसका विरोधी था। यह सिद्धान्त कि सभी प्रदेश विरासत के रूप में पहले तो स्वतन्त्र राज्य हों, मेरे लिए दहलानेवाला था। लेकिन मेरा विरोध और मेरे विचार वायसराय के सलाहकारों के साथ बातचीत में असफल साबित हुए।'

माउण्टबेटन की योजना का मसविदा दरअसल केबिनेट मिशन योजना का ही एक रूप था। इसमें पार्टी के नेताओं की सहमति के बिना ही एकतरफा तौर पर प्रदेशों को सत्ता हस्तान्तरित कर देनी चाहिए और केन्द्र में मजबूत केन्द्रीय सरकार के बदले एक फेडरेशन होनी चाहिए।

वायसराय के दोनों सहकारियों को यह काम सौंपा गया था कि लंदन में मन्त्रि-मंडल के सामने इस योजना का एक-एक हिस्सा पेश किया जाए और मन्त्रिमंडल की स्वीकृति ली जाए। उन्हें माउण्टबेटन ने विश्वास दिलाया था कि यही वह योजना थी जिसे दोनों पार्टी मान लेंगी। सिर्फ मि० एटली और उनके साथियों की सम्मति चाहिए। उसके बाद आजादी की मशीनरी अपना काम शुरू कर देगी।

यह ठीक है कि इसमें के जाने के बाद वायसराय को यह अंदेशा हुआ कि कहीं योजना मुसीबत में न पड़ जाए। और वह भी कांग्रेस की तरफ से नहीं बल्कि मुसलमानों, खासकर जिन्ना की तरफ से। उसने इसमें को एक जरूरी तार भेजा—

'इधर हाल में मेरी और ववेल की जो बातचीत जिन्ना से हुई है उससे ऐसा लगता है कि जिन्ना छंटे हुए पाकिस्तान का विरोध नहीं करेगा। दरअसल मुझे तो यही लगता है कि वह इस योजना को नहीं ठुकराएगा। इंगलैण्ड जाने के पहले उसने तुम्हारी भी यही धारणा पुष्ट की थी। जिन्ना और लियाकत के साथ बातचीत में मैंने बड़े ध्यान से गौर किया है कि वे लोग इस योजना को ठुकराने का कोई इशारा देते हैं या नहीं। मुझे तो ऐसा इशारा नहीं मिला। दरअसल हमने जो भी कसौटी रखी उस पर वह ठीक ही उतरा और उसने मुझे विश्वास करने का बढ़ावा दिया कि वह योजना मान लेगा। अगर जिन्ना एकाएक मुझको हैरत में डालना चाहता है और आखिरी वक्त योजना को ठुकराना चाहता है तो उसने अभिनय बहुत अच्छा किया है। मेरा यह विचार है कि 30 अप्रैल को जिन्ना ने प्रदेशों के बँटवारे के खिलाफ जो वक्तव्य दिया था वह हिन्दू और सिखों का जवाब था। लेकिन हो सकता है कि इस विचार पर भरोसा करना अक्लमन्दी न साबित हो। जान-बूझकर मैंने उससे सीधा सवाल नहीं पूछा है कि छंटा हुआ पाकिस्तान वह कबूल करेगा या नहीं। इस उम्मीद में कि मैं आगे बढ़कर बर्तानिया सरकार से पूरे पाकिस्तान की सिफारिश करूँ मेरा खयाल है कि वह जरूर न कह देगा। इसलिए इस खतरे से हमें आगाह रहना चाहिए। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि जिन्ना बड़ा ही चालाक गोटेबाज है और इस तरह वह मुझे बहका सकेगा इसकी सम्भावना का भी ध्यान रखना चाहिए।'[1]

यह याद रहे कि इस समय तक कांग्रेस मुस्लिम लीग या सिख किसी ने भी इस योजना को देखा नहीं था। इस योजना के बारे में उन्हें ढांचा बता दिया गया

[1] भारत सरकार के कागजात से।

था। वायसराय को कांग्रेस से कोई डर नहीं था लेकिन जिन्ना की चालबाजी का डर उसे सता रहा था। इसके को तार भेजने के कुछ घण्टे बाद वायसराय ने अपने कर्मचारियों को एक मेमोरेण्डम तैयार करने के लिए कहा जिसका उपयोग तब किया जा सके जब कि आखिरी वक्त में जिन्ना धोखा दे जाय। जो मेमोरेण्डम तैयार किया गया वह इस प्रकार है —

१. अगर वायसराय के प्रस्तावित ज्ञापनों को जिन्ना नही माने तो सत्ता हस्तान्तरित करने के लिए दो रास्ते हैं —

(क) वर्तमान केन्द्रीय सरकार के हाथों मे सत्ता सौंप दी जाय और उसका आधार उपनिवेश का हो।

नोट—कजरवेटिव पार्टी इसका विरोध करेगी और दोष लगायेगी कि इस तरह जिन्ना हिन्दुओं की दया पर रह जायगा। हिन्दुस्तान के बाहर के मुसलमान देशों का भी ध्यान खिंचेगा, खासकर अगर मुस्लिम लीग इसके बाद प्रचार शुरू कर दे।

(ख) एक शर्त के साथ वर्त्तमान केन्द्रीय सरकार को सत्ता हस्तान्तरित कर दी जाय। प्रदेशों के आधार पर पाकिस्तान की माँग नही चल सकती। इसके बदले हम छाँटे हुए पाकिस्तान तक पहुँच गए थे। जिन्ना ने इसे ठुकरा दिया है। इसलिए इंगलैण्ड के कजरवेटिव और बाहर के लोगो का जवाब देने के लिए मैं 1935 के गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया ऐक्ट या इंगलैण्ड और हिन्दुस्तान के बीच होनेवाली सन्धि म एक शर्त रखूँगा कि अगर तीन साल के भीतर मुस्लिम लीग छाँटे हुए पाकिस्तान के लिए तैयार हो तो घोषणा मे दिए गए नियम के अनुसार गवर्नर-जनरल वह कानून पास कर सके जिससे मुसलमानों के बहुमतवाले क्षेत्र अपनी अलग सरकार बना सकें। जब तक वह नहीं होता, वह वर्त्तमान केन्द्रीय सरकार को ही सत्ता सौंप दी जायगी और वह हिन्दुस्तान, जिसमे पाकिस्तान भी शामिल है, का अनुशासन करेगी।[1]

लेकिन जैसे जैसे दिन बीतते गए, वायसराय का विश्वास दृढ होता गया कि जिन्ना के जवाब के लिए इस दूसरी योजना की जरूरत ही नही पडेगी और सभी-कुछ ठीक होगा। गाधी भी अब इतना शक्तिशाली नही रह गया था कि घटनाओं के क्रम को मोडता या बदल देता। दरअसल जब गाधी को बँटवारे के बारे मे कांग्रेसी विचार-धारा का पता चला तो वह तुरन्त बंगाल से लौटकर आया। लेकिन तब तक बहुत देर हो चुकी थी। पटेल, जो साधारणत गाधी का कहना मान लेता था, फैसला कर चुका था और कांग्रेस को अपने साथ ले चलने की शक्ति उसमे थी। नेहरू को बँटवारे के अलावा और कोई रास्ता ही नहीं सूझता था। हालांकि गाधी के साथ एक बातचीत म नेहरू ने कबूल किया था कि यह बडा 'दर्दनाक और बुरा' था। वायसराय के साथ एक बातचीत मे महात्मा ने सिफारिश की थी कि किसी भी हालत मे अविभाजित हिन्दुस्तान के लिए उसे कोशिश करनी चाहिए और केबिनेट मिशन-योजना को एक बार फिर दुहराना चाहिए। माउण्टबेटन ने साफ कह दिया कि बात उसके हाथ से

1. भारत सरकार के कागजात से।

बाहर जा चुकी है। एकमात्र उम्मीद यही है कि जिन्ना और मुस्लिम लीग को राजी किया जाय। उसने गांधी से बातचीत का समय ऐसा रखा कि जिन्ना भी उस समय मौजूद हो। दो पुराने कांग्रेसी बहुत वर्षों के बाद फिर मिले, एक-दूसरे का स्वागत किया। वायसराय की कोशिश के बाद दोनों फिर मिलने के लिए राजी हुए। नई दिल्ली के औरंगजेब रोड वाले जिन्ना के मकान में 6 मई, 1947 को मुलाकात हुई। कमरे में हिन्दुस्तान का बहुत बड़ा रुपहला नक्शा था जिस पर हरे रंग से पाकिस्तान दिखाया गया था। दोनों बूढ़े तीन घण्टे तक बातचीत करते रहे (सभी हिन्दुस्तानी नेता तीन घण्टे तक बातचीत करते दिखाई पड़ते थे)। फिर एक परिपत्र जारी किया गया। उसका आशय था—

'हम लोगों ने दो बातों पर बातचीत की। पहली तो थी देश के बँटवारे की बात पाकिस्तान और हिन्दुस्तान में। मि० गांधी बँटवारे के सिद्धान्त को नहीं मानते हैं। वह सोचते हैं कि बँटवारा अनिवार्य नहीं है। मेरे विचार में न सिर्फ बँटवारा अनिवार्य है बल्कि हिन्दुस्तान की राजनीतिक समस्या का एकमात्र व्यावहारिक हल भी।

दूसरी बात थी वह चिट्ठी जिस पर हम दोनों ने दस्तखत किए हैं जिसमें जनता से शान्ति बनाए रखने की अपील है। हम दोनों इसी निर्णय पर पहुँचे हैं कि हमें अपने-अपने क्षेत्र में इस अपील को लागू करने की सरतोड़ कोशिश करनी चाहिए और हम-लोग यह करेंगे।'

दूसरे शब्दों में, इस बातचीत का गांधी के लिए कोई फल नहीं हुआ। कोई अचरज नहीं कि वायसराय को अपनी योजना की असफलता का कोई खतरा नहीं रह गया। लंदन में मन्त्रिमण्डल के फैसले का इन्तजार था और वायसराय को कोई शक नहीं था कि एटली का समर्थन उसे मिलेगा।

वायसराय ने फैसला किया कि दिल्ली की सख्त गर्मी से निकलकर पहाड़ों पर जाने का समय आ गया है। उसने कैम्बेल-जॉनसन को आदेश दिया कि घोषणा कर दे—वायसराय कुछ दिनों के विश्राम के लिए शिमला जा रहे हैं। यह सिर्फ विश्राम नहीं था। वायसराय की योजना थी कि दूसरा कदम पहाड़ों पर निश्चित किया जाय। वायसराय का काफिला चला। 350 नौकर-चाकर साथ गए। दो दिन तक माउण्टबेटन और लेडी माउण्टबेटन शिमला की ताजा, ठण्डी हवा और सर्द रातों का आनन्द उठाते रहे। हिन्दुस्तान और तिब्बत के बीच नीले क्षितिज पर दीवार-से फैले हिमालय से बहती हुई ठण्डी हवा थपकियाँ दे रही थी।

लेकिन वायसराय के साथ जो लोग गए थे उनमें वी० पी० मेनन भी एक था। सर एरिक मेवील तो था ही। माउण्टबेटन के हिन्दुस्तान आने के बाद यह पहला ही मौका मिला था। इसके पहले हर मौके पर उसकी मुलाकात बड़े रस्मी तौर पर होती, इस्मे इसका इन्तजाम करता, एबेल समय देता, मवील निगरानी रखता और बँधी सधी लीक से बातचीत अलग हो ही नहीं सकती।

शिमला की ताजगी भरनेवाली हवा में, जब वे पहरेदार योजना के साथ लन्दन थे, मेनन को अपने विचार और सिद्धान्त सामने रखने का मौका मिला। जब माउण्टबेटन

बेटन न हिन्दुस्तान की भावी स्थिति (कॉमनवेल्थ का सदस्य बनकर या अलग रहकर) के सवाल को छेड़ा तो मेनन ने अपनी भरी हुई भौंह उठाकर पूछा—'आपको किसी ने बताया नहीं ? मैंने तो इस समस्या को सुलझाने के लिए एक योजना बना रखी है। आपको इसका पता होगा ही। मैंने लॉर्ड वेवेल को इसके बारे मे बताया था। मैंने इण्डिया ऑफिस को भी इसकी खबर की थी। मैंने सर एरिक को भी बताया था।'

माउण्टबेटन ने कबूल किया कि वेवील ने कुछ कहा तो था, पर क्या, यह ठीक-ठीक याद नहीं।

फिर मेनन ने अपनी बात कही।

दिसम्बर, 1946 के आखिरी हिस्से मे उसने वायसराय से कहा था कि केबिनेट मिशन योजना के बारे मे सरदार पटेल से उसकी लम्बी बातचीत हुई थी। और लोग चाहे जो समझते हो, मेनन का विचार था कि केबिनेट मिशन की योजना कभी सफल नहीं हो सकती। तीन सीढियों का जो वैधानिक ढांचा था वह मेनन को फैला हुआ और अव्यावहारिक मालूम होता था। और स्वतन्त्र हिन्दुस्तान की जो योजना उसके दिमाग म थी वह तो यह थी ही नही। इसके अलावा जिन्ना के पुराने सम्पर्क और जिस तरह उसका दिमाग काम करता था, उसके आधार पर मेनन का विचार था कि अलग पाकिस्तान की अपनी माँग वह कभी नही छोडेगा।

मेनन ने वायसराय से कहा—'मैंने पटेल से कहा था कि उन्हें यह समझ लेना चाहिए कि पाकिस्तान की माँग को बहुत-से शक्तिशाली अग्रेजो का समर्थन प्राप्त है और इससे भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण बात यह है कि हिन्दुस्तान के बडे फौजी अफसरों का समर्थन है। मेरा व्यक्तिगत विचार तो यह है कि धीरे धीरे गृहयुद्ध की तरफ बढने क बदले बँटवारा मान लेना कही अच्छा है। अगर हम लोग बँटवारे के लिए राजी हो जाएँ तो जिन्ना बगाल, पजाब और आसाम के वह इलाके माँग ही नही सकता जहाँ गैर मुसलमानो का बहुमत है। असल समस्या है कि किस आधार पर सत्ता हस्तातरित हो।'

मेनन कहता गया—'बँटे हुए हिन्दुस्तान मे यह दो केन्द्रीय सरकार के रूप मे ही सबसे अच्छा रहेगा। और आपको इसम दिलचस्पी होगी कि इसका आधार डोमिनियन स्टेट्स (औपनिवेशिक राज्य) ही हो सकता है। इसे मानकर काग्रेस के तीन बडे फायदे होंगे। पहली बात तो यह होगी कि शातिपूर्ण ढग से सत्ता हस्तान्तरित हो जाएगी। दूसरी बात यह कि इस फैसले का ब्रिटेन मे बडा अच्छा स्वागत होगा और इस एक काम से काग्रेस अग्रेजो को दोस्ती और सदिच्छा प्राप्त कर लेगी। तीसरी बात यह कि अगर हिन्दुस्तान कॉमनवेल्थ म रहा तो ऊँचे ओहदो पर काम करनेवाले अग्रेजों म हिन्दुस्तान की मदद के लिए साहस होगा, क्योकि उनम ज्यादातर अग्रेज ही थे। फिर फौज के सभी विभागो मे अग्रेज अफसर ही थे। इस बीच की अवधि के लिए वे लोग भी रह जाएँगे। फिर रजवाडे जो राजमुकुट से सम्बन्ध रखने के लिए इतने आतुर हैं वे भी फेडरेशन म शामिल हो जाएँगे।'

मेनन ने पटेल से पूछा—'और हमे नुकसान क्या होगा ?' हिन्दुस्तान जो भी विधान

बनाना चाहे औपनिवेशिकता का उस पर कोई असर नहीं पड़ता। अगर हम उपनिवेश बन जाते हैं सत्ता तुरंत हमारे हाथ आ सकती है। जब हम अपने पैरों पर खड़े हो जाएँगे तो जब जी चाहे कामनवेल्थ से बाहर निकल जायेंगे।

सरदार पटेल मेनन की योजना से तुरन्त प्रभावित हुआ। मेनन ने वायसराय से कहा—'सरदार पटेल ने मुझे आश्वासन दिया है कि अगर उपनिवेश के आधार पर तुरन्त सत्ता हस्तान्तरित हो तो वह अपने प्रभाव से कांग्रेस की स्वीकृति ले लेगा।'

पटेल के सामने ही मेनन ने अपनी योजना की रूपरेखा लिखवा ली और विशेष दूत से सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फार इंडिया के पास भेज दिया। निश्चय ही उसने यह नहीं लिखा कि सरदार पटेल ने यह योजना देख ली है और वे इससे सहमत हैं।

उसके बाद उसकी कोई चर्चा ही नहीं सुनी मेनन ने।

यह सब सुनकर माउण्टबेटन की हालत उस बच्चे-सी हो गई जो अपना खिलौना देखकर खुशी से नाच रहा हो और हठात् उसकी नजर दूसरे बच्चे पर पड़ जाय जिसके पास और भी बढ़िया खिलौना हो। अपनी योजना से उसका विश्वास तुरन्त हिलने लगा।

उसने मेनन से पूछा—'मेरी जो योजना इस्मे लेकर लंदन गया है उसके बारे में तुम्हारी क्या राय है ?'

रिफार्म्स कमिश्नर ने जवाब दिया—'काश कि आपने मुझसे पहले पूछा होता ! मुझे बिलकुल नापसंद है।'

8 मई को पंडित नेहरू अपने विश्वासपात्र और दोस्त कृष्ण मेनन के साथ वायसराय के अतिथि की हैसियत से शिमला आए। इस समय कृष्ण मेनन कांग्रेस के छुटभैया की कतार से निकलकर कर्ता धर्ता की जमात में शामिल होने की कोशिश कर रहा था। उसे भी यह गंध लग गई थी कि बातचीत के सिलसिले में उपनिवेश का सवाल बुरी तरह सामने आएगा। इसलिए वह नेहरू के साथ अपनी योजना का प्रचार कर रहा था जिसमें कॉमनवेल्थ के भीतर ही किसी तरह की खुदमुख्तार (सावरेन) सरकार की बात थी। जब माउण्टबेटन को यह खबर मिली तो उसने तुरन्त वी० पी० मेनन को बुलाया और कहा कि उपनिवेशवाले सवाल पर तुरन्त पंडित नेहरू से वह बात करे। लेकिन वायसराय ने हिदायत की कि किसी भी हालत में जो योजना लेकर इस्मे लंदन गया है उसकी चर्चा की जाए।

दूसरे दिन वी० पी० मेनन ने नेहरू से काफी देर तक बातचीत की। पहले तो यह बैठक बड़ी सर्द रही। नेहरू को पता चल गया था कि मेनन ने चार महीने पहले इस योजना पर सरदार पटेल से बातचीत की थी। उसके पीछे-पीछे सरदार पटेल अपनी योजना बना रहा था नेहरू के लिए यह निगलना जरा मुश्किल पड़ रहा था। लेकिन वह इतना प्रभावित हुआ कि दूसरे दिन 10 मई को वायसराय के सामने इस पर फिर विचार विमर्श के लिए राजी हो गया। दूसरे दिन वायसराय के हरे वाता-नुकूलित कमरे में बैठक हुई। वायसराय, पंडित नेहरू और वी० पी० मेनन के अलावा सर एरिक मेवील और ले० कर्नल अर्सकाइन क्रम भी मौजूद थे।

वायसराय ने रस्मी तौर पर बताया कि उसके हिन्दुस्तान आने के पहले से उपनिवेश के आधार पर वी० पी० मेनन जल्दी सत्ता हस्तान्तरित करने की योजना तैयार कर रहा था। उसने कहा कि उसे और पंडित नेहरू को योजना समझाने का मौका मेनन को दिया गया है।

इसके बाद मेनन ने माउण्टबेटन और नेहरू को जो कुछ कहा था उसका काफी हिस्सा दुहराया। इसका ढांचा यह था कि मुसलमानों के बहुमतवाले प्रदेशों को हिन्दुस्तान से अलग होने दिया जाय। फिर दो केन्द्रीय सरकारों के हाथों सत्ता सौंपी जाय। दोनों के अपने गवर्नर-जनरल हों। जब तक दोनों उपनिवेशों की विभिन्न विधानसभाओं द्वारा उनके विधान न तैयार हों तब तक उनका विधान 1935 के गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया ऐक्ट के उचित संशोधनों के साथ रहे। उसके बाद दोनों देश स्वतन्त्र।

नेहरू इतना प्रभावित कभी नहीं हुआ था। हालांकि उसने अपनी शंकाओं को भी कह दिया। उसने ज़रा मज़े से कहा—'आपको यह महसूस करना चाहिए कि हिन्दुस्तान में पूर्ण स्वतन्त्रता के पक्ष में बहुत बड़ा जनमत है। उपनिवेश का काम ही पिछली अनुभूतियों के कारण भड़का देगा। मैं जानता हूँ कि सिद्धान्त रूप से वह साबित किया जा सकता है कि उपनिवेश का अर्थ पूर्ण स्वतन्त्रता ही है। लेकिन जनता इन बारीकियों को नहीं समझती।'

वी० पी० मेनन ने टोका—'मेरी योजना में यह व्यवस्था रहेगी कि आर्डर आफ काउंसिल के आधार पर 'किंग एम्परर' की उपाधि से 'एम्परर' शब्द निकाल दिया जाए।'[1]

नेहरू ने जवाब दिया कि इस तरह की शब्दावली से बहुतों को परोक्ष पराधीनता की गन्ध मिलेगी। उसने फिर कहा—'भावनात्मक कारणों से मैं खुद ब्रिटिश कामन-वेल्थ से निकट का सम्बन्ध रखना पसन्द करता हूँ। लेकिन मैं अभी तक स्पष्ट नहीं कर सका हूँ कि इस सम्बन्ध का रूप क्या हो। मैं सोचता हूँ और उम्मीद करता हूँ कि यह सम्बन्ध कायम रहेगा। हाँ, भड़कानेवाली शब्दावली हटानी पड़ेगी।' नेहरू ने फिर जोड़ा—'लेकिन उपनिवेश में हिन्दुस्तान जब चाहे कामनवेल्थ छोड़ तो सकता ही है।'

माउण्टबेटन ने कहा—'मैं इससे सहमत हूँ। मैं भी सोचता हूँ कि इस बात पर जोर देना चाहिए और उपनिवेश की समाप्ति के लिए भी समय निश्चित कर देना चाहिए।'

यह सोचा जा सकता है कि इन वाद-विवादों के बाद दूसरा कदम होगा सत्ता हस्तान्तरित करने के लिए इस योजना की रस्मिया तौर पर मंजूरी। लेकिन यह कैसे हो सकता था। दूसरी योजना तो थी ही। मन्त्रिमण्डल की स्वीकृति के लिए इसे लेकर इस्मे लंदन गया था। यह वही योजना थी जिसपर हिन्दुस्तानी गतिरोध को

1 भारत सरकार के कागजात से।
2 वही।

सुलझाने और सत्ता सौंपने की सारी आशा वायसराय ने केन्द्रित की थी।

यह कल्पना की ही बात है कि ऐसी स्थिति में वायसराय के दिमाग में क्या चल रहा होगा। उसने वी० पी० मेनन की योजना को अर्ध-सरकारी रूप में रखवाया, पंडित नेहरू की बातचीत को वायसराय की वार्ता में लिखवाया। यह मुसीबत को दावत देना था और मुसीबत आई।

चालाकी, तेज बुद्धि, भयानक स्मरणशक्ति, संगठन की असीम क्षमता और अपनी विलक्षण मोहनी के अलावा लार्ड माउण्टबेटन में एक और बड़ा गुण था और वह यह कि किस्मत हमेशा, हमेशा मुस्कराती रहती थी।

और शिमला में भी किस्मत मुस्कराई।

बैठक खतम होने के बाद वायसराय ने अपने प्रेस-सलाहकार कैम्बेल-जॉनसन को बुलाया और सारी दुनिया के अखबारों में यह समाचार देने का आदेश दिया कि 17 मई, 1947 को नई दिल्ली में एक महत्त्वपूर्ण बैठक होगी। इस बैठक में वायसराय ने कांग्रेस के पटेल और नेहरू को बुलाया, लीग के जिन्ना और लियाकतअली को तथा सिखों के बलदेवसिंह को। घोषणा में कहा गया—'उस दिन वायसराय इन पांचों नेताओं के सामने हिन्दुस्तानियों के हाथों सत्ता सौंप देने की योजना पेश करेंगे जिसे बर्तानिया सरकार की स्वीकृति मिल चुकी है।'

निश्चय ही यह माउण्टबेटन के सहकारियोंवाली योजना थी। कुछ समय के लिए माउण्टबेटन ने वी० पी० मेनन वाली योजना दिमाग से निकाल दी थी। उसने अपने अंग्रेज सलाहकारों की मदद से जो योजना तैयार की थी उसी पर वह अपना भविष्य निर्भर समझता था। इस स्थिति में भी, मेनन से बात करने के बाद, नेहरू से बात करने के बाद भी अपनी योजना में उसका इतना विश्वास था कि 17 मई को पांचों हिन्दुस्तानी नेताओं के सामने जो कुछ वह कहेगा उसका सारांश उसने लंदन भेज दिया—'चूंकि दोनों पार्टियां केबिनेट मिशन योजना को मानने के लिए राजी नहीं होतीं, यह साफ है कि हिन्दुस्तान की जनता को प्रदेशों में चुने गए उनके प्रतिनिधियों द्वारा अपना भविष्य चुनने दिया जाए। जब मैं वायसराय की हैसियत से यहां आया सत्ता सौंपने के लिए, तो मैं सोचता था कि जून, 1948 जरा जल्दी होगा समझौते के लिए। लेकिन आप सभी ने अपनी अपनी बातचीत में जल्दी करने की जरूरत का विश्वास दिलाया है। इसके फलस्वरूप मैं और मेरे सहकारी रात दिन काम करते रहे हैं ताकि सही फैसला जल्दी मिल जाए। हमलोगों की यह योजना है जो मैं आपके सामने पढ़नेवाला हूं। हमारे पास जो समय था उसमें सबसे अच्छा यही हो सकता था। व्यक्तिगत बातचीत में आप लोगों ने जो कुछ कहा है, जहां तक सम्भव हो सका है, हमने उसे इसमें शामिल कर लिया है। लार्ड इस्मे यह योजना लेकर लंदन गए थे एक पखवारे पहले ताकि मंत्रिमंडल इसे अच्छी तरह जांच परख ले। बर्तानिया सरकार ने इसे प्राथमिकता दी है और इस तरह की महत्त्वपूर्ण बात पर इतनी जल्दी कभी फैसला नहीं हुआ। कुछ घण्टे पहले लार्ड इस्मे वापस आए हैं। 23 मई से पार्लियामेंट का अधिवेशन बन्द होना है इसलिए यह जरूरी है कि 22 मई के पहले यह घोषित

हो। मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि यह योजना किसी भी मसले पर सशोधन के लिए खुली है और खुली रहेगी।'[1]

17 मई को हिन्दुस्तानी नेताओ के सामने जो कुछ वायसराय को कहना था, यह उसका साराश ही है। मशा यह थी कि मत्रिमण्डल, इस्मे और एबेल को बातो की जानकारी रहे।

यह तार लदन भेज दिया गया। यह इस बात का सबूत है कि माउण्टबेटन को अपनी योजना पर कितना भरोसा था। 10 मई को लदन से यह योजना तार द्वारा वापस आई। मि० एटली और उनके मत्रिमण्डल की सलाह पर बहुत भारी तरमीमें की गई थी लेकिन योजना की मूल बातें ज्यो-की-त्यों थी। माउण्टबेटन ने इनको इतना महत्त्वपूर्ण नही समझा कि कार्यक्रम मे कोई हिचकिचाहट हो। नेताओ से बातचीत की घोषणा के साथ उसने 10 मई को एक प्रेस-कान्फ्रेंस की भी इजाजत दे दी जिसमे सर एरिक मेवील ने देशी और विदेशी सवाददाताओ को बताया कि 17 मई की कान्फ्रेंस का क्या महत्त्व है और किस तरह सभी के बीच समझौता हो जाएगा। शिमला की शाम की तरह राजनीतिक सम्भावनाएँ भी सुहानी लग रही थी। पहाड की गोद मे छिपे पगडडी के रास्ते पर कैम्वेल-जॉनसन के घर जाते समय नेहरू ने वायसराय और उसकी पत्नी का साथ दिया। नेहरू का दिल खुला हुआ था। उसने साथ चलनेवालो को बताया कि पहाडी चढाई के समय किस तरह साँस और शक्ति का अपव्यय रोका जाता है। बच्चो के साथ वह कूदता रहा, बन्दरो की उछल-कूद पर हँसता रहा। वायसराय-भवन लौटते समय शिमला को देखकर सिर्फ उसके चेहरे पर वितृष्णा आई।[2]

10 मई, 1947 की शाम को माउण्टबेटन ने नेहरू को खाना खाने के बाद अपने कमरे मे ह्विस्की और सोडा के लिए बुलाया। खाने के बाद ऐसा कुछ नही हुआ था कि उसे चिन्ता होती। लेकिन जब दोनो बातचीत कर रहे थे तो, जैसाकि माउण्टबेटन ने पीछे बताया, उसे एक तरह का खटका हुआ। तरमीमो के साथ योजना का जो रूप लदन से आया था वह 17 मई तक किसी को नहीं दिखाना चाहिए था। लेकिन वायसराय ने लोहे की आलमारी खोली, योजना निकाली और उसे पढने दिया।

तीस मिनट वह बिलकुल परेशान रहा, शायद जीवन में इतना परेशान कभी

---

1. भारत सरकार के कागजात से।

2. कहा जाता था कि नेहरूजी को शिमला से घृणा थी क्योंकि वहा यात्रियों के गमनागमन का प्रमुख साधन कुलियों द्वारा खींचे जानेवाले रिक्शा थे जो उनके अनुसार मानव-प्रतिष्ठा के लिए अत्यन्त अपमानजनक था। वस्तुत. पूरे शिमला से ही उन्हें घृणा थी क्योंकि वह निश्चयत. अंग्रेजों की नकल पर एक कस्बे की तरह बसा था। मुख्य सड़क का नाम 'माल' था। उसकी सबसे सुन्दर पहाडी का नाम 'प्लाशियम हिल' था। यह नाम लार्ड आकलैंड की बहनों के सम्मान में रखा गया था, जो उनके साथ वहाँ रहती थीं। लाल पत्थर के छतवाली मन्त्रालय की इमारत को 'गोर्टन कैसिल' और सेनानायक के निवास को 'स्नो डोन' [illegible]

नही हुआ हो। नेहरू का चेहरा एकदम पारदर्शी है और जब वह भावनाओं के वश म होता है तो कभी छिपाता नही। माउण्टबेटन ने देखा कि हिन्दुस्तानी नेता का चेहरा पहले तो गुस्से से लाल हो गया और फिर दुश्चिन्ता स स्याह। पढने के बाद उसने अपने को सम्हाला और योजना वायसराय की मेज पर रख दी।

'इससे काम नही चलेगा। उसने कहा— इस तरह की योजना को मैं नही मान सकता। इस तरह की योजना कांग्रेस भी नहा मान सकती। और इस तरह की योजना हिन्दुस्तान भी नही मान सकता।'

माउण्टबेटन अचरज और परेशानी म आख फाडकर देखता रहा। पीछे चलकर उसने लेखक से बताया—'मैं सोचता था कि मैं नेहरू की विचारधारा समझता हूँ। लेकिन हिन्दुओ का दिमाग अजीब है। कुछ नही कहा जा सकता। मैंने सबसे बातचीत की थी। फिर मैंने बैठकर उस योजना का मसविदा तैयार किया। मेरी समझ म सबके विचारो का उसम समावेश था। लेकिन मैं गलती पर था।

अब क्या किया जाय ? माउण्टबेटन और उसके सहयोगियो की योजना का गिने चुने शब्दो मे चीथडे उडाता हुआ नेहरू अपने सोने के कमरे की ओर चला गया इसम शक नहीं कि नीद म और भी जोर से बडबडाने के लिए। माउण्टबेटन बैठा रहा हाथ की शराब और आशा आकाक्षा के अन्त के खयाल म डूबा हुआ। हो सकता है कि उसकी नीद भी उस रात उतनी शान्तिपूर्ण नहा रही जितनी वह हमेशा रहा करती थी।

दूसरे दिन सुबह भी बाहर की धूप के मुकाबले की राजनीतिक सम्भावना नहीं दिखाई दी। स्पष्ट था कि नेहरू सारी रात उस पर सोचता रहा काम करता रहा। वायसराय के नाश्ते की मेज पर योजना का तिरस्कार करता हुआ क्रोधपूर्ण शब्दो म लिखित एक मेमोरेंडम आया। नेहरू ने लिखा था कि न सिर्फ इसमें हिन्दुस्तान का खतरा है बल्कि ब्रिटेन और हिन्दुस्तान का पारस्परिक सम्बन्ध भी खतरे म है। सुनिश्चितता सुरक्षा और स्थायित्व की भावना भरने के बदले इससे तोड फोडवाली प्रवृत्तिया को हर जगह बढावा मिलेगा उच्छृखलता और कमजोरी छा जायगी। खासकर महत्त्वपूर्ण जगहो पर खतरा आ जायगा इस प्रस्ताव का अनिवार्य स्पष्ट फल होगा हिन्दुस्तान को कई टुकडो म बाँटने का निमन्त्रण देना काम तरह क नागरिक सघर्षों का छिडजानी हिंसा और अव्यवस्था म इजाफा केन्द्र की उस सत्ता का और घट जाना जो बढती हुई उच्छृखलता का रोक सकती है सेना पुलिस और केन्द्रीय सरकारी नौकरो को कमजोर करना अगर वर्तमानिया सरकार की एकमात्र इच्छा है जनता की राय जानना और बिना किसी गडबड क सत्ता सौंप देना तो इस प्रस्ताव म न तो वह हो सकता और न उस दिशा म एक कदम भी रखा जा सकता। जनता का चुनाव करने क पहले यह तो मालूम होना चाहिए कि वह क्या चुन रही है। बिना किसी स्पष्ट पृष्ठभूमि क इस योजना स तो भगदड ही मचेगी और बिना किसी अमल क सत्ता सौंपने की बात तो दूर हिंसा अमेलो म प्रचार और केन्द्रीय सरकार तथा उसक विभागो की कमजोरी इसका रास्ता रोक

देंगी।......मुझे कोई शक नहीं कि कांग्रेस इसे स्वीकार नहीं करेगी।'[1]

अगर इसे पढ़कर वायसराय ने स्कूल के बच्चे की तरह हरकत की हो तो कोई उसे दोष नहीं देगा, क्योंकि उसके सहकारियों ने उसे मुसीबत में डाल दिया था।

लेकिन हिन्दुस्तान की घटनाओं से ही स्पष्ट हो गया होगा कि लॉर्ड माउण्टबेटन में सँभलने की, झटका झेलने की और हिमाकत की कमी नहीं थी। अभी धूल लगी ही थी पीठ में और वह फिर मैदान में उतर गया। इतनी जल्दी वह हार माननेवाला नहीं था।

पहली बात तो वी० पी० मेनन की तुरन्त बुलाहट हुई। मेनन नेहरू के साथ सुबह की कॉफी पी रहा था और उसे बड़ी कठिनाई हो रही थी। नेहरू को बुरा लगा था क्योंकि मेनन ने उसे माउण्टबेटन वाली योजना के बारे में नहीं बताया था। मेनन कह नहीं सकता था कि उसे वायसराय ने मना किया था। सारा मामला गड़बड़ हो रहा था। इसलिए वायसराय भवन जाने में उसे खुशी ही हुई। वहाँ उसने देखा कि माउण्टबेटन बिलकुल घबराया हुआ है। वायसराय ने बताया कि क्या हुआ और बड़ी घबराहट में पूछा कि अब क्या किया जाय ?

मेनन ने कहा—'मैंने वायसराय से कहा कि इस समय मेरी योजना के आधार पर आगे बढ़ना सबसे आशाजनक होगा। यह तो निश्चित है कि कांग्रेस उसे मान लेगी। क्योंकि इस तरह बहुत जल्द सत्ता हस्तान्तरित हो जायगी। सिर्फ यह सवाल रह जाता है कि क्या जिन्ना छाँटा हुआ पाकिस्तान मानेगा ? और मैंने वायसराय को याद दिलाया कि वह खुद इसी नतीजे पर पहुँचे थे कि जिन्ना बंगाल और पंजाब के बँटवारे के लिए राजी हो जायगा।'[2]

मेनन ने बात खतम नहीं की थी और माउण्टबेटन ने फैसला कर लिया। उसके चेहरे से घबराहट चली गई थी और वह आत्मविश्वास से भर गया था। उसने मेनन से कहा कि उसके सहकारियों की बैठक तुरन्त बुलाई जाय और उसमें नेहरू को भी बुलाया जाय। इस बैठक में माउण्टबेटन के सहयोगियों को योजना के बारे में नेहरू का विरोध पढ़ा गया और बैठक की कार्यवाही में दर्ज किया गया। फिर मेनन और माउण्टबेटन दोनों ने एक बार उपनिवेशवाली मेनन की योजना दुहराई। बैठक के अन्त में वायसराय ने कहा—'मैं आपसे एक सीधा सवाल पूछना चाहता हूँ पंडित नेहरू ! अगर अभी की बातचीत के आधार पर नई योजना बनाई जाय तो कांग्रेस उसे स्वीकार करेगी ?'

नेहरू—'मैं नहीं कह सकता। लेकिन पहले मैं मसविदा देखना चाहूँगा।'[3]

बैठक खतम हो गई और नेहरू चला गया। लेकिन वायसराय वी० पी० मेनन के साथ बातचीत के लिए रुक गया। मेनन को आशंका थी कि उसकी योजना का मसविदा तैयार होने में अब देर होगी। लेकिन माउण्टबेटन इस पर तुला था कि अब

1. भारत सरकार के कागजात से।
2. लेखक के साथ बातचीत में।
3. भारत सरकार के कागजात से।

समय बरबाद नहीं होना चाहिए। उसने मेनन को समझाया कि नेहरू शाम को दिल्ली जा रहा है और यह जरूरी था कि जाने के पहले वह मसविदा को देखकर अपनी स्वीकृति दे दे नहीं तो उसे पकड़ना हफ्तों के लिए मुश्किल हो जायगा और सारा काम बिगड़ जायगा। क्या वी० पी० मेनन नेहरू के जाने के पहले मसविदा तैयार कर सकेगा ताकि वह उसे पढ़ सके ?

दिन के दो बज गए थे। वी० पी० मेनन लौटकर अपने होटल आया। ह्विस्की का बड़ा गिलास सामने रखकर वह काम करने बैठ गया। उसने छः बजे शाम के पहले कभी ह्विस्की नहीं पी थी। तब तक वायसराय व्यस्त रहा। उसने कैम्बेल-जॉनसन को बुलाकर कहा कि 17 मई वाली बैठक के स्थगित होने की घोषणा करो। जो मर्जी हो कारण बताओ। कैम्बेल-जॉनसन ने कहा कि इसकी व्यवस्था लंदन से सम्पर्क होने पर हो सकेगी। जरूरी तार लंदन आते-जाते रहे। उनमें से एक में माउण्टबेटन ने एटली से जो कहा था उसका आशय यह है—'आपने जिस मसविदे की स्वीकृति दी थी उसे रद्द समझिए। संशोधित योजना भेज रहा हूँ।' इस्मे का जो तार आया उसका आशय था—'वहाँ हो क्या रहा है ?' आखिरकार कैम्बेल-जॉनसन ने एक सर्वसम्मत घोषणा निकाली—'चूँकि लंदन में पालियामेंट की बैठक खतम होनेवाली है इसलिए हिन्दुस्तानी नेताओं के साथ वायसराय की मीटिंग की तिथि 19 मई से बढ़ाकर 2 जून कर दी गई है। किसी को इस पर विश्वास नहीं हुआ। जैसाकि कैम्बेल-जॉनसन ने कहा—'हमारी स्थिति की कमज़ोरी यह है कि हम लोगों ने सच्ची बात कह दी है लेकिन यह पूरी बात नहीं है; फिर भी सोलह आने सच है।'

6 बजे शाम को वी० पी० मेनन ने अपने मसविदे की आखिरी लाइन पूरी की और उसके हाथ से कागज सर एरिक मेवील ने ले लिया, जो उस पर झुका हुआ था।

मेनन का सिर बुरी तरह फटा जा रहा था। उसने एस्पिरिन की चार टिकियाँ लीं और बिस्तर में घुस गया। उसी दिन शाम के 9 बजे वायसराय-भवन के एक भोज में उसे अपने परिश्रम के फल का पता चला। वायसराय और उसकी पत्नी के स्वागत के लिए जो लोग खड़े थे उनमें एक छोर पर मेनन था और दूसरे पर उसकी पत्नी। मेनन ने देखा कि दोनों माउण्टबेटन पहले उसकी पत्नी के पास गए और उसका बड़ा स्वागत किया। पाँच मिनट बाद दोनों मेनन के पास आए। लेडी माउण्टबेटन ने प्यार से उसके गाल को थपथपाया और कान में धीरे-से कहा—'उसने स्वीकार कर लिया।'

जिस योजना से हिन्दुस्तान और दुनिया की शक्ल बदलनेवाली थी उसे तैयार करने में एक आदमी को सिर्फ चार घण्टे लगे थे।

यह ठीक है कि इतनी जल्दबाजी में काम पूरा नहीं हो पाया। नेहरू ने स्वीकार कर लिया। माउण्टबेटन को पूरा विश्वास था कि इस रुकावट के दूर होने के बाद बाकी हिन्दुस्तानियों को वह देख लेगा। लेकिन इसी बीच लंदन से जरूरी तार आ रहे थे कि पूरी बात समझाओ।

14 मई को नई दिल्ली लौटने पर वायसराय ने देखा कि मन्त्रिमण्डल की बुलाहट आई है। इस्मे ने व्यक्तिगत तार भी भेजा था कि जल्दी पधारिए। माउण्टबेटन ने

वी० पी० मेनन को बुलाकर कहा—'वे लोग चाहते हैं कि मैं लदन आऊँ और सारी बात खुद समझाऊँ। मैंने फैसला कर लिया है कि नही जाऊँगा। मैं उन्हे तार कर दूँगा कि नई योजना का जो मसविदा मैंने भेजा है उसे, जैसा-का-तैसा, बगैर मेरे आए वे मान लें वरना मैं इस्तीफा दे दूँगा।'[1] माउण्टबेटन बार बचाने की स्थिति मे आ गया था और उसके लिए यह नई बात थी कि वह उबल पडने के लिए तैयार हो गया था।

मेनन ने कहा कि जल्दबाजी की जरूरत नही। उसकी राय म वायसराय के लिए सबसे अच्छा यह होगा कि लदन मे मन्त्रिमण्डल को सब-कुछ बता दे, कुछ नही छिपाए और साफ कह दे कि वह नई योजना के पक्ष मे लौटकर जाना चाहता है।

आखिरकार माउण्टबेटन इसके लिए राजी हुआ लेकिन थोडी हिचकिचाहट और लेडी माउण्टबेटन के व्याख्यान के बाद कि हिम्मत से काम लेना चाहिए।

यह उबलना बहुत थोडे ही अरसे के लिए था। 14 मई की शाम को माउण्टबेटन ने एटली को तार दिया कि मैं खुद समझाने के लिए आ रहा हूँ और इसके लिए कहा कि हवाई जहाज वापस भेजो।

18 मई, 1947 को लॉर्ड और लेडी माउण्टबेटन पालम हवाई अड्डे से लदन के लिए रवाना हुए। वी० पी० मेनन को भी उन लोगो ने साथ ले लिया।

हवाई अड्डे पर स्वागत के लिए इस्मे और एवेल थे। मेनन की योजना के खिलाफ उन लोगो ने सख्त लडाई लडी। उन्ह अब तक अपनी ही योजना अच्छी लगती थी। लेकिन मि० एटली और उसके मन्त्रिमण्डल ने 10 डाउनिंग स्ट्रीट की बैठक म मेनन की योजना मान ली। इसम सिर्फ पाँच मिनट लगे।

धैर्य, विलक्षण योजना और असाधारण लचीलेपन के ही कारण मेनन अपनी योजना स्वीकृत करवा सका (सरदार पटेल तो हमेशा परदे के पीछे था ही)। पीछे चलकर माउण्टबेटन ने जो कुछ उसे लिखा उसमे रत्ती भर भी अचरज नही 'यह सचमुच सौभाग्य की बात थी कि आप मेरे सहकारियो म रिफार्म्स कमिश्नर थे और इस तरह हमलोग शुरू से एक दूसरे के सम्पर्क मे आए। क्योकि आप ही वह पहले आदमी थे जो उपनिवेशवाली बात स पूरे सहमत थे और आपने ही वह हल ढूँढकर निकाला जो मेरे दिमाग म नही आया था कि जल्दी सत्ता हस्तान्तरित करने के आधार पर सभी इसे स्वीकार कर लेंगे। इतिहास मे वह फैसला बडा ही महत्त्वपूर्ण माना *जायगा और आपकी ही सलाह के कारण मैं वह फैसला कर सका,* वह सलाह जिसके प्रति मेरे ही कुछ सलाहकार सख्त विरोधी थ।'

वायसराय की कृतज्ञता ठीक ही थी। नही तो जैसा उसने कैम्बेल जॉनसन से कहा था—'डिकी माउण्टबेटन की नाव डूब जाती और मुझे अपना बोरिया बिस्तर समेटना पडता।'

जहाँ तक हिन्दुस्तान के बँटवारे का मसविदा चार घण्टे मे तैयार करने और पाँच मिनट मे मान लेने की बात थी, ठीक था।

लेकिन जिस देश म 250 000 000 हिन्दू, 10,000 000 मुसलमान, 10,000,000 क्रिस्तान और 5,000,000 खौलते हुए सिख हो वहाँ इस लागू कैसे किया जाय

1 बातचीत में भाग लेनेवालों में से एक की स्मृति के आधार पर।

अध्याय 6

मि० जिन्ना..!

3 जून, 1947 की शाम को तीन सम्बन्धित पार्टियों के नेता (कांग्रेस, मुस्लिम लीग और सिख) माउण्टबेटन के पीछे-पीछे ऑल इण्डिया रेडियो में ब्राडकास्ट के लिए गए। यह ब्राडकास्ट राष्ट्र के नाम नहीं था क्योंकि अब हिन्दुस्तानी राष्ट्र नामक कोई वस्तु नहीं थी। उन्हें ब्राडकास्ट करना था अपने लोगों के नाम और उन्हें बताना था कि दो महीने बाद उनकी तकदीर में क्या बदा है।

यह बात नहीं कि मन्त्रिमण्डल की स्वीकृति लेकर वापस लौटने से 3 जून के अरसे तक कोई चालबाज़ी या शोर शराबा नहीं हुआ। एकाएक जिन्ना ने कहा कि पूर्वी और पश्चिमी पाकिस्तान को मिलाने के लिए हिन्दुस्तान होकर उसे एक हज़ार मील का रास्ता चाहिए। कुत्तों के झुण्ड में पत्थर फेंकने पर जिस तरह वे भौंकने लगते हैं उसी तरह काग्रेस चीख उठी। लेकिन बहुत जल्द वे शान्त हो गए क्योंकि यह सिर्फ शोर-शराबा ही था, इसमें कोई नुकसान नहीं हुआ था। गांधी अब भी देश के बँटवारे का सख्त विरोध कर रहा था। उसने कहा—'यह कोई न कहे कि हिन्दुस्तान के बँटवारे में गांधी का भी हाथ था। लेकिन आज हरएक आज़ादी के लिए बेताब हो उठा है। कांग्रेस ने लगभग बँटवारा मान ही लिया है। इस नई योजना में उन्हें लकड़ी की रोटी मिली है। खाते हैं तो पेट के दर्द से मरते हैं और यदि नहीं खाते हैं तो भूखे मरते हैं।'

एक बार फिर वह बिहार और बंगाल से दिल्ली आया समय की अपील करने ताकि इस न पलटनेवाले फैसले के पहले फिर सोच विचार हो। इस यात्रा में किसी ने उसके तकिये के बीच में सोते समय उसकी घड़ी चुरा ली। यह बिलकुल प्रतीकात्मक थी। गांधी ने अपनी घड़ी वर्षों से सम्भालकर रखी थी, उसकी चन्द चीज़ों में से एक वह भी थी। जब उसकी चोरी हो सकती थी तो हिन्दुस्तान की चोरी भी हो सकती थी। दिल्ली स्टेशन पर उसने कहा—'मैं जीवन भर लड़ता रहा हूँ। मैं हारी हुई लड़ाई लड़ने दिल्ली आया हूँ।'

इस मौके पर माउण्टबेटन गांधी के आने से डरता था। यह ठीक है कि पिछले कुछ सप्ताहों में नेहरू और पटेल की आशा आकांक्षा को उभारकर उसने हिन्दुस्तानी राजनीति की प्रमुख धारा से गांधी को अलग कर दिया था, लेकिन इस चालाक काबिल और शानदार बुड्ढे के बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता था। अपने विश्वस्त

व्यक्तित्व और बुनियादी भलमनसाहत के सहारे कांग्रेस के साथियों पर जादू डालने की शक्ति उसमें थी। शब्दों से या अनशन कर वह वायसराय की सारी योजना मटियामेट कर सकता था। माउण्टबेटन उसके लौटने से घबराता था। उसके लौटने की क्या जरूरत थी। जब गांधी उससे मिलने आया तो कागज के टुकड़े पर उसने लिखकर कहा कि यह उसका मौन दिवस था। उसने पूछा—'मुझे तो कुछ नहीं कहना है। क्या आप सचमुच चाहते हैं कि मैं कुछ कहूँ ?' संकट टल गया था। गांधी के साथ अब कोई मुसीबत नहीं थी।

कांग्रेस के उच्चाधिकारियों में मुसलमान सदस्य मौलाना अबुलकलाम आज़ाद से तो और भी कम डर था। बँटवारे के नतीजों से आगाह करना और उसका सख्त विरोध करना बाकी सदस्यों के लिए उबा देनेवाला—खिझानेवाला हो गया था। क्योंकि सत्ता की सम्भावना उसकी आँखों के सामने नाच रही थी। उसकी बातें अनसुनी कर दी गईं।

निराशा में, फैसले के ठीक पहले, वह वायसराय के पास गया दरखास्त करने कि बँटवारे के बारे में एक बार फिर सोच-विचार हो।

पीछे चलकर उसने लिखा—'मैंने लॉर्ड माउण्टबेटन से भी कहा कि बँटवारे के नतीजों पर फिर गौर कीजिए। बिना बँटवारे के भी कलकत्ता, नोआखाली, बिहार, बम्बई और पंजाब में दंगे हुए हैं। हिन्दुओं ने मुसलमानों पर हमले किए हैं, मुसलमानों ने हिन्दुओं पर हमले किए हैं। ऐसे वातावरण में अगर देश का बँटवारा हुआ तो देश के विभिन्न भागों में खून की नदियाँ बहेंगी और इस कत्ल की जिम्मेदारी अंग्रेजों पर होगी।'[1]

वायसराय ने पीठ थपथपाने-जैसी बात की, आश्वासन दिया। माउण्टबेटन को भविष्य का कोई अंदेशा नहीं था। और उसके बाद उसने बहुत ही महत्त्वपूर्ण वाक्य कहे। कुछ सप्ताह बाद जो कुछ हुआ, उसकी दृष्टि से इस अरसे के इतिहासकारों ने माउण्टबेटन की उक्ति पर बहुत कम ध्यान दिया है।

वायसराय ने कहा था—'इस एक सवाल (कत्ल) पर मैं आपको पूरा विश्वास दिलाता हूँ। मैं देखूँगा कि कोई खून-खराबी या दंगा न हो। मैं सिपाही हूँ। एक बार सिद्धान्त बँटवारा मान लिया गया तो मैं आदेश दूँगा कि हिन्दुस्तान में किसी तरह की साम्प्रदायिक गड़बड़ नहीं होनी चाहिए। अगर हल्की-से-हल्की गड़बड़ी हुई तो मैं उसे शुरू में ही खतम करने के लिए बड़े-से-बड़ा कदम उठाऊँगा। मैं हथियारबन्द पुलिस से भी काम नहीं लूँगा। मैं फौज और हवाई सेना को हुक्म दूँगा। जो कोई भी झमेला खड़ा करना चाहता है उसके खिलाफ मैं टैंकों और हवाई जहाजों का प्रयोग करूँगा।'

उस समय आशान्वित होने का वायसराय के पास अच्छा कारण था। क्यों झमेला होगा? 2 जून की मीटिंग, जिसके लिए वह इतना चिन्तित था, इतने मजे से

1. मौलाना आज़ाद—इंडिया विन्स फ्रीडम।

हो गई जिसकी कि उनने उम्मीद भी नहीं की थी। हिन्दुस्तान आने के बाद से उनके हर काम जिस तरह प्रचार पाते रहे उसे रोकने की उसने भिरतोड़ कोशिश की थी। जब कांग्रेसी, मुस्लिम लीगी और सिख नेता उनसे मिलने आए तो सिर्फ एक फोटोग्राफर (हिन्दुस्तानी) मौजूद था। हालांकि यह भी ठीक है कि दूसरे कमरे से सारी दुनिया के पत्रकार शोर कर रहे थे कि उन्हें क्यों रोक रखा गया? वायसराय के काम करने वाले कमरे में गोलमेज के चारों ओर नेता लोग बैठे। नेहरू माउण्टबेटन के दाहिने, जिन्ना बायें। पटेल, कृपलानी, निश्तर, लियाकतअली अपने अपने नेता के करीब। सिख प्रतिनिधि बलदेवसिंह का बीच में बैठना ठीक ही था। बेचारे को क्या पता था जो सैंडविच काटा जा रहा था उसमें वही गोश्त का टुकड़ा बनेगा।

माउण्टबेटन के सहकारियों में दो बड़े सदस्य लॉर्ड इस्मे और सर एरिक मेवील मेज के पीछे बैठे। शायद इस परिस्थिति में यह अचरज की बात नहीं थी कि जिस योजना को निगलने के लिए ये सदस्य आए थे उसका जनक वी० पी० मेनन वहां नहीं था।

बैठक की कार्यवाही के बारे में जिस तरह लार्ड इस्मे ने अपने 'मेमोयर्स' (चरित-चित्रण) में लिखा है उससे लगता है कि एक तरह का नाटकीय तनाव था, जो वास्तव में नहीं था। '2 जून को जब मेरी नींद खुली तो मेरी अनुभूति लड़ाई के जमाने के 'डी डे'-सी ही थी। लेकिन इस मौके पर मुझे परिणामों पर कम भरोसा था।'—इस्मे ने लिखा है, 'दरअसल शुरू से आखिर तक स्थिति माउण्टबेटन के काबू में सोलह आने थी। उनकी स्थिति बड़ी ताकतवर थी क्योंकि उसने सभी से कुछ-न-कुछ छूट हासिल कर ली थी, जिन्ना तक से (जिसने पंजाब और बंगाल का बंटवारा मान लिया था) और बड़ी मोहनी, नजाकत और नफासत से उसने सभी की कमजोरियों का फायदा उठाया था। पहली बैठक खतम होने तक उसने नेहरू, जिन्ना और बलदेवसिंह से वादा करा लिया था कि वे रेडियो पर अपने लोगों से सहयोग के लिए अपील करेंगे। यह ठीक है कि जिन्ना ने अपनी शान बनाए रखने के लिए आखिरी वक्त कोशिश की कि वह तो सिर्फ जनता का सेवक है और वह एकदम वादा कैसे कर सकता है जब तक कि मुस्लिम लीग की वर्किंग कमेटी और लीग काउन्सिल से सलाह न कर ले। उसने यह व्यवस्था की कि शाम को वर्किंग कमेटी का फैसला वह वायसराय को बता देगा। जिन्ना खुद जानता था और यह भी जानता था कि वायसराय को मालूम है कि यह सब सिर्फ एक तमाशेबाजी है ताकि यह मालूम हो कि वह बड़ी मुश्किल से राजी हुआ है।

3 जून को पहले दिन का परिणाम लंदन भेजते हुए माउण्टबेटन ने जो कहा उससे ऐसा नहीं मालूम होता था कि सारा दिन वह लड़ता रहा।

उसने लन्दन को ज्ञापन दिया— जिन्ना रात के ग्यारह बजे तक यहां के लिए मिला। और मेरे पास कांग्रेसी और सिख प्रतिनिधियों की भी चिट्ठियाँ आई हैं। स्वाभाविक रूप से तीनों ने उन बातों पर जोर दिया है जो उनके हक में नहीं। लेकिन आमतौर पर इनका रुख पक्ष का ही है।"..... जिन्ना ने फिर दुहराया है कि वह व्यक्तिगत रूप से तो मुझसे सहमत है और कोशिश करेगा कि योजना मान ली जाए।"

जिन्ना के रुख की तस्वीर पूरी करते हुए उसने कहा—'उसकी खुशी एकदम साफ थी।'

यह ठीक है कि दूसरे दिन सुबह कुछ दिक्कत पेश आई। कांग्रेस ने अपनी सम्मति का जो पत्र भेजा उसमें दो पैराग्राफ जोड़ दिए थे। एक था उपनिवेश के बारे में और दूसरा था उत्तर-पश्चिम सीमान्त प्रदेश के बारे में। यह जिन्ना के इस ताने का उदाहरण है कि 'हिन्दुओं के साथ यही मुसीबत है कि वे रुपया भुनाकर सत्रह आने चाहते हैं।' वायसराय ने ज्ञापन दिया कि पहला पैराग्राफ 'मुझे इतना खतरनाक लगा कि यह तो समझौते की सभी आशा तहस-नहस कर देगा क्योंकि उसमें साफ-साफ आश्वासन माँगा गया था कि अगर बाकी हिन्दुस्तान कॉमनवेल्थ से अलग होना चाहे तो बर्तानिया सरकार को पाकिस्तान को भी कॉमनवेल्थ से अलग कर देना पड़ेगा।' इन समस्त वार्ताओं में वी० पी० मेनन की सेवा अमूल्य थी। वह दौड़कर पटेल के पास गया और सुझाया कि बर्तानिया सरकार इस बात पर कभी नहीं राजी हो सकता क्योंकि यह तो उपनिवेश के सिद्धान्त का ही विरोधी है। उसने सिफारिश की कि इसे छोड़ दिया जाय। मीटिंग के आधे घण्टे पहले मैंने नेहरू को बुलाया और यही बात कही। मैंने कहा कि मीटिंग में इसका जिक्र नहीं करना चाहता कि यह सुझाव आया था। नेहरू और पटेल दोनों इस बात पर राजी हो गए।'[1]

उत्तर-पश्चिम सीमान्त प्रदेश के मामले में कांग्रेस ने थोड़ी हाथ की सफाई दिखानी चाही। कांग्रेस का सुझाव था कि वहाँ मतगणना के समय सिर्फ यह नहीं सामने रखा जाय कि हिन्दुस्तान या पाकिस्तान में शामिल होना है बल्कि यह भी कि स्वतन्त्र राज्य होना है या नहीं। यह प्रदेश अब भी कांग्रेस के पक्षवाले मुसलमानों के हाथ में था जिसका नेता था खाँ साहब। खाँ साहब ने एक स्वतन्त्र राज्य पख्तूनिस्तान या पठानिस्तान का नारा शुरू कर दिया था। लेकिन वह भी जानता था और कांग्रेस भी जानती थी कि वह स्वतन्त्र नहीं रह सकेगा। माउण्टबेटन और मेनन की जोड़ी एक बार फिर जुट पड़ी। वायसराय ने ज्ञापन भेजा—'वी० पी० मेनन ने पटेल को सुझाया और मैंने नेहरू को, नेहरू के ही कहने पर हिन्दुस्तान, पाकिस्तान या स्वतन्त्र राज्य वाले मतदान की योजना (माउण्टबेटन और उसके सहकारियों की योजना का आधार) छोड़ दी। अब इस हालत में उसे कैसे लागू किया जा सकता है? नेहरू ने साफ मान लिया कि उत्तर-पश्चिम सीमान्त प्रदेश अपने पैरों पर नहीं खड़ा रह सकता। मुझे यह साफ मालूम हुआ कि मुसलमानों के प्रदेश में मतदान के समय कांग्रेस से सम्बन्ध रखने की बदनामी से नेहरू खाँ साहब को बचाना चाहता है, चूँकि नेहरू ने कहा कि पीछे चलकर खाँ साहब हिन्दुस्तान में शामिल हो जायेंगे। मैंने नेहरू से कहा कि बैठक में इसकी चर्चा नहीं करना चाहता। नेहरू इस पर राजी हो गया।'[2]

जिन्ना ने भी एक चाल चली। उसने भी बंगाल में स्वतन्त्र राज्य के मतदान की

---

1. भारत सरकार के कागजात से।
2. वही।

माँग की। उसका विश्वास था कि बंगाल के अछूत हिन्दुओं के बजाय मुसलमानों के साथ वोट देंगे। वायसराय ने बातों से उसे चुप कर दिया।

'मैं सहमत हूँ' के अलावा सचमुच जो सदस्य कुछ कह सकता था वह था सिखों का प्रतिनिधि बलदेवसिंह। क्योंकि याजना में पजाब का बँटवारा साफ था। बलदेवसिंह सिखों में बहुत होशियार और तेज नहीं था और उसने यह महसूस नहीं किया कि इसका क्या नतीजा होगा। सिख सारे पजाब में फैले थे। उन्होंने नहरों का जाल तैयार किया था। उनके धार्मिक स्थान पूर्वी पजाब के बदले पश्चिमी पजाब म थे। कोई भी दूरन्देश सिख अगर बँटवारे के नतीजे का अन्दाज़ लगाता तो अपना गला काट लेता या लडाई शुरू कर देता, लेकिन एक अग्रेज ने पीछे कहा था—'ऐसा भी कोई सिख होता है जो दूरन्देश हो। बलदेवसिंह अपनी कमेटी के आदेश पर काम कर रहा था। कमेटी भी उसी जैसी थी।' इस महत्वपूर्ण बैठक म योजना को स्वीकार करने के अलावा उसने कुछ नहीं कहा। वायसराय ने बडे इतमीनान से रिपोर्ट भेजी—'बलदेवसिंह चाहता था कि बाउंडरी कमीशन की हिदायतें भी इस योजना म शामिल कर दी जायें और सिखों के हितों का पूरा ध्यान रखा जाय। इस पर बैठक म मैंने मना कर दिया और मेरी बात उसने मान ली।'

उसने यह भी लिखा—'मेरी सबसे बडी कठिनाइयों म एक यह भी है कि इन नेताओं को ज्यादा बोलने से कैसे रोका जाय। उदाहरण के लिए दूसरी मीटिंग म लियाकत ने गाधी के खिलाफ इस तरह बोलना शुरू किया कि मीटिंग करीब-करीब टूट ही चुकी थी। मैं जब कभी यह सोचता हूँ कि कितनी बातों पर मीटिंग टूट सकती थी तो मैं महसूस करता हूँ कि हम लोगों की तकदीर कितनी अच्छी थी।[1]

आजादी के आगमन के ठीक सामने खडे होकर और एकाध लोगों के साथ देश के बँटवारे म हाथ बँटाने के लिए अपने को दोषी समझकर हिन्दुस्तानी नेता इतने अभिभूत थे कि उनसे कुछ टूट नहीं सकता था। दूसरे दिन की मीटिंग का आखिरी दौर खासतौर पर मजेदार बन गया जबकि एक सरकारी नौकर जॉन क्रिस्टी के सुझाव पर आजादी की योजना के साथ-साथ उन्हें एक और दस्तावेज मिला 'बँटवारे के प्रनुशासकीय नतीजे'।

सभी की हालत पानी से निकाली मछली-जैसी थी।

वायसराय ने रिपोर्ट म यह भी लिखा—'मैंने इसकी नकल उन्हें साथ ले जाने के लिए दे दी है। उनकी प्रतिक्रियाओं से यह स्पष्ट था कि उन्हें उन पेचीदगी का कोई एहसास नहीं था जो सामने आनेवाली थीं।' इसके आखिर म वायसराय ने जोडा था—'शायद यह हमारी खुशकिस्मती है क्योंकि इस तरह आनेवाले मुश्किल समय म बातों का अन्त वायसराय भवन म ही रहेगा।'[2]

इस तरह एक के बाद एक ये लोग रेडियो पर हिन्दुस्तान की जनता को खबर

1 भारत सरकार के कागजात से।
2. वही।

सुनाने गये। माउण्टबेटन ने रेडियो पर कहा—'एक सौ साल से भी ज्यादा हुआ, आप लाखो-करोडो की संख्या मे साथ साथ रहे और उस देश का एक इकाई की तरह शासन हुआ।'' '' समझौता असम्भव रहा '' किसी भी योजना पर जिससे देश की इकाई कायम रहे। लेकिन देश के एक हिस्से मे जिसका वहुमत हो उसे देश के दूसरे हिस्से म औरो की बहुमतवाली सरकार के अधीन जवरदस्ती रखने का सवाल ही नही उठता। इस जबरदस्ती के वाद दूसरा रास्ता है—बँटवारा।'

इसके वाद नेहरू का नम्बर आया, और जैसा हमेशा होता आया है, भावनात्मक आवेश म वह वहुत अच्छा वोला—'मैं बहुत खुशी से इस प्रस्ताव की सिफारिश नही कर रहा। हालांकि यह भी ठीक है कि मेरे दिमाग म इस वात पर कोई शका नहीं कि इस समय यही सबसे अच्छा रास्ता है।' आजादी की लडाई मे अपने और अपने साथियो के योगदान के बारे मे उसने कहा—'महान् उद्देश्यो की सेवा म लगे हम तुच्छ व्यक्ति है लेकिन उद्देश्य ही इतना महान् है कि उसकी कुछ महानता हम पर भी आ जाती है।'

जिन्ना वहुत ही कटा छँटा, सूखा और ठण्डा था। अगर यह उसके लिए एक महान् अवसर था—और इसम कोई शक नही कि निश्चय ही था—तो वह रेडियो-भाषण मे इसे नही स्पष्ट करना चाहता था। उसने कहा—'यह हम लोगो के लिए सोचने की बात है कि जो योजना वर्तानिया सरकार सामने रख रही है उसे हम लोग समझौता—आखिरी सौदे के रूप म स्वीकार करें।' और फिर सूखी आवाज म सुनाई पडा—'पाकिस्तान जिन्दावाद'। इस अवसर के नाटक के लिए इससे अधिक कुछ नही था उसके पास।

सिखो का जो हाल होना था उसके बावजूद वलदेवसिंह के दिमाग मे इस योजना के बारे म कोई शका नही थी। उसने कहा कि यह समझौता नहीं था, आखिरी सौदा था—'इससे हर किसी को खुशी नहीं होगी, सिखो को तो होगी ही नहीं। लेकिन फिर भी यह गुजार लायक है। हम लोगो को इसे मान लेना चाहिए।'

बस, काम वन गया। हिन्दुस्तानी नेताओ ने योजना स्वीकार कर ली। ब्रिटेन की सरकार ने योजना स्वीकार कर ली थी। और विन्सटन चर्चिल तथा विरोधी दल (कजर्वेटिवो) ने भी योजना स्वीकार कर ली थी। लेकिन उन लोगो को यह पता था कि उन्होंने किस चीज की स्वीकृति दी है?

उदाहरण के लिए क्या ब्रिटेन की सरकार और विरोधी दल ने यह महसूस किया था कि योजना को आगे बढाने की अनुमति देकर उन्होंने वायसराय को सत्ता सौंपने की तारीख के चुनाव का भी अधिकार दे दिया था? यह ठीक है कि लदन मे एटली से बातचीत के समय माउण्टबेटन ने यह सुझाया था कि उपनिवेशवाले फार्मूला के आधार पर केबिनेट मिशन योजना मे अन्दाज किए गए समय से कही पहले सत्ता सौंपना सभव हो सकेगा।[1] इस बात के काफी प्रमाण हैं कि जब 14 जून, 1947 के

---

1 लेकिन को तारीख उसने कही भी वह शायद 1 जनवरी थी। लदन आने के एक दिन पहले 17 मई को जिन्ना से वायसराय ने यही बताया था।

अपनी प्रेस-कान्फ्रेंस में वायसराय ने सत्ता हस्तान्तरित करने की तिथि 15 अगस्त घोषित की तो एटली को भी झटका लगा। इसका अर्थ था कि सिर्फ नौ महीने बाद यानी नये वायसराय की बहाली के समय जिस तारीख का अन्दाजा लगाया गया था उससे दस महीने पहले यह काम हो जायगा। यह भी विश्वास करने के लिए कम कारण नहीं कि अगर विन्सटन चर्चिल और अन्य टोरी नेताओं ने यह महसूस किया होता कि कितनी जल्दी मचाई जायगी तो मई, 1947 में जब माउण्टबेटन सलाह करने के लिए गया था, उसे कभी सहमति नहीं मिलती। लेकिन दोनों पार्टियों ने प्रकट रूप में योजना को स्वीकृति दे दी थी और पार्लियामेंट की अगली बैठक में उसे पास कराने के लिए वचनबद्ध हो गए थे। बिल का मसविदा जल्द-से-जल्द तैयार किया गया और 22 जून को तार द्वारा माउण्टबेटन के पास भेजा गया। लेकिन बिल में सत्ता सौंपने की तारीख 15 अगस्त का जिक्र नहीं था। क्या एटली को यह उम्मीद थी कि इसे लोग भूल जायेंगे? वायसराय इसके लिए तैयार नहीं था। 28 जून को वायसराय ने तार दिया—'प्रेस-कान्फ्रेंस में और लीडरों को मैंने जो आश्वासन दिया है उसे देखते हुए मैं जोरदार सिफारिश करता हूँ कि सत्ता सौंपने की तारीख 15 अगस्त रखी जाय। इसके बाद की तारीख रखी गई तो मौजूदा नाजुक हालत में मनोवैज्ञानिक तौर पर उलटा असर पड़ेगा।'

प्रधान मन्त्री राजी हो गया, 15 अगस्त बिल में जोड़ा गया और विरोधी दल ने भी आवाज नहीं उठायी।'

वी० पी० मेनन ने लिखा है—'इस तरह योजना स्वीकार की गई।······लेकिन स्वीकार करना एक बात थी और उसे लागू करना बिलकुल अलग बात। यह तो ऐसा काम था, साधारणतया जिसमें कई वर्ष लगते लेकिन उसे कुछ हफ्तों में पूरा करना था। यह तो ऐसा काम था कि कोई भी चीख उठता। देवताओं के ही बस का यह काम था।'

फिर तो वायसराय ने जवाब दिया होता—'चीख उठना! हमें इस शब्द का अर्थ नहीं मालूम!'

लेकिन और लोग चीखनेवाले थे और उनमें एक था फील्ड मार्शल सर क्लाड आचिनलेक, जी० सी० बी०, जी० सी० आई० ई०, सी० एस० आई०, डी० एस० ओ०, ओ० बी० ई०, एल० एल० डी०, हिन्दुस्तानी फौज का प्रधान (कमाण्डर इन-चीफ़)। सर क्लाड ऐसा सिपाही था जिसे वेवल की ही तरह लड़ाई के जमाने में अपने हिस्से से ज्यादा बदनामी उठानी पड़ी। उसके जीवनी-लेखक मि० जॉन कोनेल का कहना है कि जनरल मौंटगोमरी के बदले सर क्लाड आचिनलेक ही अफ्रीका की जीत का विधायक था; क्योंकि उसने जो चाल चली थी उसी के फलस्वरूप एला-मिएन की लड़ाई जीती गई। आम तौर पर (और सही-सही) बहुतों का यह विश्वास है कि पिछली लड़ाई के महान् सिपाहियों में उसका नाम शामिल है लेकिन बदकिस्मती ऐसी कि वेवल के शब्दों में, 'हमेशा गन्दगी ही उसके हाथ आई' और कभी सही हथियार या फौज ठीक मौके पर उसे नहीं मिल सकी। हो सकता है कि

यह ठीक भी हो। 1942 मे मध्यपूर्व की आठवी सेना के सेनाध्यक्ष के पद से जीत के ठीक पहले चर्चिल ने उसे हटा लिया था। उसके बाद ही पासा पलटा और हमलोग जीतने लगे। इस हद तक तो वह बदकिस्मत था ही।

आचिनलेक कुशल शासक था। 1942 मे मध्यपूर्व से हटाये जाने पर उसने हिन्दुस्तानी फौज की बागडोर कौशल और सहानुभूति के साथ सम्भाली। इसमे कोई शक नही कि हिन्दुस्तानियो के लिए उसके हृदय मे अपार प्रेम था, न सिर्फ सिपाहियो के लिए बल्कि आम जनता के लिए भी। वह आजादी की भावना से भी हमदर्दी रखता था, लेकिन जिस तरीके से इसकी कोशिश की जा रही थी, उससे नही। वह सहृदय बहुत था, लेकिन सिद्धान्त का भी वह वैसा ही कट्टर रूप से पाबन्द था। उसके न्याय की कट्टरता का यह एक उदाहरण है कि लडाई के बाद तथाकथित इण्डियन नेशनल आर्मी के कुछ ज्यादा हत्यारे और शैतान नेताओ पर मुकतमा चलाये जाने की उसने ज़िद पकड ली। सिंगापुर और बर्मा की हार के बाद जो हिन्दुस्तानी सिपाही पकड लिये गए थे उन्ही से यह सेना बनाई गई थी और जापानियो की ओर से यह सेना लडी भी थी। आई० एन० ए० के कुछ नेताओ (हिन्दू, सिख और मुसलमान—तीनों) ने बडी क्रूरता का रास्ता अपनाया था ताकि उनके साथी हिन्दुस्तानी सेना की वफादारी छोडकर उनके साथ हो जायें जैसे जान ले लेना, पीटना, अपग बना देना। आचिनलेक समझता था कि इनमे जो सबसे ज्यादा क्रूर थे उनका लडाई के मुजरिम (वार क्रिमिनल्स) की तरह न्याय होना चाहिए।

यह बताया भी गया कि 1945 के हिन्दुस्तानी राजनीतिक वातावरण म इससे ज्यादा अच्छा तरीका नही हो सकता शहीदो की सृष्टि का, जिसके लिए हिन्दुस्तान की जनता शोर मचा रही थी। वाक्या यह है कि आई० एन० ए० के ये सदस्य अपने ही साथियो पर सितम ढाने के दोषी थे—यह बात हिन्दुस्तानियो के लिए दिमाग मे नही घुसेगी, उन्हे तो यह दिखाई देगा कि सिर्फ हिन्दुस्तान की आजादी के लिए उन्होने अंग्रेजो से लडाई लडी। आचिनलेक को यह सलाह दी गई कि या तो लडाई के मुजरिमो को भूल जाए वरना जब धुआँ खतम हो तो चुपचाप उन्हे सर कर दे। लेकिन सिद्धान्तवादी के नाते आचिनलेक ने ज़िद पकड ली कि उन पर फौजी अदालत मे बाकायदा मुकदमा चलाना चाहिए ताकि दुश्मनो द्वारा पकडे जाने पर भी जो सिपाही वफादार रहे उनमे अपने सचालको के प्रति एक विश्वास पैदा हो। यह उसका विश्वास था। इसीलिए उसने लाल किले मे खुल्लमखुल्ला उन पर मुकदमा चलवाया। नतीजा हुआ बरबादी। हिन्दुस्तान के अखबारो और गाँव के प्रचारको ने उन लोगो को मुजरिम से बहादुर बना दिया। क्रूरता के उनके काम बहादुरी म शुमार हुए। हिन्दुस्तानी नेता भी जानते थे और आचिनलेक भी कि य लोग सिर्फ अवसरवादी थे जिनके कारनामे देशभक्ति या अग्रेजो के विरोध के नाम पर माफ नही किए जा सकते थे, क्योकि यह याद रहे, य जापानियो की ओर से सिर्फ लडनेवाले अफसर नही थे। इन लोगा ने अपने साथी सिपाहियो पर अत्याचार किया था। लेकिन आचिनलेक को सिद्धान्त ने यह करने पर मजबूर भले ही किया हो। हिन्दुस्तानी नेताओ के दिमाग मे ये बारीक बातें नही

आती थीं। उदाहरण के लिए, खानगी तौर पर इन भगोड़ों के लिए नेहरू ने हिकारत की नजर जाहिर की लेकिन आमतौर पर वह भी पांच सवारों में शामिल हो गया। मुजरिमों के पक्ष में तक़रीर की और लाल किले के मुकदमे में बैरिस्टर का बाना भी धारण किया। और नेताओं ने भी यही किया। इससे पहले कभी इतने हिन्दुस्तानी नेताओं को यह याद नहीं आया कि वे बैरिस्टर हैं और 'शहीदों' की वकालत के लिए कभी इतने हिन्दुस्तानी इकट्ठे नहीं हुए थे।

नतीजा यह हुआ कि इन अफसरों की सज़ा और जेलखाने को सारे देश ने सच्ची राष्ट्रीयता के कुचलने का एक और सबूत मान लिया। आचिनलेक की नैतिकता सन्तुष्ट हुई और शायद इसमें पूरी ईमानदारी से भाग लेनेवाला वह अकेला ही था। अंग्रेजों की न्यायप्रियता का यह ज्वलन्त उदाहरण था।

1947 में आचिनलेक के सामने जो समस्या आई वह उसके पूरे बहादुरी और विविधतापूर्ण जीवन में सबसे ज्यादा कठिन थी। 1857 के गदर के बाद अंग्रेजों ने लड़ाई का जो साधन इतनी मेहनत और कठिनाई से तैयार किया था उसी हिन्दुस्तानी फौज को दो टुकड़ों में बांटना था। फौज के प्रधान की हैसियत से आचिनलेक को यह करना था। यह न सिर्फ़ दर्दनाक था बल्कि बहुत ही मुश्किल भी। गदर के बाद हर हिन्दुस्तानी रेजिमेंट को सम्प्रदाय के आधार पर तैयार किया गया था—दो हिन्दू, एक मुसलमान या एक हिन्दू, दो मुसलमान या एक हिन्दू, एक मुसलमान, एक सिख—ताकि धार्मिक या साम्प्रदायिक दंगे काबू के बाहर न हो जाएँ। हमेशा एक वफादार बटालियन झंडे के नीचे कायम रहेगी। हिन्दुस्तानियों की भरती नौकरी में इतनी ज्यादा होने लगी थी कि 1947 तक सिर्फ 300 अंग्रेज सिविल सर्वेन्ट रह गए थे। लेकिन फौज की बात ही दूसरी थी। यह ठीक है कि लड़ाई के जमाने में सिर्फ अपनी बहादुरी के कारण कुछ हिन्दुस्तानी ब्रिगेडियर के पद तक पहुँच गए थे, फिर भी अफसर और जनरल स्टाफ अंग्रेज ही थे।

हिन्दुस्तानी फौज को टुकड़े में बाँटने के काम ने आचिनलेक को चौंका दिया। 3 जून को हिन्दुस्तानी नेताओंवाली आखिरी बैठक में माउण्टबेटन ने रिपोर्ट दी कि वे इस बात पर सहमत हैं कि आचिनलेक को फौज के नाम रेडियो पर संदेश देने के लिए बुलाया जाए ताकि उन्हें उनके भविष्य का खाका मालूम हो जाए और उनको इत्मीनान हो। मैंने नेताओं से बता दिया कि उनकी वर्किंग कमेटियों को बड़े खाना से आचिनलेक की सलाह देनी पड़ेगी। जैसे सेना का भौगोलिक आधार पर बँटवारा हो या साम्प्रदायिक आधार पर बम्बई में रहनेवाला मुसलमान हिन्दुस्तानी फौज में रहे या पाकिस्तानी फौज में और अगर पाकिस्तानी फौज में रहे तो उसे राष्ट्रीयता बदलनी पड़े।'[1]

लेकिन आचिनलेक ने इस बात पर खुद कितना सोचा था? उसकी नज़र से यह बात चूकी नहीं होगी। जनरल टकर ने यह काम पक्का कर दिया था। मेरे के प्रश्नों का उत्तर देते हुए उसने कहा था—'1945 में बर्मा के मोर्चे से हिन्दुस्तान लौटन

1. भारत सरकार के कागजात से।

पर मुझे जल्द ही यह विश्वास हो गया कि आजाद हिन्दुस्तान को दो टुकड़ो म बाँटना ही पडेगा इसलिए फौज को भी बाँटना अनिवाय होगा। लकिन एक निष्पक्ष सना भी रखी जाए ताकि जब देश का बँटवारा हो तो किसी तरह का दगा या खून-खराबी या लडाई दोनो देशो की सीमा पर न हो। 1945 के अत म मैंने इन विचारो क साथ-साथ बँटा हुआ देश जबरदस्ती एक बनाये हुए देश की अपेक्षा ज्यादा मजबूत होगा, मैंन कागज पर उतार दिया।' य कागज जी० एच० क्यू० क जनरल स्टाफ क पास भेज गए थ इसलिए इन पर ध्यान तो दिया ही होगा। टकर कहता गया— फिर छानबीन क लिए और हिदुस्तान को कब आजादी देनी चाहिए— इसका फैसला करने क लिए पार्लियामेंटरी मिशन आया। ये लोग खुद घबरा गए और चाहा कि हिन्दुस्तान को तुरन्त आजाद कर दिया जाए। यही विचार लेबर पार्टी क थे क्योकि उन्ह डर था कि हम लोग हिन्दुस्तान से निकाल दिय जाएँगे।'

टकर न आगे कहा—'जब कविनेट मिशन 1946 म आ रहा था तो दिल्ली म जी०एच०क्यू० ने जानना चाहा कि देश क बँटवारे क समय हम क्या करना चाहिए ? इस पर मैंन कुछ सोचा है या नही और मैं कागजात तैयार कर भेजू। मैंने पुराने कागजात की प्रति भेज दी। मैं समझता हूँ कि सिफ एक ही इस्तेमाल किया गया। वायसराय (वेवल) ने माइक्रोफोन पर जाकर कहा कि सुरक्षा की दृष्टि से देश को बाँटना कितना घातक होगा। मेरी दलील थी कि आपस म लडनवाले दो दलो को एक साथ रखने और उनक बीच शान्ति बनाए रखने क लिए सेना को उलझाए रखने से ज्यादा अच्छा होगा देश को बाँट देना।

अफसोस की बात है कि 1946 म उन कागजात पर ध्यान नही दिया गया। क्योकि उनम 1947 की खून खराबी का अदेशा साफ बताया गया था। जरा सोचिए कि उस समय अगर कुछ किया गया होता तो सरकार और जी० एच० क्यू० क तैयारी करन क लिए उन्ह अठारह महीने मिलते जिसम सरहद के क्षेत्रो क लिए एक निष्पक्ष सिविल सर्विस तैयार हो जाती सेना का फिर स वर्गीकरण हो जाता। यह सब कुछ बडी सावधानी स सिफ कागज पर हो सकता था ताकि जब बँटवारे का फैसला हो जाए तो फौरन सारा काम पूरा हो। लकिन उन लोगो न मेरे कागजात एक ओर रख दिए। नतीजा इतना बुरा हुआ कि उसकी कल्पना नही की जा सकती।

टकर ने जो कागजात तैयार किए थे उसका प्रमुख बातें इस प्रकार थी —

1 हिन्दुस्तान का बँटवारा करना ही होगा इसलिए फौज का भी साम्प्रदायिक टुकडियो म फिर स बाँट देना चाहिए।

2. इन साम्प्रदायिक टुकडी क नियन्त्रण म सशस्त्र पुलिस की एक मजबूत टुकडी होनी चाहिए जो आन्तरिक सुरक्षा-सेना की तरह काम कर सके।

3 एक केन्द्रीय निष्पक्ष सेना तैयार होनी चाहिए जो सिख हिन्दू मुस्लिम क्षेत्रो म अनिवायत होनेवाले दगे क समय उन प्रान्तो पर रोक और बाहरी सीमा रेखा की रखवाली कर सके।

4 सारा ब्रिटिश कामनवेल्थ सुरक्षा क्षेत्र के भीतर ही हो।

5 निष्पक्ष सेना में हिन्दुस्तानियों को भरने की जल्दी न की जाय बल्कि साम्प्रदायिक दृष्टि से और सैनिक दृष्टि से इसे मजबूत बनाया जाय ताकि यह उस सेना की रीढ़ बन सके जो किसी दिन फिर इसे एक देश बना सके।

6 आजादी की शक्ल के बारे में कोई भी फैसला करने के पहले ऊपर बताई गई सभी टुकड़ियाँ अपनी जगह पर तैनात होनी चाहिए और झटके को झेलने के लिए तैयार रहनी चाहिए।

अगर फौज के एक पुराने अफसर ने इतने महत्व के कागजात 1945[1] और 1946 में जी० एच० क्यू० के पास भेजे तो यह कैसे सम्भव हो सकता है कि इन कागजातों में जिन खतरों की ओर ध्यान खींचा गया था उसके लिए मई, 1947 तक सेना के प्रधान सर क्लाड आचिनलेक ने कोई तैयारी नहीं की थी। इन महीनों में टकर अपने प्रधान को सुझाव-पर-सुझाव देता रहा। उनमें से एक सुझाव यह था कि थोड़े से अंग्रेज सिपाही और हिन्दुस्तानी सेना के चालीस गोरखा बटालियन को मिलाकर एक निष्पक्ष सेना तुरन्त बनाई जाय। आचिनलेक ने इस सुझाव को तुरन्त ठुकरा दिया। 2 जून, 1947 को वायसराय के साथ खाना खाने के बाद टकर ने लॉर्ड इस्मे के कोट में फूल लगाते हुए अपने सुझाव को दुहराया। उसने यह भी सुझाया कि फौज की टुकड़ियों को उचित जगह पर तैनात कर देना चाहिए ताकि जब तक दंगे का खतरा हो, वे अपनी जगह बनी रहें।

इस्मे ने सिर हिलाकर कहा—'नेहरू इसके लिए तैयार नहीं होगा।'

आचिनलेक भी सेना के विभाजन के लिए तैयार नहीं होगा। हिन्दुस्तानी नेताओं ने जब बँटवारे का फैसला कर लिया तो उनकी पहली माँग थी अपनी अलग फौज की। माउण्टबेटन और इस्मे, दोनों ने यह सलाह दी कि फिलहाल की निष्पक्षता के लिए ब्रिटिश अध्यक्षता में एक ही सेना रहनी चाहिए। जिन्ना और नेहरू ने तुरन्त लगाम खींची। साफ था कि जब तक उनके अपने अधीन सेना न हो वे इसे आजादी मानने को तैयार ही नहीं थे। 15 अगस्त आजादी के लिए निश्चित किया गया था। जिन्ना और नेहरू की जिद थी कि उस दिन तक हिन्दुस्तानी फौज का अलग-अलग कमाण्ड के साथ बँटवारा पूरा हो जाना चाहिए।

इस्मे ने आचिनलेक को पहले ही बुलाया था और सेना के पुनर्वर्गीकरण की योजना तैयार करने के लिए कहा था। कमाण्डर-इन-चीफ ने जवाब दिया था कि यह असम्भव है। हिन्दुस्तानी सेना को बाँटने का अर्थ था इसे तहस-नहस कर देना और वह इसे करना नहीं चाहता था, क्योंकि वह इसमें विश्वास नहीं करता था। उसके कहने का तात्पर्य यह था : 'दुनिया की सबसे बड़ी सेना हमारे पास है। इसको तोड़ा नहीं जा सकता।'

उसे हुक्म दिया गया कि वह वायसराय से मिले। यह याद रहे कि माउण्टबेटन ओहदे में कम होते हुए भी दो बार आचिनलेक से ऊँचे पदों पर रह चुका था, जहाँ आचिनलेक भी काम कर रहा था।

---

1. रेखांकन स्वयं लेखक के हैं।

एक बार बर्मा में उसने सैनिक अधिनायक का पद ग्रहण किया था। अब वह वायसराय था और इस हैसियत से सेनाध्यक्ष पर हुक्म चला सकता था। स्थिति सँभालने के लिए माउण्टबेटन ने हिन्दुस्तान आने के पहले आचिनलेक को पत्र भी लिखा था

'मेरे प्रिय क्लाड, भगवान् जानता है कि मैंने नौसेना में वापस जाने के लिए क्या नहीं किया। चूँकि राजा ने मेरी बात काट दी, और मैं हिन्दुस्तान आ ही रहा हूँ, मैं आपको यह जताना चाहता हूँ कि आपके-जैसा सच्चा दोस्त हिन्दुस्तान में है, यही बात मेरे लिए काफी फर्क कर देती है। मैं उम्मीद करता हूँ कि हम लोगों को काफी मिलने-जुलने का मौका मिलेगा। मिलने की प्रतीक्षा में डिकी।'[1]

जब देश के बँटवारे का फैसला हुआ तो आचिनलेक और माउण्टबेटन दोस्त नहीं रह गए थे, कम-से-कम सहयोगी तो नहीं ही थे। वायसराय ने सेनाध्यक्ष को आज्ञा दी कि सेना के पुनर्वर्गीकरण का काम तुरन्त शुरू हो जाना चाहिए और इस बारे में किसी तरह की सकीर्णता नहीं चलेगी।

आचिनलेक के पक्षवाले और उसके जीवनी-लेखक का यह मत है कि इसके बाद वह वायसराय और हिन्दुस्तानी नेता के पंजे में नाचता रहा। हो सकता है कि यही बात हो। कुछ ही सप्ताह पहले (8 अप्रैल) माउण्टबेटन ने कहा था कि हिन्दुस्तानी सेना का विभाजन नहीं होगा, क्योंकि 'इसका रास्ता हमें ऐसा नहीं करने देगा और मैं करूँगा भी नहीं।'[2] लेकिन इसमें तो इस बात का युक्तिसंगत जवाब नहीं मिलता कि उसने इतने पर भी कोई योजना बनाकर क्यों नहीं रखी। जर्मनों ने ब्रिटेन पर 1940 में तो चढ़ाई नहीं की थी। फिर भी जनरल स्टाफ ने एक योजना तैयार कर ली थी कि कहीं चढ़ाई हो ही जाय।

माउण्टबेटन के उच्च सहकारियों में से एक ने लेखक को बताया कि 'अन्ततः क्लाड को यह काम करने के लिए हुक्म देना पड़ा। उसे यह अच्छा नहीं लगा। आपको यह अचरज होगा कि इसकी अनिवार्यता समझने में उसे कितनी देरी लगी।' ...'क्लाड के साथ मुसीबत यह थी कि वह बहुत ही नाजुक और भावुक पौधा था। उसके साथियों के कुछ पत्र प्रकाशित हुए हैं, जो कहते हैं कि वह हर बात के बारे में ठीक था और उन पत्रों में जो प्रमाण है वह इसे साबित करनी है। लेकिन यह साबित नहीं होता। जब सब कुछ ठीक होता उस समय भी क्लाड इतना अनिश्चित होता कि उसे साहस दिलाने की जरूरत पड़ती थी। उसको पत्र लिखना पड़ता था ताकि उसका अपने ऊपर विश्वास बना रहे। अगर इतिहास के बारे में ज्यादा ईमानदारी बरती जाती तो कहीं अच्छा होता। उसे जो करना चाहिए था और हमलोगों ने उसे जो करते देखा, ये दोनों एक नहीं हैं।'

---

1. जान कोनेल की रचना आचिनलेक में उद्धृत।
2. ए० कैम्बेल-जानसन, मिशन विद माउण्टबेटन।

आचिनलेक शीर्षक किताब में मि० जॉन कॉनेल ने हिन्दुस्तानी फौज के बँटवारे के बारे में यों लिखा है :—

'आचिनलेक के व्यक्तिगत नेतृत्व और कर्त्तव्य के प्रति उनकी स्वार्थहीन निष्ठा के बग़ैर यह पेचीदा काम शुरू में ही उलट-पलट हो जाता।' दरअसल जुलाई के शुरू में (आज़ादी के छः सप्ताह पहले) कमाण्डर-इन-चीफ ने आर्म्ड फोर्सेज़ रिकन्स्टीट्यूशन कमेटी को हिदायतें और सलाह भेजनी शुरू की। जिस तरह वह हिचकिचाता रहा और जिस तरह उसने देरी की, उसे देखते हुए बड़ा ही व्यंग्यात्मक लगता है कि उसने अपने नोट में इस तरह लिखा :

'हिन्दुस्तानी फौज का बँटवारा, निश्चय है कि बड़ा ही पेचीदा सिलसिला होगा। अगर बिना किसी उलझन या नैतिक साहस और कार्यक्षमता के ह्रास के बग़ैर यह काम पूरा करना है तो यह जरूरी है कि हिन्दुस्तान की पूरी फौज एक अनुशासनीय टुकड़ी के नियन्त्रण में तब तक रहे जब तक कि :

(क) साफ-साफ दो सेनाओं में उनका विभाजन हो जाय, और

(ख) दोनों सरकारें उनका अनुशासकीय भार सँभालने की स्थिति में आ जायें यानी उनका वेतन, भोजन, कपड़ा और हथियार दे सकें।

2 दूसरी तरफ़ यह जरूरी है कि हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के क्षेत्र में ऐसी सेना होनी चाहिए, जो :

(क) 15 अगस्त से उनके नियन्त्रण (ऑपरेशनल कण्ट्रोल) में हो,

(ख) 15 अगस्त को उनका स्वरूप ऐसा होना चाहिए कि वे ग़ैर-मुसलमान और मुसलमान हिस्सों में बँटे हों, और

(ग) 15 अगस्त के बाद जितनी जल्दी हो सके, क्षेत्र के आधार पर उनका पुन-संगठन हो जाय।

3 ऊपर लिखी गयी आवश्यकताओं (अनुच्छेद ग) के अनुसार यह जरूरी हो जाता है कि विभाजन दो स्थितियों में हो। पहली स्थिति में तो मोटे तौर पर वर्तमान सेना का साम्प्रदायिक आधार पर विभाजन हो जाय। इसकी योजना तुरन्त तैयार होनी चाहिए कि जितनी टुकड़ियाँ मुस्लिम-प्रधान हों वे पाकिस्तान के क्षेत्र में आ जायें और ग़ैर-मुसलमान या ग़ैर-मुसलमान प्रधान टुकड़ियाँ हिन्दुस्तान के क्षेत्र में।… …

4 दूसरी स्थिति यह होगी कि इन टुकड़ियों की, स्वेच्छा से तबादला चाहनेवालों की दृष्टि से जाँच की जाय। फौज के हर सदस्य को यह अधिकार होना चाहिए कि वह किस उपनिवेश में काम करेंगे, इसका चुनाव कर सकें। हालाँकि इसके साथ एक शर्त भी जोड़नी पड़ेगी कि पाकिस्तान का कोई मुसलमान अगर फौज में काम कर रहा है तो उसे हिन्दुस्तान की फौज में शामिल होने का हक़ नहीं होगा। इसी तरह हिन्दु-स्तान के ग़ैर-मुसलमान पाकिस्तान की फौज का चुनाव नहीं कर सकेंगे।……

5 अगर 15 अगस्त से दोनों सरकारों का अपनी अपनी सेना पर नियन्त्रण होना है तो यह जरूरी है कि उनमें से हरएक की सेना के तीनों विभागों यानी जलसेना, थल सेना और हवाई सेना के अध्यक्ष चाहिए तथा केन्द्रीय दफ्तर और उसके कर्मचारी।

इसलिए यह जरूरी है कि ये अध्यक्ष तुरन्त चुने जाने चाहिए।······

6 जहाँ तक केन्द्रीय अनुशासन का सवाल है, हिन्दुस्तानी फौज, सारी की सारी, हिन्दुस्तान के वर्तमान सेनाध्यक्ष (कमाण्डर-इन-चीफ) के अधीन अनुशासन के लिए होगी और कमाण्डर-इन चीफ सयुक्त सुरक्षा काउन्सिल (ज्वाइण्ट डिफेंस काउन्सिल) के अधीन होगा।······ हिन्दुस्तान के कमाण्डर-इन-चीफ पर कानून और व्यवस्था की कोई जिम्मेदारी नही होगी, न तो काम के मामले म सिर्फ एक उपनिवेश से दूसरे उपनिवेश को जानेवाली टुकडी को छोडकर किसी टुकडी पर उसका नियन्त्रण (ऑपरेशनल कण्ट्रोल) रहेगा। दोनो मे से किसी भी उपनिवेश की सीमा के भीतर टुकडियो को एक जगह से दूसरी जगह भेजने का भी अधिकार उसे नही होगा।

7 उलझन मिटाने के लिए हिन्दुस्तान के वर्तमान सेनाध्यक्ष (कमाण्डर इन चीफ) को 15 अगस्त से लेकर तब तक, जब तक कि उसका काम पूरा न हो जाय, सुप्रीम कमाण्डर के नाम से पुकारा जाना चाहिए। जैसे-जैसे उसका काम कम होता जायगा, उसी तरह उसका स्टाफ भी छोटा होता जायगा।'[1]

इसमे कोई आश्चर्य नही कि कलकत्ता मे टकर उबलने लगा और पजाब म नृशसताओ की उसने भविष्यवाणी की। लेकिन ईस्टर्न कमाण्ड की यह बात नही थी जहाँ टक्कर की बात चलती थी, क्योकि ऐसी स्थिति का सामना करने की उसने व्यवस्था कर ली थी। जब समस्या सामने आई तो जो फौज उसका सामना कर सकती थी, एक फौजी अफसर के शब्दो म, 'वह आपस का आदान प्रदान कर रही थी और नौकरी स कही ज्यादा उलझी थी। साम्प्रदायिक दगे के लिए उसे फुरसत ही नही थी।'

इस क्षण के बाद से आचिनलेक की प्रधान चिन्ता थी हिन्दुस्तान के अग्रेजो की सुरक्षा। इस समय तक उसे पक्का विश्वास हो गया था कि हिन्दुस्तान की आजादी के बाद अग्रेजो का कत्लेआम होगा। उसने ऐसा क्यो सोचा, यह समझना मुश्किल है। इसम कोई शक नही कि हिन्दुस्तानियो के दिमाग को उसने गलत समझा। यह ठीक है कि हिन्दुस्तान की जनता, हिन्दू और मुसलमान अग्रजो से मुक्ति चाहते थे। उन्होने 'भारत छोडो' का नारा लगाकर आजादी के लिए दगे किए थे। और उस समय अग्रेज अफसर या इक्का दुक्का अग्रज जो उनके रास्ते आडे आया था, उसको कत्ल भी किया गया था।

लेकिन व्यक्तिगत रूप म घृणा का पात्र होने से अग्रज बहुत दूर थे। उनम जो अच्छे थे वे प्यार की नजर से देखे जाते थे। इन सबके बावजूद आचिनलेक ने यही विश्वास करना चाहा कि जिस क्षण अग्रजी राज खतम होगा, उनका खून बहाया जायगा। क्या सचमुच उसका यही विश्वास था? या ब्रिटिश फौज को हिन्दुस्तान म रखने की आवश्यकता का वह सिर्फ माउण्टबेटन को विश्वास दिला रहा था, किन्ही और जरूरतो के लिए जिसकी वायसराय को तो जानकारी नही थी लेकिन युद्ध विभाग के कुछ हिस्सो को थी?

1 भारत सरकार के कागजात से।

जो भी कारण रहा हो, उसने बड़ी सचाई से माउण्टबेटन को लिखा कि कम-से-कम 1 जनवरी, 1948 तक ब्रिटिश फौज रखी जानी चाहिए। जैसाकि टकर ने सुझाया था, हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की अनुमति से झगड़े मिटाने के लिए नहीं, बल्कि ब्रिटिश हितों की सुरक्षा के लिए।

वायसराय की ओर से इस्मे ने कमाण्डर-इन-चीफ को इन शब्दों में जवाब दिया —

'ब्रिटिश फौज की वापसी के बारे में आपके कागजात सीओएम (47) 29 वीं के लिए वायसराय ने आदेश दिया है कि आपको धन्यवाद दूं। अनुच्छेद 8 (बी) के सुझावों का जहाँ तक सवाल है, वायसराय समझते हैं कि 1 जनवरी, 1948 तक ब्रिटिश फौज को रोकने की जिद सम्भव नहीं। उनके विचार से ऐसी हालत में हमें अपनी सुरक्षा के लिए ऐसी व्यवस्था करनी पड़ेगी जिसमें हिन्दुस्तान स्थित ब्रिटिश फौज कमाण्डर इन चीफ के मातहत होगी, जो गवर्नर-जनरल या गवर्नर-जनरलों की मारफत बर्तानिया सरकार के मातहत होगा। इस व्यवस्था की माँग बर्तानिया सरकार और चीफ और स्टाफों द्वारा होगी लेकिन हिन्दुस्तान और पाकिस्तान, दोनों सरकारों के लिए यह बहुत अशोभनीय होगी। इस तरह, वायसराय के दिमाग में जो लक्ष्य है वही पूरा नहीं हो सकेगा अर्थात् जिस दिन से सत्ता सौंपी जाय, उसी दिन से हर मामले में दोनों सरकारें स्वतन्त्र हों और पुराने बन्धन का लेश भी नहीं रहे।

जहाँ तक इसका सवाल है कि जो अंग्रेज लौटना चाहते हैं, जब तक उनकी तैयारी पूरी न हो जाय, उनकी सुरक्षा की नैतिक जिम्मेदारी बर्तानिया सरकार पर है, ऐसा लगता है कि उनकी संख्या बहुत थोड़ी होगी और इन्हें एक-दो महीनों में भेज दिया जा सकेगा। किसी भी हालत में, 15 अगस्त के बाद सभी राष्ट्र के लोगों की, निश्चय ही अंग्रेजों की सुरक्षा की जिम्मेदारी हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की सरकारों पर होगी। जब तक कि ये सरकारें यह माँग न करें कि इस काम के लिए ब्रिटिश फौज का रहना जरूरी है, तब तक हमारी ओर से इसके लिए जिद करने का अर्थ होगा—यह कबूल करना कि हमने इस जिम्मेदारी के लिए उन पर विश्वास नहीं किया। और अन्ततः अगर ऐसी नौबत आ भी गई, तो पूरे देश में अंग्रेजों की सुरक्षा के लिए मुट्ठी-भर अंग्रेज सिपाही बहुत-कुछ कर भी न सकेंगे।

वायसराय ने मुझे यह भी जोड़ देने के लिए कहा है कि (क) इण्डिया-बर्मा कमेटी की बैठक (आई० बी० 47, 28वीं बैठक, 9वां आइटम) में 28 मई, 1947 को उन्होंने कहा था कि सत्ता सौंपनेवाला कानून के पास होते ही हिन्दुस्तान से ब्रिटिश फौज को हटा लेने में सभी फायदे ही हैं। कमेटी ने फैसला किया था कि जब सभी चीफ्स ऑफ स्टाफ के विचार आ जाएँ तो इसकी छानबीन की जाय और (ख) प्रेस-कान्फ्रेंस में वायसराय ने यह उम्मीद दिखाई थी कि दोनों नये उपनिवेशों को उपनिवेश का दर्जा जैसे ही मिल जायगा, वैसे ही ब्रिटिश फौज हट जायगी। हालांकि इन्हीं पूरे शब्दों में उन्होंने नहीं कहा था, पर यही धारणा बनाने की कोशिश की थी।

इन परिस्थितियों में वायसराय इस निश्चय पर पहुँचे हैं कि राजनीतिक कारणों

से ब्रिटिश फौज की वापसी जितनी जल्द स हो सके, हो जानी चाहिए। उनका यह भी विचार है कि बर्तानिया सरकार की ओर से बहुत जल्द ऐसी घोषणा की गई तो उसका बहुत ही अच्छा राजनीतिक प्रभाव पड़ेगा। इसलिए वायसराय यह चाहते हैं कि आपकी मजूरी के बाद (क) ऊपर लिखे गए निष्कर्ष सेक्रेटरी ऑफ स्टेट ऑफ इण्डिया के पास भेज जायें और बर्तानिया सरकार की स्वीकृति ली जाय और (ख) बर्तानिया सरकार से अनुमति ली जाय कि घोषणा के पहले यह नीति नेताओं के सामने रख दी जाय। साथ ही साथ नेताओं से यह भी कहा जाय कि अगर दोनो दल प्रारम्भिक कठिनाइयों को संभालने के लिए ब्रिटिश फौज को, मान लीजिए, छः महीने के लिए चाहें, तो बर्तानिया सरकार के पास यह आवेदन भेज दिया जायगा।[1] यह तो निश्चित ही है कि ब्रिटिश फौज को उचित सुरक्षा के साथ ही रखा जायगा, यह वायसराय नेताओं को समझा देंगे।

जल्द-से-जल्द आप अपने विचार भेज दें, वायसराय आभारी होंगे। अगर मेरे यहाँ आकर बातचीत करने से सुविधा हो तो सेवा के लिए हाजिर हूँ। हमेशा आपका, इस्मे।"[2]

इस्मे को दर्दीला जवाब मिला और वायसराय के कान म भनभनाती मक्खी।

20 जून को आचिनलक ने लिखा—

मेरे प्यारे इस्मे ब्रिटिश फौज की हिन्दुस्तान से वापसी के बारे म 18 जून के पत्र के लिए धन्यवाद।

2 इस विषय पर अपने विचार व्यक्त करने के अनुरोध के बाद ही मैंने अपने *कागजात सीओएस (44) 29 वी वायसराय के पास भेज थे।* सभी फौजी मामला म वायसराय के सलाहकार की हैसियत स, मेरे विचार उन कागजात मे है। स्वाभाविक है कि मेरा दृष्टिकोण सामान्य सैनिक का रहा है। हिन्दुस्तान के कमाण्डर-इन-चीफ की हैसियत म मेरा एक यह भी कर्त्तव्य है कि जब नागरिक प्रशासन माँग करे तो अनुशासन और सुरक्षा की व्यवस्था करूँ।

3 उपरोक्त कागजात म मैंने जो सलाह दी थी, मैं अभी भी उसी पर दृढ़ हूँ। लेकिन मैं यह महसूस करता हूँ कि बड़े राजनीतिक कारणों से इन सलाहों को नजर-अन्दाज करने का हर हक वायसराय का है। यह सोलह आना उनकी जिम्मेवारी है और उनके निश्चय पर टीका टिप्पणी करना मेरा काम नही। उसे मानना मेरा कर्त्तव्य है और मैं उसे मानता भी हूँ।

4 मुझे भय है कि मैं आपके इस विचार म सहमत नही हो सकता कि मुट्ठीभर ब्रिटिश फौज अंग्रेजों की सुरक्षा नही कर सकगी। यह मेरा और मेरे सहकारियो का निश्चित मत है कि कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली और कराची-जैसी जगहो मे ब्रिटिश फौज की छोटी टुकड़िया स भी बात बहुत बदल जायगी अगर देश मे ब्रिटिश विरोधी

---

1 ऐटेलिक स्थल लेखक के है।

2 भारत सरकार के कागजात से।

या यूरोपीय विरोधी भावना भड़क उठे । मैं यह मानता हूँ कि ज़िला में रहनेवाले हर अंग्रेज़ की रक्षा व नहीं कर सकेंगे। लेकिन इनका सबसे बड़ा हिस्सा तो बड़े शहरों और बन्दरगाहों में इकट्ठा है । मेरा निवेदन है कि यह विचार सरकारी कागज़ पर दर्ज कर लिया जाय और वायसराय बर्तानिया सरकार के पास जो पत्र भेजनेवाले हैं, उसमे इसे भी शामिल कर लिया जाय । क्योंकि इस तरह बर्तानिया सरकार के सामने ग़लत चित्र पेश होगा, अगर हम लोग यह कहें कि हम कुछ नहीं कर सकते । सारा कुछ उस समय की परिस्थिति पर निभर करता है । लेकिन फौजी सलाहकार की हैसियत से वायसराय को दिये गए ये मेरे सुझाव हैं ।

6 अपने प्रति और फौजी सलाहकार की हैसियत से अपने कर्तव्य की राह पर मैं यह वायसराय को बता देना चाहता हूँ कि ब्रिटिश फौज की वापसी के बाद ब्रिटिश और यूरोपियनों की रक्षा के लिए नागरिक प्रशासन के पास हिन्दुस्तानी फौज एकमात्र साधन रह जाती है । इस फौज का भी पुनसगठन हो रहा होगा जिस दौरान मे अधिकांश टुकड़ियाँ, अगर उसके अफसर और आदमी चाहें भी और जिसका किसी भी तरह का आश्वासन मैं नहीं दे सकता ब्रिटिश और यूरोपियनों की रक्षा मे नागरिक प्रशासन की सहायता नहीं कर सकेंगी ।[1] फौज के व्यवस्थित और तकसंगत पुनसगठन के लिए उत्तर हिन्दुस्तान में आन्तरिक सुरक्षा के काम के लिए बिखरे हुए विभिन्न टुकड़ियों व छोटे-छोटे दलों को वापस बुलाना होगा। अगले 6 महीने या उससे भी ज्यादा समय तक हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के बीच टुकड़ियाँ लगातार इधर-से उधर आया-जाया करेंगी और इस तरह ये टुकड़ियाँ उस समय तक के लिए बेकाम रहेंगी ।

7 इसके साथ साथ किसी निश्चय से मैं यह भी नहीं कह सकता कि पुनसगठन के इस दौरान मे फौज मे परस्पर एकरूपता की भावना रह सकेगी या नहीं और बड़े पैमाने पर अशान्ति फैली तो नागरिक प्रशासन के लिए वह विश्वसनीय साधन रह सकेगी या नहीं ।[2] परिस्थिति के इस पहलू पर मैंने विस्तार में लिखा है क्योंकि मैं यह वायसराय और उनकी मारफत बर्तानिया सरकार को स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि पुनसगठन के दौरान में अगर मैं सेना का प्रधान रहा जैसाकि शायद प्रस्तावित है, तो ब्रिटिश फौज के वापस जाने के बाद ब्रिटिश जान माल की सुरक्षा के लिए मैं जिम्मेदार नहीं हूँगा अगर वैसी संकट की स्थिति आई । मैं उम्मीद करता हूँ कि ऐसा मौका नहीं आयेगा । लेकिन यह हो भी सकता है और उस हालत में मेरी तथा मेरे अधीनस्थों की हिन्दुस्तानी फौज की वास्तविक स्थिति बर्तानिया सरकार के सामने साफ हो । वायसराय के दिल्ली लौटने से पहले मैं इस सम्बन्ध में आपसे बात करने के लिए बहुत इच्छुक हूँ । आपका—क्लाड आचिनलेक । पुनश्च: हमलोगों ने इस पर रात बात की लेकिन अगर आप और बात करना चाहें तो मैं सेवा में हाजिर हूँ ।[3]

---

1 रेखांकन स्वयं लेखक के हैं ।

2 वही ।

3 भारत सरकार के कागजात में ।

मजबूरन यह सवाल फिर पूछना पड़ता है कि क्या सचमुच ग्राचिनलेक का यह 'विचार था कि ब्रिटिश फौज के हटते ही अंग्रेजों को मौत के घाट उतार दिया जायगा? या यह सिर्फ उसके विचार स्पष्ट करने का तरीका था—वह हिन्दुस्तानी फौज के बँटवारे के खिलाफ था, लेकिन वायसराय और हिन्दुस्तानी यह चाहते हैं कि बँटवारा हो तो उस हालत में ब्रिटिश फौज की उपस्थिति ही देश को मुसीबतों से बचा सकती है।

उसकी नीयत जो भी रही हो, यह साफ था कि इसके लिए वायसराय का कोई सहयोग उसको नहीं मिल सकता था। माउण्टबेटन हिन्दुस्तानी नेताओं, खासकर कांग्रेस के साथ राजनीतिक शान्ति बनाये रखने के लिए इतना उत्सुक था कि ब्रिटिश 'फौज के बारे में वहम छेड़कर खतरा उठाने का सवाल ही नहीं था उसके सामने। दोनों देश इस पर अड़े थे कि 15 अगस्त को उनको अपनी राष्ट्रीय सेना चाहिए। उन्हें 'परवाह ही नहीं थी कि इस काम में क्या विशृंखलता या अराजकता होती है अथवा लड़ाई के साधन के रूप में हिन्दुस्तानी फौज नष्ट ही क्यों नहीं हो जाती। हिन्दुस्तानी 'फौज के लिए उनमें वह रहस्यमय आकर्षण नहीं था जो बहुत-से अंग्रेज अफसरों में था। उन्होंने तो हिन्दुस्तानी फौज को हमेशा एक तरह की वितृष्णा से देखा था क्योंकि नौकरशाही के इस साधन का उनकी उचित राजनीतिक आकांक्षाओं को दबाने में अक्सर प्रयोग किया गया था। उन राजनीतिज्ञों को तो इस पर भी अफसोस नहीं होता अगर यह सेना तोड़ ही दी जाती और इसकी जगह सचमुच राष्ट्रीय सेना '(मुस्लिम और हिन्दू) गठित होती।

ब्रिटिश फौज के हिन्दुस्तान में रहने के सवाल पर मुस्लिम लीग और कांग्रेस के 'अलग-अलग मत थे। हिन्दुस्तान का बँटवारा जब दोनों दलों ने मान लिया तो कुछ समय बाद ही जिन्ना की ओर से गैररस्मी तौर पर लियाकतअली ने लॉर्ड इस्मे से मुलाकात की और पूछा कि सत्ता सौंपने के बाद क्या ब्रिटिश फौज पाकिस्तान में रह सकती है? इस्मे ने वायसराय से सलाह की जिसका मत था कि एक ओर से अगर यह माँग हो तो उसे नहीं मंजूर करना चाहिए। उसने सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फार इण्डिया को तार भेजा और यह अनुमति चाही कि (क) 'मुझे यह अधिकार दिया जाय कि दोनों भावी उपनिवेशों के प्रतिनिधियों से पूछूँ कि वे 15 अगस्त के बाद ब्रिटिश फौज को रखना चाहते हैं या नहीं, (ख) जब तक कि दोनों यह माँग न पेश करें, ब्रिटिश 'फौज की वापसी 15 अगस्त को शुरू हो जानी चाहिए और जल्द-से-जल्द इसे पूरा करना चाहिए और (ग) अगर दोनों इसकी माँग करें तो ब्रिटिश फौज की वापसी का दिन अस्थायी तौर पर 1 अप्रैल, 1948 निश्चित होना चाहिए तथा परिस्थिति का लेखा-जोखा 1 जनवरी, 1948 को लिया जाना चाहिए।'

उसी तार में वायसराय ने यह जोड़ दिया कि 'अगर दोनों उपनिवेशों के प्रतिनिधि ब्रिटिश फौज को रोकना न चाहें तो आचिनलेक की सिफारिश है कि बर्तानिया सरकार को इसके लिए जोर देना चाहिए कि 1 जनवरी, 1948 तक ब्रिटिश फौज रहे ताकि 'ब्रिटिश जान बचाने की बर्तानिया सरकार की नैतिक जिम्मेदारी पूरी हो सके।'

उसने यह भी लिखा— मैं आचिनलेक की सिफारिश से असहमत हूँ। कारण ये हैं (क) यह उम्मीद की जाती है कि दोनों सरकारों की मर्जी के खिलाफ ब्रिटिश फौज रोक ली गई तो उपनिवेश सरकार सुरक्षा का आश्वासन भी चाहेगी। यह दोनों सरकारों के लिए बहुत ही अशोभनीय होगा और हमारा प्राथमिक कार्य ही असफल होगा यानी सत्ता सौंपने की तारीख से सोलह आने स्वशासन की स्थापना। जैसाकि मैंने हमेशा जोर दिया है अगर हम लोग बिना किसी बन्धन के सोलह आने स्वशासन स्थापित कर सके तभी हिन्दुस्तान के उपनिवेश में रहने का सबसे अच्छा मौका मिल सकेगा।[1]

इसी जगह माउण्टबेटन ने अपनी सबसे बड़ी महत्त्वाकांक्षा स्पष्ट की क्योंकि अब हिन्दुस्तानी नेताओं के साथ समझौता हो गया था। नेहरू और उनके साथियों को तुरन्त स्वतन्त्रता का लालच देकर कामनवेल्थ के जाल में फँसाने के बाद वायसराय चाहता था कि वे उसी जाल में फँसे रहें और वह इसके लिए बड़ी कीमत चुकाने के लिए तैयार था (जिन्ना को लालच दिखाने की जरूरत नहीं थी। जिन्ना खुद ही आ गया था)। वह आचिनलेक को राह में रोड़ा अटकाने देने के लिए किसी भी हालत में तैयार नहीं था।

सेक्रेटरी आफ स्टेट फार इण्डिया ने जवाब दिया कि वह उसके सुझावों से सहमत है (और इस तरह आचिनलेक से असहमत) और वायसराय को यह भी अनुमति दी कि वह दोनों उपनिवेशों के प्रतिनिधियों से ब्रिटिश फौज के रखने के बारे में रस्मी तौर पर पूछताछ करे।

लियाकतअली ने जवाब दिया कि पाकिस्तान इसके पक्ष में है। नेहरू का उत्तर था

15 अगस्त के बाद यहाँ ब्रिटिश फौज रखने के बजाय अगर सभी गाँव जलकर खाक हो जाएँ तो भी मैं तैयार हूँ।

उसके ये शब्द उसी साल पीछे चलकर उसे कुरेदनेवाले थे।

उस क्षण तक वतन गरम जरूर हो गया था लेकिन उसमें उबाल नहीं आया था। अभी भी पंजाब, बिहार और बंगाल में दंगे और रक्तपात बन्द नहीं हुए थे। लेकिन जो होनेवाला था उसके मुकाबले ये सब बहुत ही छोटी घटनाएं थीं जिन्हें सँभाला जा सकता था या जिन्हें उसी क्षेत्र में सीमित रखा जा सकता था। वायसराय भवन और लंदन के बीच तार आते-जाते रहे और प्रस्तावित बिल में संशोधन होते गए। एक टुकड़े में यह खास तौर पर कहा गया कि सत्ता सौंपने के बाद भी ब्रिटेन को फौजी केन्द्र हिन्दुस्तान में रखने का हक होगा। वी० पी० मेनन ने तुरन्त मेवील के पास एक नोट भेजा— मुझे पता नहीं वायसराय ने इस पर क्या निश्चय किया है। इस टुकड़े के साथ तो बिल राजनीतिज्ञों के सामने नहीं टिक सकेगा। जैसाकि मैंने वायसराय से कहा था कांग्रेसी नेता इस पर कभी राजी नहीं होंगे।

---

1 भारत सरकार के कागजात से।

यह हिस्सा निकाल दिया गया।

इण्डिया ऑफिस से एक तार आया जिसमें लिखा था

'शाही घोषणा में उन नये लोगों का नाम किस तरह लिया जायगा जो पद ग्रहण करेंगे ? तरीका तो यह है कि नामों के आगे स्क्वायर जोड़ा जाता है। लेकिन वर्तमान परिस्थिति में यह जँचता नहीं है। यह मान लिया जाय कि पटेल और बलदेवसिंह के लिए सरदार लिखा जाय, जहीर के लिए सैयद, प्रसाद और मथाई के लिए डाक्टर, नेहरू के लिए पंडित और राजगोपालाचारी के लिए सी० तो बोस और आसफअली के लिए क्या लिखा जाय ?'

एवेल ने जवाब दिया—'पटेल, बलदेवसिंह, प्रसाद, मथाई और नेहरू के लिए उपसर्ग (प्रीफिक्स) ठीक हैं। बोस और आसफअली के लिए स्क्वायर होना चाहिए। राजगोपालाचारी के लिए श्री होना चाहिए, सी नहीं।'

जिन्ना ने सुना कि प्रस्तावित बिल में दोनों उपनिवेशों को 'इण्डियन डोमिनियन्स' कहा गया है। उसने एक सख्त चिट्ठी भेजी। फिर बिल में सिर्फ 'डोमिनियन्स' रह गया।

बम्बई के गवर्नर सर जान कोल्वील ने यह स्पष्ट कर दिया कि सत्ता सौंपने के बाद अगर उसे यूनियन जैक या किसी तरह का झण्डा जिसमें यूनियन जैक भी शामिल हो, फहराने नहीं दिया गया तो वह नहीं टिकेगा।[1]

दोनों नये उपनिवेशों के झण्डे के बारे में भी वायसराय चुप नहीं था। अपना कुर्सीनामा तैयार करने के अलावा उसे झण्डों की डिजाइन आदि का भी शौक था। उसने खुद अपने हाथों से दोनों उपनिवेशों का झण्डा तैयार किया। एक का आधार था कांग्रेस का झण्डा गांधी के चर्खे के साथ। दूसरे का आधार था मुस्लिम लीग का चाँद। दोनों में 1/9 क्षेत्रफल का यूनियन जैक ऊपर मिला था। उसने जिन्ना और नेहरू के पास उन्हें 'नेक सलाह' के रूप में स्वीकृति के लिए भेज दिया।

जिन्ना ने सख्त जवाब दिया कि यह डिजाइन किसी भी हालत में नहीं स्वीकृत होगी, क्योंकि मुसलमानों की धार्मिक भावनाओं के लिए अच्छा नहीं होगा—चाँद के साथ क्रिस्तानी क्रॉस ! नेहरू ने डिजाइन को इसलिए अस्वीकृत कर दिया कि कांग्रेस के वामपक्षी यह समझ रहे हैं कि कांग्रेस अंग्रेजों के सामने घुटने टेक रही है हालाँकि गाँधी और पटेल ने पहले इसे स्वीकार कर लिया था। बात ऐसी जगह पर आ गई थी कि यह डिजाइन लादना अक्लमन्दी नहीं होगी। नेहरू ने कांग्रेस द्वारा तैयार एक डिजाइन वायसराय के पास भेजा जिसमें बाकी हिस्सा तो कांग्रेस के झण्डे जैसा ही था, चर्खे के बदले सारनाथ का अशोक-चक्र था और यूनियन जैक नहीं था।

वी० पी० मेनन ने प्रस्तावित बिल में एक और नुक्स निकाला — ऐसा लगता है कि इण्डिया ऑफिस यह माने बैठा है कि दोनों पार्टियाँ (पाकिस्तान और हिन्दुस्तान) वायसराय से गवर्नर-जनरल बन जाने का अनुरोध करेंगी। ऐसा लगता है कि इण्डिया

1 आजादी के बाद सर जॉन भारत में रुका और सभी मौकों पर शान से यूनियन जैक फहराता रहा—लेखक।

ऑफिस को यह उम्मीद है कि जिन्ना और नेहरू, दोनों वायसराय को इस पद को स्वीकार करने के लिए पत्र लिखेंगे और इन पत्रों का हवाला पार्लियामेंट में दिया जा सकेगा।'[1]

मेनन ने अपनी यह राय प्रकट की कि जल्दी से यह मत जिन्ना से मँगवाया जाय क्योंकि उसे झमेले की उम्मीद थी।

मेनन की राय बिलकुल ठीक थी। सत्ता सौंपने के पूरे सिलसिले में पाकिस्तान के गवर्नर-जनरल का मसला माउण्टबेटन के लिए सबसे झमेले का साबित हुआ।

जिस दिन मेनन के मसविदे के साथ वायसराय लंदन के लिए रवाना हुआ उसके एक दिन पहले यानी 17 मई, 1947 को इसकी शुरुआत हुई। यह ठीक है कि नेहरू ने इस योजना को देख लिया था और सिद्धान्ततः इसे स्वीकार करते हुए उसने माउण्टबेटन को लिखा था

'हम (कांग्रेस) इस प्रस्ताव से सहमत हैं कि उपनिवेश की स्थिति की अस्थायी अवधि में दोनों उपनिवेशों का एक ही गवर्नर-जनरल होना चाहिए। ' जहाँ तक हमलोगों का सवाल है, हमें खुशी होगी, अगर आप उस पद पर बने रहें और अपने अनुभव और सलाह से हमारी सहायता करें।'[2]

यह बात माउण्टबेटन को बहुत अच्छी लगी। भविष्य के इतिहास-ग्रन्थों की कल्पना में उसे बड़ा मजा आया जिनमें उसका नाम न सिर्फ उस आदमी की हैसियत से लिया जायगा जिसने हिन्दुस्तान को आजादी देने का रास्ता ढूंढ निकाला, बल्कि उस आदमी की हैसियत से भी जिसने नवजात उपनिवेशों को चलना और बोलना सिखाया। *व्यावहारिक तौर पर भी स्पष्ट सुविधाएँ थीं। हिन्दुस्तान की सम्पत्ति को बाँटने का मुश्किल काम शुरू ही हुआ था और उसके साथ-साथ झगड़े भी।* विलक्षण प्रतिभावाले दो हिन्दुस्तानी, एक मुसलमान (चौधरी मुहम्मदअली) और दूसरा हिन्दू (एच० एम० पटेल), जो अच्छे मित्र थे, इसके लिए जिम्मेदार थे। वे एक दूसरे की समस्याओं का खयाल कर काम कर रहे थे। लेकिन दोनों पर राजनीतिक नेताओं का अंकुश भी था। मुहम्मदअली को यह कहा जाता था कि उसने उचित हिस्सा नहीं लिया और एच० एम० पटेल को कि उसने जरूरत से ज्यादा दे दिया। निष्पक्ष फैसला और पंचायत द्वारा एक संयुक्त गवर्नर-जनरल इस काम को काफी सहज कर सकता था।

माउण्टबेटन ने नेहरू और पटेल को इशारा किया कि गवर्नर जनरल का पद सँभालकर उसे बड़ी खुशी होगी। लेकिन उसने यह भी कहा कि सिर्फ एक उपनिवेश का गवर्नर-जनरल बनना उसके लिए कठिन होगा। उसे उम्मीद थी कि इसी तरह का निमन्त्रण मुस्लिम लीग भी भेजेगी।

उसी दिन उसने जिन्ना और लियाकतअली खाँ को मिलने के लिए बुलाया। उसने बताया कि वह दूसरे दिन योजना लेकर लंदन जा रहा है। वह बर्तानिया सरकार से सिफारिश करेगा कि जितनी जल्दी हो सके, सम्भवतः 1 अक्तूबर तक पाकिस्तान और

1 भारत सरकार के कागजात से।
2 वही।

हिन्दुतान को आजादी दे दो (याद रहे, यह 17 मई की बात है और अब तब आजादी इतनी जल्दी देने के बारे में माउण्टबेटन ने नहीं सोचा था)। जिस सवाल की सफाई चाहिए वह यह थी कि क्या जिन्ना पाकिस्तान के लिए अलग गवर्नर-जनरल चाहेगा या हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के एक ही गवर्नर-जनरल के लिए राजी हो जायगा ? उसने जिन्ना के व्यक्तिगत विचार पूछे।

जैसे ही जिन्ना को पता चला कि जल्दबाजी हो रही है उसके साथ, तुरन्त उसके दिमाग में शक उभर आया। उसकी प्रवृत्ति थी कि अपनी गुफा में छिपकर दरवाजे पर बड़ा पत्थर रख द। उसकी ऐसी ही प्रतिक्रिया हुई। उसने कहा कि तुरन्त इस विषय पर वह कुछ नहीं कह सकता। जब वायसराय ने बहुत कुरेदा तो उसने कबूल किया कि इस विषय पर उसने सोचा है और उसकी समझ से दो गवर्नर-जनरल होना ज्यादा अच्छा होगा। उसने यह भी महसूस किया था कि बर्तानिया सरकार का एक प्रतिनिधि भी होना चाहिए, जो हिन्दुस्तान की सम्पत्ति के बँटवारे के लिए जिम्मेदार हो। उसने यह भी कहा कि उसकी बड़ी इच्छा है कि माउण्टबेटन इस पद पर हो क्योंकि 'मुझे आपकी निष्पक्षता पर पूरा भरोसा है और आपके फैसले हमें मान्य होंगे। इसके अलावा मैं बड़ा ही इच्छुक हूँ कि आप हिन्दुस्तान में रहे क्योंकि हमें आपकी जरूरत पड़ेगी।'

वायसराय न जवाब दिया कि जिन्ना की बातों स वह गौरवान्वित अनुभव करता है। लेकिन उसने ऐसे पद के बारे म कभी नहीं सोचा था और न ही किसी आदमी का नाम याद आ रहा था, जो इस पद पर आना चाहे। किसी भी हालत म उसने यह स्पष्ट कर ही दिया इस तरह के मध्यस्थ का पद अगर गवर्नर जनरलों के पद से ओहदे में नीचा हो (वे भी सम्राट् के ही प्रतिनिधि होंगे) तो काम नहीं चलेगा।

जिन्ना ने वादा किया कि वह अगले सोमवार (19 मई) तक पत्र भेज देगा जिसमें एक मध्यस्थ और दो गवर्नर-जनरलों का पूरा ब्योरा होगा। लेकिन वायसराय ने कहा—'यह स्पष्ट है कि मैं अपन व्यक्तिगत ओहदे के बारे में तब तक कुछ नहीं कह सकता कि आप, मि० जिन्ना, अपने खत म यह साफ-साफ न लिख दें कि आपके प्रस्ताव अगर बर्तानिया सरकार को अव्यावहारिक लगें तो अस्थायी तौर पर आप दोनों उपनिवेशों क लिए एक ही गवनर का प्रस्ताव मान लेंगे।

जिन्ना ने तुरन्त लगाम खींची। उसने कहा कि उसका ऐसा कोई सुझाव नहीं है। लेकिन माउण्टबेटन इस बात के लिए तुला हुआ था कि जिन्ना आया है तो उसमें कुछ-न-कुछ सहूलियत लेकर ही उसे छोड़ना चाहिए। उसने बहस तब तक चालू रखी जब तक कि जिन्ना इस पर विचार करने और 19 मई को जवाब देने क लिए राजी नहीं हो गया। जवाब सर एरिक मेवील क पास आना था और तार द्वारा वह माउण्टबेटन क पास लदन भेज दिया जाता।

दूसरे सप्ताह मेवील लियाकतअली और जिन्ना क पास कई बार गया और चिट्ठी माँगी। लेकिन उसे चिट्ठी नहीं मिली। मुस्लिम लीग का नेता यह कभी नहीं कहता था कि वह चिट्ठी लिखेगा ही नहीं। लेकिन उसने लिखी भी नहीं। आखिरकार

माउण्टबेटन ने जिन्ना की मध्यस्थवाली सलाह जबानी इण्डिया आफिस के सामने रखी। वे भी माउण्टबेटन से सहमत थे कि यह सुझाव अवैधानिक है और अमल में लाया नहीं जा सकता।

जब माउण्टबेटन लंदन से दिल्ली लौटा तो उसका विचार और भी दृढ़ हो गया था कि वह मुस्लिम लीग को राजी कर ही ताकि वह (वायसराय) दोनों उपनिवेशों का गवर्नर-जनरल हो सके। निश्चय ही इस समय तक माउण्टबेटन के लिए यह साफ हो गया होगा कि स्वार्थी, अहंकारी और जलनवाला जिन्ना ऐसी चीज बरदाश्त नहीं करेगा। *लेकिन माउण्टबेटन ने पीछा नहीं छोड़ा। उसके लिए भी यह आन की बात* हो गई थी और बहुत ही तर्जी में यह भी होना जा रहा था कि किसकी इच्छा ज्यादा बलवती है।

एक समय तो वायसराय सर (अब लार्ड) वाल्टर मांकटन को बुलाने की सोच रहा था, जो निजाम का कानूनी सलाहकार रह चुका था हिन्दुस्तान में ताकि ऐसा मजमून तैयार किया जा सके *कि वायसराय दोनों पदों को संभाल सके।* इसमें ने जल्दी में जवाब दिया कि बाहरवाले को बुलाने की कोई जरूरत नहीं है। एक मेमोरेण्डम में उसने (8 जून को) लिखा —

'एक ही आदमी पाकिस्तान और हिन्दुस्तान दोनों का गवर्नर-जनरल हो, इस व्यवस्था की सुविधाओं पर हमने विचार किया है। आमतौर पर उन्हें इस प्रकार रखा जा सकता है (1) आपने व्यक्तिगत रूप से दोनों पार्टियों का विश्वास और उनकी आस्था प्राप्त कर ली है यह सबसे अहम बात है। (2) बहुत सारी चीजें ज्यों-की-त्यों रहेंगी और हालांकि दोनों उपनिवेश स्वावलम्बी हो जायेंगे फिर भी कुछ चीजें सम्मिलित आधार पर ही चलेंगी *जब तक कि उनका भी बंटवारा न हो जाय।* इसका अच्छा उदाहरण हिन्दुस्तानी फौज है। इन सभी मामलों में आपकी व्यक्तिगत सहायता से झमेला निबटाने में बड़ी सहायता होगी। (3) अगर दोनों उपनिवेशों के लिए अलग अलग गवर्नर जनरल हों तो वे और उनके सलाहकार सारी समस्याओं को सिर्फ अपनी ही नजर से देखेंगे। (4) आपकी निरन्तर उपस्थिति से पाकिस्तान को और भी *सुविधा होगी क्योंकि वह दोनों पार्टियों से समझदार है और इस समय हिन्दुस्तान के* पास जितनी लाठी उसकी भैंस के अनुसार कानून का पक्ष आना है।'[1]

अन्त में उसका सुझाव था कि 'आपके कर्मचारियों में किसी को जिन्ना से मिलना चाहिए और पता लगाना चाहिए कि हवा का रुख किधर है तथा बताना चाहिए कि वही आदमी पाकिस्तान का भी गवर्नर जनरल हो तो इसमें बड़े फायदे होंगे।

लेकिन जिन्ना से मिलना क्या इतना आसान था? बुड्ढा अपने ग़ुस्से में चिन्ता मग्न था। लाचार होकर इस्मे और मवील 20 जून को लियाकतअली खाँ से मिलने गए।

पीछे चलकर इस्मे ने रिपोर्ट दी— मैंने मि० लियाकतअली खाँ को बताया कि

1 भारत सरकार के कागजात से।

प्रस्तावित बिल के बारे में कई मसविदे हमारे पास आ गये हैं और अगले सोमवार या मंगलवार को बिल भी आ जायगा। इस बीच में बर्तानिया सरकार का आदेश है कि निम्नलिखित बातों पर हिन्दुस्तानी नेताओं से मशविरा करें (क) क्या शुरू में दोनों के लिए एक ही गवर्नर-जनरल होगा और (ख) गवर्नरों की बहाली का क्या तरीका होगा? जहाँ तक (क) का सवाल है, मैंने उस बातचीत की याद दिलाई जो मैंने और सर एरिक मेवील ने कुछ दिन पहले उनसे की थी। उन्होंने कहा कि अब जिन्ना से बात करने का उन्हें मौका नहीं मिला। मैंने ज़ोर दिया कि यह मामला कितना ज़रूरी है और इस बात को अच्छी तरह समझाने की कोशिश की कि दोनों उपनिवेशों के अलग-अलग गवर्नर-जनरल हुए तो किसी तरह का तारतम्य या सिलसिलेवार बँटवारा कितना मुश्किल हो जायगा। उन्होंने कहा कि वह मि० जिन्ना से जितनी जल्दी हो सका, सलाह करेंगे।'[1]

लेकिन लियाकतअली खाँ को पता था कि इस मामले में जिन्ना कुछ कहनेवाला नहीं और उसे इतना डर लगता था कि वह ज़िद करने से रहा। जिन्ना विरले ही अपने अधीनस्थों को दिल की बात बताता था और कभी भी अपने फैसलों पर उनका असर नहीं पड़ने देता था।

घण्टे बीतते गये और 23 जून आ धमका। उस दिन वायसराय ने जिन्ना को बुलवाया। माउण्टबेटन ने कहा कि वह व्यक्तिगत आधार पर नहीं बात कर रहा, लेकिन उससे यह कहना ही पड़ता है कि वह इस बात पर गहराई से और जल्द-से-जल्द सोचे कि पाकिस्तान का पहला गवर्नर-जनरल किसे बनाना पसन्द करेगा। वायसराय ने सुझाया कि वह अस्थायी रूप से दोनों उपनिवेशों के एक ही गवर्नर-जनरल के फायदों पर जोर तो दे रहा है लेकिन यह पद अपने लिए नहीं चाहता है। यह तो दोनों उपनिवेशों का सोलह आना स्वतन्त्र चुनाव है।

उसने यह भी समझाया कि इस पर जल्द ही फैसला चाहिए क्योंकि पालियामेंट में पेश होनेवाले बिल की एक धारा से इसका सीधा सम्बन्ध है। जिन्ना को विषय बदलने का अच्छा मौका मिला। उसने कहा कि शायद उसे बिल देखने और उस पर विचार प्रकट करने का मौका मिलेगा।

वायसराय ने जिन्ना को बताया कि बर्तानिया सरकार में इस बात पर उसकी काफी खींचातानी हो रही है क्योंकि बर्तानिया सरकार की राय में जब तक बिल हाउस ऑफ कॉमन्स में पेश न हो जाय, तब तक सरकार के बाहर किसी का देखना पालियामेंट की प्रणाली के बिलकुल विपरीत पड़ता है। लेकिन उसने अपनी कोशिश जारी रखी है और अन्ततः उसकी जीत हुई है। मि० जिन्ना को बिल[2] दिखाया तो

---

1 भारत सरकार के कागजात से।

2 बिल के पालियामेण्ट में आने से पूर्व भारतीय नेता वायसराय भवन में मिले और प्रस्ताव की प्रतियाँ दी गईं। अपने कानूनी सलाहकारों के साथ उन्हें उक्त प्रस्ताव को अध्ययन करने के लिए प्राइवेट अवसर दिया गया। इसके पश्चात् उन्हें प्रस्ताव वापस लौटा देना पड़ा।

जायगा लेकिन उसकी प्रति वह नहीं ले जा सकेगा। जिन्ना इस पर अपने विचार कहने ही जा रहा था कि वायसराय ने उसे घेर कर फिर पुरानी बात पर लाकर छोड़ा।

वायसराय ने शुरू किया—'गवर्नर-जनरल के सवाल पर ......।'

बात काटकर जिन्ना बोला—'मैं जिस भी फैसले पर पहुँचूंगा, मैं उम्मीद करता हूँ कि आप उसे यह न समझें कि हम आपको नहीं चाहते। आप पर तो मेरा पूरा विश्वास और पूरी आस्था है। लेकिन यह मेरी जिन्दगी का कानून है कि अपने लोगों का हित मेरे लिए सबसे पहले आता है। जिन्दगी में कई बार ऐसे मौके आए हैं जब अपने निकट के और प्यारे लोगों को भी मुझे छोड़ना पड़ा है। लेकिन मुझे तो अपना कर्त्तव्य करना ही पड़ा है।'

इस महान् उद्गार के बाद जिन्ना ने कहा—'मैं उम्मीद करता हूँ कि दो-तीन दिनों में आपके पास अपना फैसला भिजवा दूंगा।'

माउण्टबेटन इन्तजार ही करता रहा, फिर भी कोई जवाब नहीं आया। मुलाकात के 9 दिन बाद यानी 2 जुलाई को जिन्ना ने अपना फैसला भेजा कि खुद पाकिस्तान का पहला गवर्नर-जनरल बनने का उसने फैसला किया है। लेकिन इतने पर भी वायसराय को विश्वास नहीं हो सका कि वह लड़ाई हार चुका है। 2 जुलाई की सुबह को लार्ड इस्मे के घर पर सहकारियों की एक बैठक बुलाई गई। विचार का विषय था—पाकिस्तान के गवर्नर-जनरल बनने की जिन्ना की इच्छा के क्या नतीजे होंगे? बैठक का असल मकसद यह था—ऐसा फार्मूला तैयार करना जिससे वायसराय दोनों उपनिवेशों का गवर्नर-जनरल हो सके और साथ-ही-साथ जिन्ना का अहंकार भी सन्तुष्ट हो।[1]

उस शाम को वायसराय ने हार मानने के पहले एक बार और कोशिश करने का फैसला किया। उसने भोपाल के नवाब को बुलवाया। वह जानता था कि भोपाल का नवाब जिन्ना का विश्वासपात्र दोस्त था। अपनी राजधानी से नवाब बड़ी दिक्कत से दिल्ली पहुँचा। उसे कहा गया कि जिन्ना से मिल और उसे अपना फैसला बदलने के लिए कहे। भोपाल के नवाब ने वही किया। लेकिन जिन्ना अपनी जगह अड़ा रहा।

5 जुलाई को वायसराय के नाम एक पत्र में लियाकतअली खाँ ने इस बात की पुष्टि की कि जिन्ना ने फैसला कर लिया है और बाकायदा वायसराय को लिखा है कि पाकिस्तान के गवर्नर-जनरल के पद के लिए वह शाहंशाह के पास मुहम्मदअली जिन्ना के नाम की सिफारिश भेजें। उसी खत में उसे यह उम्मीद भी दिखाई कि माउण्टबेटन हिन्दुस्तान के गवर्नर-जनरल की हैसियत से रह सकेंगे। नेहरू और सरदार पटेल से यह सन्देश भी आया कि वे दोनों चाहते हैं कि वह हिन्दुस्तान का गवर्नर-जनरल बने।

लेकिन उसे क्या करना चाहिए?

'वायसराय के सहकारियों ने इस सवाल पर घण्टों बहस की। साधारणतः उनकी राय थी कि निम्नलिखित कारणों से वायसराय को हिन्दुस्तान में रहना चाहिए:—

1 भारत सरकार के कागजात से।

1. यह महसूस किया जाता था कि वायसराय के जाने पर फ़ील्ड मार्शल आचिनलेक भी इस्तीफा दे देगा और फौज के अंग्रेज भी नहीं रुकेंगे। इसका मतलब तो यह होगा कि जिस समय देश का बँटवारा हो रहा होगा, उसी समय हिन्दुस्तानी फ़ौज में भी सारे हिन्दुस्तानियों को भरने का काम चल रहा होगा जिसका बड़ा खतरनाक नतीजा होगा (इस्मे ने कहा था कि हिन्दुस्तान की एकमात्र स्थायी चीज हिन्दुस्तानी फौज भी बिखर जाएगी। नतीजा होगा—दंगा और भयानक खून-खराबी)। अगर वायसराय रुक गया तो इस बात की ज्यादा उम्मीद है कि साधारणतः सभी ब्रिटिश अफसर रुक जाएँगे। यह दोनों उपनिवेशों में होगा। नतीजा होगा हिन्दुस्तानी फौज का ठीक और शान्तिपूर्ण बँटवारा।

2. ठीक और शान्तिपूर्ण बँटवारे के साथ अन्य बातों में वायसराय की जानकारी के कारण हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के आपसी सम्बन्ध अच्छे बने रहने की ज्यादा उम्मीद है। हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की नीति का पहला लक्ष्य होना चाहिए कि उनका आपसी सम्बन्ध अच्छा रहे। अगर वायसराय चले गए तो दोनों उपनिवेशों के परस्पर बिगड़ने का प्रधान कारण यह होगा कि कांग्रेसवाले समझेंगे कि जिन्ना की करतूतों के कारण वायसराय को जाना पड़ा और जिन्ना ने फिर उनकी योजनाओं को मटियामेट कर दिया।

3. यह भी महसूस किया जाता है कि अगर वायसराय रुक गए तो हिन्दुस्तान के उपनिवेश के भीतर ही स्थायित्व की ज्यादा सम्भावना है। हालांकि अभी भी साम्प्रदायिक तनाव है, लेकिन वायसराय की उपस्थिति के कारण पिछले तीन महीनों में स्थिति काफी सुधर गई है।

4. इस बात पर भी जोर दिया गया कि हिन्दुस्तान और रजवाड़ों के बीच जो झमेले उठेंगे उनको सुलझाने के वायसराय ही एकमात्र स्वतन्त्र साधन रह जाएँगे। रजवाड़ों और उनके शासकों से किस तरह पेश आना चाहिए, इस समस्या पर वायसराय हिन्दुस्तान की सरकार को अमूल्य सलाह दे सकेंगे।

5. यह भी सुझाया गया कि 'वेस्टमिन्स्टर के मोर्चे' की प्रतिक्रिया का हालांकि पता नहीं है, फिर भी उम्मीद की जाती है कि वायसराय हिन्दुस्तान रह गए तो विरोधी दल (टोरी) पार्लियामेंट में बिल का विरोध न करे। इस्मे ने इस बात पर जोर दिया कि अगर दोनों उपनिवेशों में दो हिन्दुस्तानी गवर्नर-जनरल की सम्भावना पर विरोधी दल नाराज हो गया तो शायद वह बिल में इतनी देर लगा दे कि 15 अगस्त तक सत्ता सौंपना सम्भव न हो।[1]

इसलिए वायसराय के सहकारी इस बात पर एकमत थे कि वायसराय को सिर्फ हिन्दुस्तान का गवर्नर-जनरल होकर रह जाना चाहिए और नेहरू तथा पटेल का निमन्त्रण स्वीकार कर लेना चाहिए।

खुद को समझा लेने के बाद यह उनका काम था कि ब्रिटेन में सरकार और

1. भारत सरकार के कागजात के आधार पर।

विरोधी दल को भी समझाएँ। 7 जुलाई को इस्मे लंदन गया। वह प्रधान मंत्री मि० एटली से मिला। वह विरोधी दल के नेताओं से मिला। चार्टवेल जाकर उसने विन्सटन चर्चिल से मुलाकात की। बकिंघम राजभवन में उसने राजा छठे जॉर्ज से मुलाकात की और उपरोक्त दिशा में बड़े विश्वास और कुशलता से बहस करता रहा।

नतीजा हुआ कि सभी शंकाएँ समाप्त हो गईं। चर्चिल ने भी माउण्टबेटन को रखने के लिए जोर दिया। उसके शब्दों में वायसराय 'साम्प्रदायिक तनाव दूर करने में, रजवाड़ों के हितों की रक्षा में तथा हिन्दुस्तान और बाकी कॉमनवेल्थ के बीच भावनात्मक सम्बन्ध दृढ करने में' महत्त्वपूर्ण पार्ट अदा कर सकेगा।

4 जुलाई, 1947 को हाउस ऑफ कॉमन्स में इण्डियन इन्डिपेन्डेंस बिल पेश हुआ और एक पखवारे के बाद पास होकर कानून बन गया। उसमें यह भी जोड़ दिया गया था कि हिन्दुस्तान के पहले गवर्नर जनरल की हैसियत से एडमिरल लार्ड माउण्टबेटन और पाकिस्तान के पहले गवर्नर जनरल की हैसियत से मुहम्मदअली जिन्ना की बहाली होगी। पिछले कुछ सप्ताह की साजिश और चालबाजी के फलस्वरूप जीत किसकी हुई, इस बारे में दोनों आदमियों में से किसी के मन में कोई शंका नहीं रह गई थी।

सातवाँ अध्याय

रजवाड़ों का पतन

हिन्दुस्तान का आखिरी वायसराय होने के लिए जब माउण्टबेटन हिन्दुस्तान आ रहा था तो उसके कुछ पहले, राजा छठे जार्ज ने माउण्टबेटन को बकिंघम राजप्रासाद में बुलवाया। बातचीत में राजा ने बताया कि समझौते की जो बातचीत होनेवाली है उस सिलसिले में हिन्दुस्तानी रजवाडों की स्थिति के बारे में उसे चिन्ता है क्योंकि उनका ब्रिटन से सीधा सन्धिमूलक सम्बन्ध है, जो हिन्दुस्तान की आज़ादी के साथ खतम हो जाएगा। आज़ादी के बाद जो राज्य बनेंगे उनसे जब तक कि वे सम्बन्ध न जोड लें, वे अपने को एक खतरनाक स्थिति में पाएँगे। उसने माउण्टबेटन को 'रिश्तेदार' की हैसियत से कहा कि रजवाडों को होनी पर सन्तोष करने के लिए समझाएँ और जो नई सरकार या सरकारें बनें उनसे किसी-न किसी तरह का समझौता कर लेने की सलाह दें।

क्या राजा की मंशा थी कि रजवाडे नई सरकारों से मिल जाएँ या सिर्फ 'फेडरल' सम्बन्ध ही रखें, यह स्पष्ट नहीं। इसमें कोई शक नहीं कि माउण्टबेटन ने इसका अर्थ लगाया कि रजवाडों को दोनों में से किसी रजवाडे में शामिल कराने का काम उसे सौंपा गया है। अपने रिश्तेदार (राजा) की तरह उसमें न तो रजवाडों के लिए धैर्य ही था और न प्रशंसा। उनमें जो सबसे अच्छे थे उन्हें अर्धविकसित तानाशाह समझता था और जो सबसे खराब थे उन्हें गया-बीता और चरित्रहीन। कांग्रेस की बढती हुई ताकत को देखकर भी उन लोगों ने अपने प्रशासन में किसी तरह की प्रजातन्त्रात्मक प्रणाली नहीं शुरू की। 1935 में मौका था लेकिन वे हिन्दुस्तानी फेडरेशन में शामिल नहीं हुए। इन हरकतों के कारण माउण्टबेटन उन्हें 'मूर्खों की जमात' कहा करता था।

कुछ रजवाडों, खासकर भोपाल के नवाब ने ब्रिटिश हिन्दुस्तान के राजनीतिज्ञों के सामने जो मज़बूत कदम पेश करने की सोची थी, कांग्रेस और मुस्लिम लीग ने जब बँटवारा कबूल किया, उसी समय उसका बुरा हाल था और तेज़ी से हालत बिगडती जा रही थी। चेम्बर ऑफ प्रिंसेज़ के प्रधान (चांसलर) की हैसियत से, मुस्लिम लीग और कांग्रेस के नेताओं से भी पहले, भोपाल को स्वाधीनता बिल का खाका दिखाया गया। यह उम्मीद की गई कि इस बिल की बातों को अपने तक ही सीमित रखने का अपना वादा राजनीतिज्ञों की अपेक्षा वह ज़्यादा निभाएगा। उसकी तुरन्त प्रतिक्रिया

सामने आई इस सवाल म कि क्या वर्तानिया सरकार हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की ही तरह हिन्दुस्तानी रजवाडो को भी उपनिवेश का दर्जा देना चाहती है ? वायसराय ने बताया कि यह सरकार की मशा नही थी । इस पर भोपाल के नवाब ने बडी तीखी शिकायत की कि फिर अग्रेज रजवाडो के साथ धोखा कर रहे हैं और हिन्दू रजवाडे के मुसलमान शासक की हैसियत से वह काग्रेस की दया पर छोड दिया जाएगा।

तीन दिन बाद उसने चेम्बर ऑफ प्रिसेज के प्रधान पद से इस्तीफा दे दिया और घोषणा की की जिस क्षण अग्रेज हिन्दुस्तान छोडेंगे उसी समय से वह अपने को स्वतन्त्र समझेगा और अपने राज्य के भविष्य निर्धारण के लिए खुदमुख्तार होगा। उसने माउण्टबेटन के दिमाग म कोई शक ही नही छोडा कि वह काग्रेस से नफरत करता था और काग्रेसी हिन्दुस्तान से किसी तरह का रिश्ता रखना पसन्द नही करेगा । बातें तो बहुत साहस की थी लेकिन यथार्थ से बहुत दूर ! वायसराय ने यह माना कि बिल में यह शामिल था कि 'दूसरी तरफ, अगर कोई रजवाडा किसी उपनिवेश मे शामिल न हो तो हमलोग उससे अलग सम्बन्ध रखने पर मजबूर होंगे।' लेकिन उसने साफ-साफ सभी रजवाडो को बता दिया कि इस आधार पर उनकी सभी कोशिशें सिर्फ सैद्धान्तिक समझी जाएँगी । उसने निश्चय कर लिया था कि इस मामले मे वह कुछ नहीं करेगा ।

किसी भी हालत म, उस पता तो चल ही गया था कि किसी की छत्रछाया में जगह ढूंढने की भगदड शुरू हो गई है । बीकानेर के महाराजा न कई महत्वपूर्ण रजवाडो को इकट्ठा कर लिया था और व आजादी के पहले ही हिन्दुस्तानी फेडरेशन म शामिल होना चाहते थे ताकि आजादी के बाद वे हिन्दुस्तान के हिस्से हो जाएँगे । उन्होंने उम्मीद की थी कि इस तरह वे अपनी सुविधाओं और अधिकारो की रक्षा कर सकेंगे । भोपाल के नवाब की तरह (उसने आजादी का दावा कर यही हासिल करने की उम्मीद की थी) उनके लिए भी नाउम्मीदी ही नसीब थी ।

जब सर एरिक मेवील ने सुझाया कि हिन्दुस्तान या पाकिस्तान की विधान सभा मे रजवाडो को शामिल कराने का एक यह भी तरीका हो सकता है कि उनसे कहा जाय 'अगर वे शामिल नही होते तो वे कॉमनवेल्थ से बाहर समझे जाएँगे और सम्राट् से उपाधियाँ नही पा सकेंगे,' तो माउण्टबेटन खुशी से राजी हो गया। उनके प्रति माउण्टबेटन की क्या धारणा थी इसका इसी से अन्दाजा लगाया जा सकता है। इसे और भी मीठा बनाने के लिए राजा (छठे जार्ज) ने घोषणा की कि वह सभी रजवाडो को 'हाईनेस' की उपाधि से विभूषित करेगा और उनको या उनकी पत्नियों या विधवाओं को नौ तोपों की सलामी दी जाएगी । जल्दी से जार्ज एबेल ने सुझाया कि रजवाडों की बैठक म, जो उसी दिन होनेवाली थी, यह फैसला नहीं घोषित किया जाय । छोटे राजाओं को तो इससे खुशी होगी लेकिन जिन्हें यह उपाधि मिली हुई है वे खुश नही होंगे।

साथ ही राजा ने यह भी इशारा किया कि वह निजाम के दूसरे लडके को भी 'हिज हाईनेस' की उपाधि देने के लिए तैयार है। वायसराय ने बताया कि उसने इसकी

सिफारिश की थी क्योंकि उसे अन्देशा था कि समझौते की बातचीत में निजाम झमेला खड़ा कर सकता है। इस तरह शायद उसके सहयोग की सम्भावना बढ़ जाय।

सच्ची बात तो यह है कि हिन्दुस्तानी रजवाड़े घबरा उठे थे और भगदड़ मची हुई थी। राजनीतिक सलाहकार सर कानराड कार्फील्ड ने, जब से हिन्दुस्तान की आजादी अवश्यम्भावी हो गई, रजवाड़ो को इस बात के लिए राजी करना शुरू किया कि (क) अपने प्रशासन को वे उदार बनाये और (ख) एक ठोस दल बनायें ताकि ब्रिटिश हिन्दुस्तान के राजनीतिज्ञों की दस्तन्दाजी रोकी जा सके। वह स्वयं बड़ा पक्का राजभक्त था और उसने उम्मीद की थी कि स्वयं राजा का रिश्तेदार जब वायसराय बनकर आया है तो राजनीतिज्ञों, विशेषकर, कांग्रेसियों के हाथ से रजवाड़ो को बचाने मे सहायता मिलेगी।

उसे अचरज हुआ जब उसने देखा कि वायसराय की कोई सहानुभूति नही। लगता था कि वायसराय को रजवाड़ों के भविष्य की कोई चिन्ता ही नही थी। लेखक के पास एक नोट मे सर कानराड कार्फील्ड ने लिखा था—'जब सत्ता सौंपने की तारीख 15 अगस्त निश्चित हो गई तो यह बहुत ही जरूरी हो गया कि रजवाड़ो की कठिन स्थिति का उसे एहसास हो। लेकिन, ब्रिटिश और हिन्दुस्तानी समस्याओ से उसका ध्यान हटाना असम्भव साबित हुआ।'

हिन्दुस्तानी रजवाड़ो का बहुत बड़ा नुकसान होना था। आयात या निर्यात कर, खान आदि से जो आमदनी थी इनके वे ही मालिक थे। यह बहुत बड़ी आमदनी जानेवाली थी। साक्षात् भगवान् जैसे अधिकार छीने जानेवाले थे जिसके खिलाफ रजवाड़ो की प्रजा अपनी रोज़ी-रोटी या आज़ादी की कीमत पर ही आवाज़ उठाने की जुर्रत कर सकती थी। फिर अपनी प्रजा के रहन-सहन के बारे मे फैसला करने की उनकी चरम सत्ता, अपने जीवन के बारे मे पूरी आज़ादी। चाहे प्रजा गरीबी मे रहे या आराम से, वे शराब के नशे मे चूर, ऐयाश हो या होश-हवासवाले और न्यायी—सब-कुछ उनकी मर्जी पर निर्भर। यह ठीक है कि उनमें कुछ बुद्धिमान भी थे जिन्होंने पेशेवर लोगो को वजीर मुकर्रर किया था, जो अनुशासन देखते थे और अपनी पूरी आमदनी वे लड़कियो और सनक पर नही खर्च करते थे। लेकिन ये लोग भी ताना-शाह थे और अक्सर इनके वहम पर काम होता था। यह ठीक है कि राजनीतिक विभाग के प्रधान की हैसियत से सर कानराड कार्फील्ड को यह अधिकार था कि ज्यादतियों मे गर्क लोगो को वह गद्दी से अलग कर दे। लेकिन इन ज्यादतियो मे राजनीतिक उत्पीडन शामिल नहीं था और राज्य मे प्रजातन्त्र लाने की कोशिश करने-वालो को जेल की सज़ा देने पर किसी को गद्दी से नही उतारा गया।

कार्फील्ड ने लेखक के सामने कबूल किया है कि उसे इसका अफसोस है। उसका खयाल है कि अगर अंग्रेज रजवाड़ो के काम मे ज्यादा दखल देते और इस बात की ज़िद करते कि 'उनकी सत्ता वैधानिक आधार पर हो, उनका व्यक्तिगत खर्च सीमित हो और काम करने लायक दलो मे वे बँट जाएँ' तो हिन्दुस्तानी रजवाड़ों का इतिहास बदल सकता था। वह इस बात को मानता है कि अंग्रेज राजा की तरफ से इन मुकम्मे

के लिए जोर दिया जाना चाहिए था। लेकिन फिर उसे यह भी कहना पड़ता है कि 'राजा यह काम कैसे कर सकता था जबकि रजवाड़ों ने खुद ही यह बताया कि किसी तरह का दबाव उनके सम्बन्धों का आधार निश्चित करनेवाली सन्धियों आदि के प्रतिकूल पड़ेगा।'

लेकिन कार्फील्ड भी आजादी के समय दो काम करने के लिए कटिबद्ध था। उसने पहले तो यह निश्चित करना चाहा कि कम-से-कम दो-तीन रजवाड़े, उनमें हैदराबाद प्रमुख था, कांग्रेस के चंगुल से बच जायें। उसने यह भी फैसला किया कि बाकी रजवाड़ों का शामिल होना भी, जितना मुश्किल हो सके, वह बनाने की कोशिश करेगा।

इस काम के लिए उसने सर्वसत्ता (पैरामाउण्टसी) के साधन का उपयोग किया। इन रजवाड़ों की अंग्रेजी तख्त से सन्धि थी। इसके अलावा ये बिलकुल स्वतन्त्र थे और ब्रिटिश हिन्दुस्तान के प्रति इनकी कोई वफादारी नहीं थी। जब सत्ता सौंपी जाएगी तो सर्वसत्ता (पैरामाउण्टसी) खुद-ब-खुद खतम हो जायगी और जो अधिकार अंग्रेजों ने ले लिए थे वे उन्हें वापस मिल जाएँगे। दूसरे शब्दों में, सबके सब, बड़े से लेकर छोटे तक स्वतन्त्र राज्य हो जाएँगे। अपने इलाके से हिन्दुस्तानी फौज को भगाने का उन्हें जायज अधिकार होगा क्योंकि हिन्दुस्तानी फौज तो अंग्रेजों के समझौते के कारण उनके राज्य के भीतर थी। हिन्दुस्तानी रेल, जो अंग्रेजों के साथ समझौते के ही कारण उनके राज्य से होकर जाती थी, रोक दी जाएगी। इसी तरह हिन्दुस्तानी डाकघर भी बन्द कर दिये जाएँगे। रजवाड़े होकर ब्रिटिश हिन्दुस्तान के एक हिस्से से दूसरे हिस्से में जाना रोक दिया जा सकेगा।

पंडित नेहरू और उनके कांग्रेसी साथियों का कहना था कि ये रजवाड़े अपने को स्वतन्त्र कह ही नहीं सकते, क्योंकि किसी से 'लड़ाई छेड़ने और वैदेशिक सम्बन्ध की देखभाल का इन्हें अधिकार ही नहीं।' नेहरू की जिद थी कि, इसलिए, बाकी हिन्दुस्तान के साथ जो सम्बन्ध है उसे बनाये रखने के लिए कोई अस्थायी व्यवस्था उन्हें करनी ही पड़ेगी और नये उपनिवेश हिन्दुस्तान में बिना किसी देरी के शामिल होना पड़ेगा।

इसे रोकने के लिए सर कानराड कार्फील्ड कृत सकल्प था।

अपनी समस्याओं में वायसराय की दिलचस्पी पैदा करने की असमर्थता के बाद उसने लंदन स्थित सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर इण्डिया लॉर्ड लिस्टोवेल से सीधा पत्रव्यवहार शुरू कर दिया। लेबर पार्टी के मिनिस्टर होने के बावजूद लॉर्ड लिस्टोवेल ने सर कानराड के विचारों के साथ बड़ी आश्चर्यजनक सहानुभूति दिखाई कि हिन्दुस्तानी रजवाड़ों का"'(पैरामाउण्टसी) जो अब तक ब्रिटेन के हाथ था, किसी भी हालत में नये उपनिवेश हिन्दुस्तान के हाथ नहीं जाना चाहिए।

जब लॉर्ड इस्मे और मि० जार्ज एबेल पहली खतरनाक योजना (माउण्टबेटन के सहकारियों द्वारा तैयार की गई) लेकर मई, *1947* में लंदन गये थे, सर कानराड भी उनके साथ गया था। उसने वायसराय से कहा कि वह 'सर्वसत्ता (पैरामाउण्टसी) की समाप्ति की व्यवस्था करने जा रहा है।' पीछे चलकर सर कानराड ने बताया

'मेरा खयाल है कि वायसराय ने मेरी बात समझी नहीं और मैंने समझाया भी नहीं। मेरा काम था रजवाड़ों के हितों की रक्षा। हिन्दुस्तान का रास्ता सरल करना मेरा काम नहीं था।'[1]

लंदन में कार्फील्ड ने लॉर्ड लिस्टोवेल से कई बार बातचीत की और उससे एक तरह का वादा करा लिया। पीछे चलकर माउण्टबेटन और हिन्दुस्तानी नेता उसका लाख विरोध करते रहे, लेकिन सक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर इण्डिया तथा बर्तानिया सरकार अपने वादे पर डटी रही। लार्ड लिस्टोवेल कार्फील्ड के साथ इस बात पर सहमत हो गया था कि बिल में एक ऐसा टुकड़ा भी जोड़ा जायगा जिससे हिन्दुस्तान के आजाद होने के साथ ही सर्वसत्ता (पेरामाउण्टसी) भी खतम हो जायगी और अगर पहले ही हिन्दुस्तान ने कोई व्यवस्था नहीं कर ली तो 15 अगस्त को आजाद हिन्दुस्तान के सामने लगभग 600 स्वतन्त्र रजवाड़े होंगे जिनकी आबादी लगभग 10 करोड़ होगी। जैसाकि पंडित नेहरू ने पीछे चलकर कहा, इस तरह हिन्दुस्तान के टुकड़े टुकड़े हो जाएँगे।

कार्फील्ड की योजना हिन्दुस्तान में अराजकता और उलझन पैदा करने में सफल भी हो जाती, अगर उससे एक गलती न हुई होती, जो ज़ाहिर है, अनजाने हुई। यह याद दिला दूँ कि जब माउण्टबेटन के सहकारियों की योजना अलग कर मेनन की योजना पर बातचीत हुई तो ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल ने माउण्टबेटन को लंदन बुलाया था और थोड़ी अनिच्छा के साथ ही वायसराय लंदन गया था।

वायसराय ने उस हवाई जहाज़ को वापस मँगाया जिस पर इस्मे, एबेल और कार्फील्ड लंदन गये थे। लिस्टोवेल से जो कुछ पाना था वह हासिल करने के बाद उसी हवाई जहाज़ पर कार्फील्ड हिन्दुस्तान वापस आया। यही उससे गलती हुई क्योंकि उसने न तो लंदन की बातचीत के ही बारे में वायसराय को कुछ बताया और न अपने लौटने के ही बारे में। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, यह गलती अनजाने हुई। उधर वायसराय का हवाई जहाज़ लंदन के लिए रवाना हुआ और इधर कार्फील्ड उस काम में लग गया जिसे, उसकी समझ से, लार्ड लिस्टोवेल ने उस पर सौंपा था। पीछे पता चला कि उसका सोचना बिलकुल सही था।

उसने राजनीतिक विभाग के अपने कर्मचारियों को हुक्म दिया कि उन सभी व्यवस्थाओं को रद्द करने का सिलसिला शुरू हो जाना चाहिए (जैसे फौज के रहने, रेल, पोस्ट ऑफिस आदि की व्यवस्था) जो सर्वशक्तिमान (पेरामाउण्ट) सत्ता ब्रिटेन ने रजवाड़ों की ओर से ब्रिटिश हिन्दुस्तान के साथ कर रखी थी। उसने यह भी हुक्म दिया कि जो कुछ गुप्त पत्राचार या रिपोर्ट विभाग और रजवाड़ों के बीच हुए थे उन्हें भी निकाल दिया जाय। इनमें वे भी गन्दी रिपोर्ट या पत्र-व्यवहार शामिल थे जब किसी राजा को डाँटना पड़ा था या सयत करना पड़ा था, ज्यादतियों के लिए हटाना पड़ा था। कश्मीर के महाराजा से सम्बन्ध रखनेवाली 'मि० ए' की फाइल जला दी गई। महाराजा

---

1 लेखक के साथ एक बातचीत में।

अलवर की करतूतों, तथाकथ मुमताज के कत्ल और इस तरह की सभी बातों के कागजात का भी यही हश्र हुआ। पहले भी किसी-न किसी कारण से ये बातें जनता की जानकारी से अलग रखी गई थी। रजवाड़ों से सम्बन्ध रखनेवाले चार टन कागज नष्ट किये गए। कुछ को राजदूत वाली डाक में डालकर लंदन के राजकीय मन्त्रालय में भेज दिया गया, जहाँ उनकी छँटाई होनी थी।

कार्फील्ड ने नहीं मिलकर माउण्टबेटन की जो उपेक्षा की और अपनी समझ में रजवाड़ों के प्रति अपने कर्तव्य में जो उत्साह और जल्दबाजी दिखाई उसके लिए माउण्टबेटन नाराज हो गया।

लंदन जाते समय जब उसका हवाई जहाज दिल्ली और कराची के बीच था तो चालकों में से एक ने माउण्टबेटन को बताया कि उसी हवाई जहाज पर कार्फील्ड लंदन से लौटा था। अपने साथ जानेवाले वी० पी० मेनन को वायसराय ने लिखकर बताया

'पता है, उस हरामजादे कार्फील्ड ने क्या किया है ?'

'नहीं तो, क्या किया ?'—मेनन ने भी लिखकर पूछा।

'मुझे बिना बताये चोरी से हिन्दुस्तान वापस आ गया। पता नहीं, उसकी मंशा क्या है।'

इसी क्षण से कार्फील्ड और रजवाड़ों की स्थिति तेजी से बिगड़ने लगी। 13 जून को वायसराय भवन में एक बैठक हुई जिसमें माउण्टबेटन सदर था और नेहरू, जिन्ना और कानराड कार्फील्ड उपस्थित थे। शुरू से ही यह साफ था कि नेहरू का गुस्सा उबल रहा था और जब वह बोलने के लिए खड़ा हुआ तो कार्फील्ड पर बरस पड़ा

'किस अधिकार से राजनीतिक विभाग ने आगे बढ़कर ये काम किए जो हिन्दुस्तान की सरकार के लिए भयानक रूप से नुकसानदेह हैं ?'

उसने तुरन्त ही स्पष्ट कर दिया कि उसका इशारा उन कार्रवाइयों की ओर था जिनसे ब्रिटेन के सर्वसत्ताधिकारी के नाते रजवाड़ों के ऊपर के अधिकार खतम कर दिये गए।

नेहरू कहता गया—'इस विषय पर मैं चार महीनों से चिट्ठियाँ लिख रहा हूँ और उसका कोई नतीजा नहीं निकला है। यह शिष्टाचार भी नहीं बरता गया कि मुझे और मेरे साथियों को सलाह-मशविरे के लिए बुलाया जाता।' फिर राजनीतिक सलाहकार की ओर घूमकर उसने कहा—'मैं राजनीतिक विभाग और खासकर सर कानराड कार्फील्ड पर '' का आरोप लगाता हूँ। मैं समझता हूँ कि इनके कामों की न्यायसंगत जाँच ऊँचे-से-ऊँचे स्तर पर होनी चाहिए।'[1]

भावनाओं के आवेश में वह चुप बैठ गया। सर कानराड कार्फील्ड ने माउण्टबेटन की ओर इस उम्मीद से देखा कि इस असाधारण हमले के लिए वह शायद नेहरू को डाँटे। लेकिन वायसराय चुप बैठा रहा। आखिरकार जिन्ना ने अपनी कुर्सी खींची और

---

1 भारत सरकार के कागजात से।

वडे ही ठण्डे स्वर मे कहा

'अगर मि० नेहरू भावुकता, लच्छेदार बातें और बिना सबूत के आरोप शुरू करना चाहते हैं तो इस बैठक का कोई अर्थ नही।'

कार्फील्ड ने खडे होकर सम आवाज़ में कहा —

'मुझे कुछ छिपाना नही है। मैंने बर्तानिया सरकार के प्रतिनिधि के आदेश पर और सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर इण्डिया की सहमति मे काम किया है। जहाँ तक अधिकारो को छोडने की बात है, सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फार इण्डिया ने यह मान लिया है कि अगर आखिरी दिन तक ये अधिकार रखे गए तो बर्तानिया सरकार रजवाडो को दिये गए उस वादे से मुकर जायगी कि सर्वसत्ता (पेरामाउण्टसी) नये उपनिवेशों को नही दी जायगी।'[1]

फिर नेहरू और जिन्ना दोनो ने सर कानराड पर सरकारी कागज़ात जला देने के लिए हमला शुरू कर दिया। यह ठीक है कि जिन्ना के हमले बहुत ही नर्म थे। उसने जवाब दिया कि वह जो सिलसिला चला रहा है, वह इम्पीरियल रिकार्ड्स् विभाग की सलाह पर और यह विभाग विशेषज्ञो का कुशल विभाग है। उसे इस बात का आश्वासन देने के लिए तैयार था कि कोई भी मूल्यवान चीज़ नष्ट नही की जाएगी। लेकिन यह साफ था कि वह इस बात के लिए तुला हुआ था कि राजनीतिज्ञो के हाथो मे कोई ऐसी चीज़ न पडे जो रजवाडो की खबर लेने के लिए डण्डे के काम आ सके। जब इन कागज़ातो की छँटाई हो रही थी तो, उसने बताया कि कुछ ऐसे कागज़ात भी होंगे, जो हिन्दुस्तान की सरकार को नही दिये जा सकते। लेकिन कार्फील्ड इस बात पर राजी हो गया कि ये जलाए नही जाएँगे बल्कि ब्रिटेन के हाईकमिश्नर के हाथ सौंप दिये जाएँगे।

इसी बैठक म नेहरू ने घोषणा की कि काग्रस न यह सुझाव मान लिया है कि रजवाडो के मसल पर विचार करने के लिए एक 'स्टेट विभाग' खोला जाय। इस पर जिन्ना ने कहा कि मुस्लिम लीग भी ऐसा ही करेगी। कार्फील्ड ने सख्त विरोध किया। उसका कहना था कि सत्ता सौंप देने के बाद दोनो उपनिवेश अपना फैसला कर सकते हैं, लेकिन रजवाडो को ब्रिटिश सरकार से जो वादे किय गए हैं उनके यह विरुद्ध होगा कि पहले से ही य विभाग बन जाएँ।

उसने कहा —'चाहे जो भी एहतियात बरते जाएँ या कदम उठाये जाएँ, ब्रिटिश हुकूमत के रहने-रहते इन विभागो के बनने पर ऐसा लगगा और ये इस तरह काम भी करेंगे कि जो सर्वसत्ता (पेरामाउण्टसी) राजनीतिक विभाग को थी वह इन्हे मिल गई है।'[2]

उसके विरोध बेकार साबित हुए। बैठक की समाप्ति पर नेहरू और कार्फील्ड ने एक-दूसरे को उदास नजरो से देखा और माउण्टबेटन और कार्फील्ड के बीच एक नई विजय था। अपने मातहत की मदद नहीं कर सकने की गलती को दूसरे

1 भारत सरकार के कागज़ात से।
2 वही।

दिन माउण्टबेटन ने सुधारना चाहा। उसने इस मौके पर सर कानराड को बताना चाहा कि नेहरू के उस आरोप के बारे में उनकी क्या राय थी। उसने बताया कि अंग्रेज अफसरों के व्यवहार के बारे में हिन्दुस्तानी नेताओं से कभी बहस न करने की उनकी नीति रही है। फिर भी शायद उस मौके पर नेहरू को साफ-साफ बता देना चाहिए था (इस बातचीत के मौके पर नेहरू उपस्थित नहीं था) कि वह उनके विचार से एकदम अलग है। उसने यह भी जोड़ा कि उसका विश्वास नहीं कि अगर उस आरोप के सबूत पेश करने को कहा जाता या उसकी छानबीन का वादा किया जाता तो पंडित नेहरू मान जाता।

सर कानराड ने इस प्रदर्शन पर सिर्फ सर हिलाया। उस समय से दोनों के सम्बन्ध में बड़ा तनाव आ गया।

लेकिन सर कानराड के लिए दो बड़ी सन्तोषजनक बातें थीं। पहली बात तो यह थी कि जो कागजात हिन्दुस्तान की सरकार के हाथ में पड़ सकते थे उन्हें या तो उसने नष्ट करा दिया था या हटवा दिया था ताकि रजवाड़ों के खिलाफ उनका इस्तेमाल न हो सके। दूसरी बात थी कि उसने यह पक्का कर दिया था कि किसी भी हालत में दोनों उपनिवेशों को सर्वसत्ता (परामाउण्टसी) नहीं मिले। प्रमुख रजवाड़ों में घूम-घूमकर वह यह जोर देता रहा कि आजादी मिलने पर उनके सामने दो नहीं बल्कि तीन रास्ते हैं। वे दोनों में से किसी उपनिवेश में शामिल हो सकते हैं या स्वतन्त्र रह सकते हैं। उसने जोर दिया कि आजादी के बिल का यह अर्थ सिर्फ उसने नहीं लगाया है बल्कि सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फार इण्डिया का भी यही मत है।

इससे त्रावणकोर के महाराजा को बड़ा सहारा मिला और उसने घोषणा की कि वह 15 अगस्त के बाद स्वतन्त्र हो जायगा और पाकिस्तान के साथ एक व्यापार सम्बन्धी एजेण्ट भी बहाल कर रहा है। दूसरे दिन हैदराबाद के निजाम ने भी घोषणा की कि वह भी स्वतन्त्र रहेगा।

कुछ समय के लिए तो ऐसा लगा कि रजवाड़ों की ओर से सर कानराड जीत रहा है। कांग्रेस चौंककर चौकस हो गई। 14 जून को दिल्ली में कांग्रेस कमेटी की की एक बैठक हुई देश के बँटवारे के विरोध में। कांग्रेस 'सर्वसत्ता' (पैरामाउण्टसी) के अर्थ पर ब्रिटिश सरकार से सहमत नहीं, इस आशय का एक सख्त प्रस्ताव पास हुआ। इस प्रस्ताव में इस पर जोर दिया गया कि सर्वसत्ता (पैरामाउण्टसी) के खतम होने पर भी रजवाड़ों और हिन्दुस्तान के सम्बन्ध में कोई अन्तर नहीं पड़ता और किसी भी रजवाड़े को अपनी स्वतन्त्रता घोषित करने का अधिकार नहीं है।

लेकिन सर कानराड ने रजवाड़ों को सलाह दी कि वे अड़े रहें। स्थिति बिलकुल साफ थी। 15 अगस्त को सर्वसत्ता (पैरामाउण्टसी) खतम हो जायगी और वे स्वतन्त्र हो जाएँगे। बहुत से रजवाड़े, जिनकी सेनाएँ पिछली लड़ाई में तैयार हो गई थीं, अपने आस्तीन सम्भालने लगे क्योंकि आजादी का अर्थ होगा रोकथाम करनेवाली अंग्रेजी सत्ता चली जायगी और उनको नाहीं करनेवाला कोई नहीं रहेगा।

सर कानराड को सबसे ज्यादा उम्मीद हैदराबाद से थी। उसका क्षेत्रफल काफी

बड़ा था, खजाना भरा हुआ। निजाम कांग्रेस का घोर विरोधी था और उसकी सेना बड़ी और सुसंगठित थी। यहाँ सिर्फ एक मुसीबत थी। हिन्दुस्तानी फौज की एक डिवीजन हैदराबाद में थी। सर कानराड इसीलिए सभी व्यवस्था को रद्द करने की जल्दी मे था कि यह डिवीजन हैदराबाद से बाहर हो जाय। लेकिन यहाँ पर उसकी तकदीर ने उसका साथ नहीं दिया। सुरक्षा मन्त्री बलदेवसिंह से बार-बार अनुरोध किया गया, पर कोई फल नहीं निकला।

लाचार होकर 22 जून को निजाम के कानूनी सलाहकार सर वाल्टर मांकटन ने इसमें को खत लिखा कि वह वायसराय को दखल देने के लिए राजी करें।

उसने लिखा—'यहाँ हैदराबाद मे मेरी मुसीबतों का अन्त नहीं। यह राज्य राजनीतिक विभाग पर ज़ोर डाल रहा है कि हमारी छावनियों से हिन्दुस्तानी फौज हटा ली जाय। सात-आठ हजार हिन्दुस्तानी फौज यहाँ है। निजाम समझता है कि 15 अगस्त के बाद हिन्दुस्तानी फौज का यहाँ रहना उसके लिए बेबरदाश्त है। फौज का यहाँ रहन का अर्थ होगा विजेताओं की फौज का अधिकार। सुरक्षा मन्त्री की यह चालबाजी है या नहीं, नहीं जानता। लेकिन ऐसा लगता है कि जो लोग हिन्दुस्तान की सरकार के कर्णधार बनेंगे, उन्हें फौज का यहाँ रहना अच्छा ही लगेगा। मैंने कमाण्डर-इन चीफ (आचिनलेक) से बात की थी और उसने (खानगी तौर पर) मुझे बताया कि जब तक वह सेना का प्रधान है, घबराने की कोई बात नहीं। इससे क्या भरोसा हो सकता है!

बर्तानिया सरकार के प्रतिनिधि अब भी बर्तानिया सरकार के ही प्रतिनिधि हैं। वे सरकार को आदेश दे सकते हैं कि निजाम की रियासत से सारी फौज 15 अगस्त के पहले हटा ली जाय।

निजाम की ओर से एक और चिट्ठी जा रही है कि अंग्रेजों के लौटने की जल्दी के कारण फौज के हटाने की तारीखों और स्थितियों के बारे में जानकारी हो सके। चिट्ठी में निश्चित समय के भीतर जवाब माँगा जायगा। अगर तब तक कोई जवाब नहीं आया तो पार्लियामेंट में एक सवाल पूछा जायगा और बताया जायगा कि रियासत की तरफ से कौन-से कदम उठाये गये तथा उनका क्या नतीजा हुआ और क्या विजेताओं की सेना को रियासत के भीतर रहने दिया जायगा?'[1]

हैदराबाद में भविष्य की लड़ाई में यह पहला अहम कदम था। आनेवाले दिनों में यह लड़ाई और गहरी होनेवाली थी। वी० पी० मेनन ने अपनी किताब द इन्टीग्रेशन ऑफ प्रिन्सली स्टेट्स में लिखा है कि देश के क्षेत्रफल के चालीस प्रतिशत क्षेत्रफलवाले रजवाड़ों को 'सम्पूर्ण राजनीतिक एकाकीपन देना देश की एकता के लिए भयानक खतरों से परिपूर्ण है।'

उसने लिखा है—'दुर्दिन के मसीहाओं ने भविष्यवाणी की थी कि हिन्दुस्तान की आज़ादी की नाव रजवाड़ों की चट्टान से टकराएगी।'

---

1 भारत सरकार के कागजात से।

लेकिन सर कानराड कार्फील्ड तथा रजवाड़ों की ओर से लड़नेवाले जरा ज्यादा ही आशान्वित थे। जिस समय जीत का नशा उन लोगों पर चढ़ ही रहा था उसी समय आसमान से कुछ उतरा और वे चित थे।

यह चोट दो वरिष्ठ और योग्य राजनीतिक कार्यकर्ताओं के जुड़े हाथों की थी। मेरा मतलब सरदारपटेल और अपने पुराने दोस्त वी० पी० मेनन से है। जब कांग्रेस ने रजवाड़ों का एक मन्त्रालय खोलने का फैसला किया तो स्पष्ट है कि उन्होंने सरदार पटेल को ही उस मन्त्रालय का प्रधान बनाया। वे लड़ने के लिए तैयार थे। राजाओं, नवाबों और महाराजाओं से उन्हें नफरत थी। सर्वोपरि सत्ता खतम हो जाने के कारण अंग्रेजों से वे नाराज थे। उन लोगों ने उम्मीद की थी कि पार्टी का यह लौहपुरुष अपनी धोती समेटकर इनके पीछे पड़ जाएगा।

लेकिन पटेल इतना चालाक सौदेबाज था कि सर कानराड कार्फील्ड-जैसे होशियार और खतरनाक विरोधी के सामने ऐसी गलती वह नहीं कर सकता था। उसने महसूस किया कि यह घूंसा दिखाने और चीखने-चिल्लाने का समय नहीं। बहुत ही बारीक चाल चलनी पड़ेगी और एक-एक कर, फिर इस तरह कि कोई दाग नहीं रह जाए।

अपनी बहाली के तीन दिन बाद उसने वी० पी० मेनन को बुलाकर विभाग का सेक्रेटरी बनने के लिए अनुरोध किया। पीछे मेनन ने लिखा—"मैंने सरदार से कहा मैं अपनी सभी बाकी छुट्टियाँ लेकर 15 अगस्त से अवकाश ग्रहण करना चाहता हूँ। 1917 से मैं वैधानिक सुधारों में जूझता रहा हूँ। मैंने कभी कल्पना ही नहीं की कि मैं अपने जीवन-काल में हिन्दुस्तान की आजादी देख सकूंगा। लेकिन आजादी आ गई और मेरे जीवन का चरम लक्ष्य पूरा हो गया। सरदार ने मुझसे कहा कि देश की असाधारण स्थिति में मेरी तरह के आदमी को अवकाश ग्रहण करने की बात नहीं सोचनी चाहिए। सरदार ने यह भी कहा कि मैंने सत्ता सौंपने के इस काम में प्रमुख पार्ट अदा किया है और मुझे समझना चाहिए कि स्वतन्त्रता के सगठन के लिए काम करना भी मेरा कर्तव्य है। स्वभावतः मैं इस पर राजी हो गया कि देश का हित ही आखिरी फैसला करा सकता है।'[1]

मेनन उस पद के लिए राजी हो गया। पटेल का असरदार व्यक्तित्व और उसके लचीले दिमाग का सयोग इस मौके पर और भी ज्यादा खतरनाक साबित हुआ।

तुरन्त मेनन ने सलाहकार और दावपेंच जाननेवाली बुद्धि का परिचय दिया। सर कानराड कार्फील्ड ने अंग्रेजों के जाने के साथ-साथ सर्वोपरि सत्ता को रद्द कराकर हिन्दुस्तान के लिए ज्यादा-से ज्यादा कठिनाई पेश करनी चाही थी। यह ठीक था कि रेल, पोस्ट आफिस जैसी हर चीज के लिए सौदेबाजी करने पर बड़ी कठिनाई उपस्थित हो सकती थी और अंग्रेज इस व्यवस्था को खतम कर रहे थे। लेकिन सिर्फ आठ सप्ताह रह गए थे आजादी को। अब इन छोटी छोटी बातों की चिन्ता क्यों ? क्यों नहीं हर रजवाड़े में एक एक कर मिला जाय और सिर्फ फार्मूले पर सौदेबाजी की जाए—

---

1 वी० पी० मेनन, द इन्टीग्रेशन आफ द प्रिन्सली स्टेट्स।

सुरक्षा, वैदेशिक सम्बन्ध और यातायात के मामले में वे हिन्दुस्तान में शामिल हो जाएँ।

'लेकिन अगर वे लोग राजी नहीं हुए तो ?'—पटेल ने पूछा।

'कैसे राजी नहीं होंगे! अब तक तो हर रजवाड़े को अशान्ति से बचानेवाले अंग्रेज थे। अगर राजनीतिक या साम्प्रदायिक जोश-खरोश होना था तो अंग्रेजों का यह जिम्मा था कि फिर से शान्ति और व्यवस्था कायम करें। लेकिन अब तो अंग्रेज जा रहे हैं। यह ठीक है कि कुछ बड़ी रियासतें अपनी फौज के सहारे एक तरह की शान्ति रख सकती हैं। लेकिन अगर जनता विद्रोह कर दे, अपनी आजादी माँगे, हिन्दुस्तान में शामिल होना चाहे, अगर जनता का विद्रोह रजवाड़ों का शासन और शासकों का जीवन भी खतरे में डाल दे तो हमें छोड़कर किसके पास जाएँगे मदद के लिए ?'—यह था मेनन का जवाब।

पटेल ने मेनन का इशारा तुरन्त समझा। रजवाड़ों में काग्रेस आन्दोलन का वह प्रधान रह चुका था।

लेकिन अब भी सर्वोपरि सत्ता के रद्द होने की बात पटेल बरदाश्त नहीं कर सका था। यह दोस्त का काम नहीं था, इससे हिन्दुस्तान की सुरक्षा खतरे में पड़ सकती। मेनन ने तुरन्त उसे दिलासा दिया

'राजनीतिक विभाग का खयाल है कि इससे हम खतम हो जाएँगे। लेकिन मेरा खयाल कुछ और है। यह तो हमारे लिए छिपा हुआ वरदान है। इन समझौतों के कारण रजवाड़ों को बड़ी सुविधाएँ थीं। उदाहरण के लिए, जब तक बात बहुत बढ़ न जाए, कोई दखलअन्दाजी नहीं हो सकती थी। सर्वोपरि सत्ता हम मिलती तो विरासत में यह सब भी मिलता। अपनी रियासतों में हम भी उनको अर्धदेवता मानना पड़ता। सर्वोपरि सत्ता खतम हुई, सुविधाएँ भी खतम हुईं। हमलोग नए सिरे से शुरू करेंगे। अब तो हमारे कहने की बारी है कि रजवाड़े किस तरह रहेंगे।'[1]

मेनन के दिमाग में एक और अनोखी सूझ आई—'मैंने प्रस्ताव रखा कि इस काम के लिए लॉर्ड माउण्टबेटन की सक्रिय सहायता लेनी चाहिए। मेनन ने पीछे चल कर लिखा—ओहदे के अलावा, उसकी शालीनता, उसके गुण और राजघराने में उसके सम्बन्ध के कारण रजवाड़ों पर असर पड़ेगा ही। सरदार सोलह आना राजी हो गया। उसने कहा कि मैं जल्द-से-जल्द वायसराय से मिलूँ। एक दो दिन के बाद मैं लॉर्ड माउण्टबेटन से मिला और मैंने सरदार पटेल से हुई बातचीत और अपनी योजना बताई। मैंने तीन बातों पर रजवाड़ों को हिन्दुस्तान में शामिल कराने में मदद माँगी (सुरक्षा, वैदेशिक सम्बन्ध और यातायात)।[2]

मेनन ने बड़ी खूबी से अपना पहलू सामने रखा और बताया कि इस तरह रजवाड़ों का कोई नुकसान नहीं होगा। लेकिन इस कर दिखाने के लिए बड़ी ही कूटनीतिक प्रतिभा चाहिए और वायसराय के सिवाय इसे कौन कर सकता है!'

1. लेखक के साथ बातचीत में।
2. वी० पी० मेनन, द इंटीग्रेशन आफ द प्रिंसली स्टेट्स।

मेनन ने आगे लिखा है—'मुझे लगा कि मेरे इस कथन ने उसे हिला दिया कि अगर रजवाड़े हिन्दुस्तान में शामिल हो जाते हैं तो बँटवारे का ज़ख्म काफी भर जाएगा और देश की बुनियादी एकता स्थापित करने के लिए हिन्दुस्तानियों की पीढ़ी-दर-पीढ़ी उसका आभार मानेगी। उसने कहा कि वह इस पर गौर करेगा।......यह मानना ही पड़ेगा कि एक क्षण के लिए तो मुझे डर भी हुआ कि उसके सलाहकार उस पर उलटा असर डालेंगे। लेकिन मुझे बड़ी तसल्ली और खुशी हुई जब उसने बात मान ली।......मन्त्रिमण्डल की सहमति से नेहरू ने रजवाड़ों से बातचीत करने और निज़ाम के समझने का काम माउण्टबेटन पर सौंप दिया।'[1]

काम बन गया। नये उपनिवेश हिन्दुस्तान के पक्ष में और सर कानराड कार्फील्ड तथा राजनीतिक विभाग के विपक्ष में वायसराय आ गया। सर कानराड कार्फील्ड ने अपने विचार के लिए काफी जद्दोजहद की कि रजवाड़ों को स्वतन्त्र होने का अधिकार है और शामिल होना जरूरी नहीं। उसने लेखक को एक पत्र में लिखा '—'लेकिन माउण्टबेटन की यह राय नहीं थी। उसे समझाया गया था कि अगर अपने प्रभाव से, सर्वोपरि सत्ता के रद्द होने के पहले ही, रजवाड़ों को उपनिवेशों में शामिल होने के लिए राजी नहीं किया गया तो सत्ता सौंपने के बाद देश के आर्थिक और शान्तिपूर्ण अनुशासन के लिए बहुत बड़ा खतरा सामने आ जायगा।......यह मजेदार बात है कि पाकिस्तान के प्रभाव के क्षेत्र में रजवाड़ों पर शामिल होने के लिए जिन्ना कोई दबाव देना नहीं चाहता था। पाकिस्तान के बन जाने के बाद स्वतन्त्रता के कानूनी पहलू और चुनाव के अधिकार के तकनीकी पहलू पर हर रियासत से बात करने के लिए वह तैयार था। लेकिन मि० नेहरू और मि० पटेल ने हिज़ एक्सेलेन्सी को समझा-बुझाकर इस बात पर राजी कर लिया कि हिन्दुस्तान के लिए यह तरीका खतरनाक होगा।'

सर कानराड को हुक्म मिला कि रजवाड़ों की एक बैठक बुलाई जाय जिसमें सर्वोपरि सत्ता के रद्द होने के पहले उन्हें हिन्दुस्तान में शामिल होने के लिए वायसराय समझा सके।

उसके प्रेस-सलाहकार कैम्बेल-जॉनसन ने नोट किया—'रजवाड़ों की समस्या से माउण्टबेटन बुरी तरह उलझ गया है। 3 जून की योजना के पहले अपनी कूटनीतिक चाल में उसने जान-बूझकर खतरा उठाया और खुद शामिल होने के तरीके गढ़ रहा है और इस खास पक्ष की ओर सभी रजवाड़ों को लाना चाहता है। उधर वी० पी० मेनन ने कांग्रेस को इस पर राजी कर लिया है। पटेल के सहारे के आश्वासन पर ही उसने यह कदम उठाया है।'[2]

25 जुलाई, 1947 को रजवाड़ों की बैठक माउण्टबेटन की भयानक चालाकी, मोहने और समझाने-बुझाने की कला का ज्वलन्त प्रमाण है। इस समय तक उसे पूरा विश्वास हो गया था पाकिस्तान या हिन्दुस्तान में शामिल होना ही एकमात्र रास्ता उन लोगों के लिए रह गया था। आज़ाद होने का सवाल ही नहीं था। एक मशहूर हिन्दुस्तानी सर बी० एन० राव ने जब उसे बताया कि छोटी-छोटी रियासतों के 327 शासक,

1 वी० पी० मेनन, द इन्टाग्रेशन आफ द प्रिन्सली स्टेट्स।
2 एलेन कैम्बेल-जानसन, मिशन विद माउण्टबेटन।

जिनमे हरएक का औसत क्षेत्रफल 20 वर्गमील, औसत आबादी 3,000 और औसत सालाना आमदनी 1,000 पौंड थी, सर्वोपरि सत्ता के खतम होने के बाद अपनी रियाया को मौत की सज़ा दे सकते हैं तो वह भी पटेल की ही तरह सर्वोपरि सत्ता के रद्द होने का विरोधी हो गया। राव ने माउण्टबेटन से अपील की कि आज़ादी के बिल म एक हिस्सा ऐसा भी जोड़ा जाना चाहिए जिससे उनके अधिकारो पर रोकथाम हो और बर्तानिया सरकार के प्रतिनिधि को जो अधिकार थे, वे नये उपनिवेशो को दिये जायें। माउण्टबेटन ने सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर इण्डिया को तार दिया— मैंने खुद यह महसूस नही किया था कि छोटी रियासतो के 327 मालिक जो पहले सिर्फ तीन महीने की सज़ा दे सकते थे, सर्वोपरि सत्ता के खतम होने के बाद मौत की सज़ा भी दे सकते है।' उसने राव की सलाह का जोरदार समर्थन किया। सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर इण्डिया ने जवाब दिया कि इस तरह तो रजवाड़ो के प्रति बिल की जो मशा थी वह बुनियादी तौर पर बदल जायगी। सर्वोपरि सत्ता का रद्द होना तो कायम रहेगा और कोई परिवर्तन सम्भव नही। पहली दफा वायसराय की समझ म आया कि सर्वोपरि सत्ता के रद्द होने का सही अर्थ क्या है और सर कानराड कार्फील्ड ने लदन म रहकर क्या किया था।

इसलिए 25 जुलाई की बैठक मे कैम्बेल जानसन के शब्दो म, उसने अपने तरकश के सभी बाणो का प्रयोग किया और शुरू मे ही रजवाडा को अच्छी तरह समझा दिया कि वी० पी० मेनन की योजना मे काग्रेस की ओर से एक राजनीतिक मौका दिया गया है जो शायद फिर दुहराया न जाए। " उसने उन्हे यह भी याद दिलाया कि 15 अगस्त के बाद बर्तानिया सरकार के प्रतिनिधि की हैसियत से वह उनकी ओर से दखलअन्दाज़ी भी नही कर सकेगा। उसने उन रजवाड़ो को आगाह भी कर दिया कि जो अपने हथियार इकट्ठे करने की उम्मीद पाले बैठ है उन्हे मालूम होना चाहिए कि ये हथियार निकम्मे और पुराने साबित होंगे।'[1]

फिर उसने पुचकारने और बहलाने के सभी तरीको का इस्तेमाल किया ताकि वे बताई गई जगह पर दस्तखत कर दें। उसने इस वादे का भी अच्छा इस्तेमाल किया कि अगर उन्होंने ऐसा किया तो उपाधि और तमगे पाने के उनके अधिकार बने रहे, इसकी सिफारिश वह काग्रेस स करेगा। वह बारी बारी से बन्दरघुडकी देता और पुचकारता। दिल्ली की गर्मी म रजवाड़ो के पसीने छूट रहे थे (तापमान 108 4 था), चेम्बर ऑफ प्रिंसेज के पखे चक्कर खा रहे थे और स्कूल के बच्चा की तरह वह एक-एक स पूछ रहा था कि वे दस्तखत करेंगे या नही। उनमे जो सबसे धनी थे उनके चेहरो पर भी हारे हुए आदमी की उदास और खोई हुई दृष्टि थी। वे लोग यह विश्वास लेकर बैठक म आये थे कि काग्रसी गुर्गों स वायसराय उनकी रक्षा करेगा। आखिर वह उनका ही भाईबंद था न ? शुरू म तो वायसराय को देखते ही वे खिल गये थे। गर्मी के बावजूद वायसराय अपनी पूरी वर्दी म आया था, उसके सीने पर

1 एलेन कैम्बेल-जॉनसन, मिशन विद माउण्टबेटन।

तमगे और अन्य निशान जगमगा रहे थे। राजा या रिसेदार, उनकी आशाओं का प्रतीक, उनके अधिकारों का साक्षात् रूप लगता था।

यह वायसराय की काबिलियत और मोहनी का जीता-जागता सबूत था कि एक तरह तो यह उन्हें यह महसूस करा रहा था कि उनके दिन लद गये और दूसरी तरफ अपनी बातचीत पुरमजाक बनाए था। गुस्से में चीखने चिल्लाने का कहीं नामोनिशान नहीं। उसकी बातों पर सिर्फ कहकहे फूट रहे थे। इन घटनाओं में सबसे प्रसिद्ध वह है जब उसने एक बड़ी रियासत के दीवान या प्रधान मन्त्री से पूछा कि उसका महाराजा दस्तखत करेगा या नहीं। दीवान ने जवाब दिया कि उसका मालिक विदेश में है और उसे कोई हुक्म नहीं मिला है।

'आपको अपने शासक की मर्जी का पता तो होगा ही और उसके बदले आप फैसला नहीं कर सकते?'—माउण्टबेटन ने पूछा।

'मुझे अपने मालिक की मर्जी का पता नहीं और मैं तार से भी जवाब नहीं मँगा सकता।'—दीवान ने कहा!

वायसराय ने मेज पर से कागज दबानेवाला शीशा उठा लिया और कहने लगा—'मैं अपने जादू के शीशे (क्रिस्टल बाल) से पूछकर बताता हूँ।' सब चुप थे, घोर सन्नाटा छाया था। बड़े नाटकीय अन्दाज से माउण्टबेटन ने कहा—'हिज हाईनेस का हुक्म है कि उनकी तरफ से आप दस्तखत कर दें।'

सभी रजवाड़े तुरन्त खिलखिलाकर हँस पड़े और वायसराय की तारीफ करने लगे। कम-से-कम इतना तो था कि अपनी मौत का हुक्मनामा भी वह दस्तखत कर रहे थे और मौत के मुँह में जा रहे थे तो माउण्टबेटन की ही बदौलत उनके चेहरे पर मुस्कान भी थी।

सर कानराड कार्फील्ड के चेहरे पर की मुस्कान बर्फीली थी और पीछे चलकर उसने जो बातें कहीं वे भी बड़ी तीखी थीं।

लेखक के नाम एक पत्र में उसने बताया—'अपने प्रस्ताव का स्वाद बनाये रखने के लिए उसने पटेल को राजी कर लिया था कि सिर्फ सुरक्षा, वैदेशिक सम्बन्ध और यातायात के ही मामलों में रजवाड़े शामिल होंगे। उसने वादा ले लिया था कि रजवाड़ों पर कोई आर्थिक बोझ नहीं पड़ेगा और किसी भी अन्य मामले में नया उपनिवेश रजवाड़ों की अपनी भीतरी स्वतन्त्रता या खुदमुख्तारी में दखल नहीं देगा।

सत्ता सौंप देने के बाद, स्टेट्स विभाग के सहारे अपने प्रभाव को बढ़ाने से उपनिवेशों को रोकनेवाला कोई नहीं था। इसलिए ये वादे और सहूलियतें समय आने पर बेकार साबित कर दी जायेंगी। दरअसल हुआ भी ऐसा ही। पिछले जमाने में सर्वोपरि सत्ता के इस्तेमाल के कारण वायसराय का जो प्रभाव बन गया था उसका उपयोग इतनी शर्मनाक शर्तों को मानने के लिए किया जाय! इसके बारे में कम-से-कम कहा जाय तो यही कहना होगा कि यह गैर अंग्रेज जैसा काम था।'

लेकिन वायसराय के मीठे शब्दों का असर हुआ। एक एक कर रजवाड़ों ने दस्तखत करने के लिए कतार लगा दी। लेकिन इसमें सभी शामिल नहीं थे। हैदराबाद

अलग था। त्रावणकोर, भोपाल, जोधपुर और इन्दौर की भी यही हालत थी। हैदराबाद को छोड़कर बाकी रियासतों के शासकों या दीवानों को माउण्टबेटन ने मिलने के लिए बुलाया।

'एक प्रमुख दीवान ने ऐसी एक मुलाक़ात के बाद बताया कि अब उसे मालूम हो गया कि जब हिटलर ने डालफुस को मिलने के लिए बुलाया होगा तो डालफुस की क्या हालत होगी। इस तरह एक अंग्रेज अफसर बात करेगा, इसकी उसे उम्मीद नहीं थी। कुछ क्षण रुककर उसने अंग्रेज शब्द वापस ले लिया।'—कार्फील्ड ने कहा।

इसमें शक नहीं कि यह घटना त्रावणकोर के दीवान की है, जो माउण्टबेटन से मिलकर यह बताने आया था कि उसका शासक 15 अगस्त को स्वतन्त्र होने की घोषणा करना चाहता है। दीवान ने तीखे शब्दों में आलोचना करते हुए कहा कि नेहरू में स्थिरता नहीं और पटेल क्रूर है। वायसराय ने याद दिलाया कि यह बेवकूफी और जल्दबाजी ठीक नहीं। फिर वायसराय ने वी० पी० मेनन की ओर देखा। वी० पी० मेनन ने त्रावणकोर के दीवान को याद दिलाया कि त्रावणकोर कम्युनिस्टों की जन्मभूमि रहा है। अगर 15 अगस्त के बाद कम्युनिस्टों ने शासक के विरुद्ध विद्रोह कर दिया तो क्या होगा? अगर त्रावणकोर स्वतन्त्र हुआ तो हिन्दुस्तान को मदद से इनकार करना पड़ेगा। दीवान जब बाहर निकला तो विचारों में डूबा हुआ और परेशान।

इस समय तक स्टेट्स विभाग अपने पैर जमा चुका था। पटेल और मेनन का विश्वास बढ़ता जा रहा था कि माउण्टबेटन की सहायता से अधिकांश रजवाड़े 15 अगस्त के पहले ही शामिल हो जायेंगे हिन्दुस्तानी उपनिवेश में। मेनन ने खासकर यह महसूस किया कि अब सर कानराड कार्फील्ड का प्रभाव खत्म करने का समय आ गया है। राजनीतिक विभाग के प्रति पहले से ही मेनन की सहानुभूति नहीं थी। पिछली लड़ाई में एक रियासत के दीवान पद पर मेनन की बहाली का सर कानराड कार्फील्ड ने विरोध किया था। दलील दी थी कि वह अपनी राष्ट्रीयता से ऊपर नहीं उठ सकता। अब वह वायसराय के पास रिपोर्ट लेकर गया कि सर कानराड भोपाल और थोड़े-से अन्य रजवाड़ों को तीसरी शक्ति की तरह गुट बनाने के लिए तैयार कर रहा है। वे लोग उसी दिशा में काम कर रहे हैं जिस पर कुछ महीने भोपाल का दिमाग काम कर रहा था। मेनन की शिकायत थी कि इस तरह की दखलअन्दाज़ी बरदाश्त नहीं की जा सकती।

उसने माउण्टबेटन से बताया—'स्थिति ऐसी हो गई है जिसमें फैसला करना पड़ेगा। या तो सर कानराड कार्फील्ड अलग हो या मैं चला जाऊं।'[1]

उसे भी मालूम था और वायसराय को भी कि चुनाव का सवाल ही नहीं था। पटेल और मेनन के साथ यह इतना आगे बढ़ चुका था कि इस समय उसके लिए एक ही रास्ता खुला था—सर कानराड को बुलाकर कहा कि आप अपना बिस्तर समेटिए।

---

1. लेखक के साथ एक बातचीत में।

राजनीतिक सलाहकार भी जाने के लिए तैयार ही था। लेखक के नाम एक पत्र में उसने बताया—'जैसे ही स्टेट्स विभाग की स्थापना हुई, मैंने प्रस्तावित कान्फ्रेंस की तारीख 25 जुलाई रखी और इस पद को छोड़ कर 23 जुलाई को इंगलैण्ड वापस जाने की अनुमति।'

जाते समय उसकी भावनाएँ बड़ी कटु थीं। उसने लिखा—'इस समय भी रजवाड़ों की समझ में नहीं आ रहा था कि बर्तानिया सरकार ने उन पर से साया हटा लिया है और नए उपनिवेश के साथ उन्हें अपनी राह आप ही बनानी होगी जबकि उनके राजनीतिक विरोधियों को सारी राजनीतिक ताकत दे दी गई है। अगर उन लोगों ने बर्तानिया सरकार की सलाह मानकर अपने अधिकार को वैधानिक आधार दिया होता, अपना व्यक्तिगत खर्च सीमित रखा होता और सुविधापूर्ण गुटों में संगठित हो गए होते तो इस समय बड़ी मजबूती से समझौते की बातचीत चला सकते।'

'यह कहा जा सकता है कि इन सुधारों के लिए बर्तानिया सरकार को सलाह देने के अलावा भी कुछ करना चाहिए था। लेकिन यह कैसे मुमकिन था, क्योंकि इन रजवाड़ों ने ही पहले-पहल यह आवाज उठाई थी कि किसी तरह का दबाव सन्धियों और समझौता के प्रतिकूल होगा। इन सन्धियों और समझौतों को खतम करना राजनीतिक दृष्टि से बड़ा ही घातक होता। लेकिन ये नए उपनिवेश इतनी गहराई से सोचनेवाले नहीं थे।'

'दरअसल इतना कम समय रह गया था कि अधिकांश रजवाड़ों ने माउण्टबेटन की सलाह मानकर अपने दस्तखत कर दिए।' इसके बाद बड़े दर्द से उसने लिखा—

'दरअसल हवा का रुख इतना बदल गया था कि सर्वोपरि सत्ता के रद्द होने के तीन सप्ताह बाद जब राजनीतिक सलाहकार वापस जा रहा था तो सिर्फ तीन रजवाड़े उसे विदा करने आए। छः महीने पहले जब रजवाड़ों ने बम्बई में उसे सलाह देने के लिए बुलाया था तो उस बैठक में कोई अनुपस्थित नहीं था। उस समय तक सभी रजवाड़ों का सम्मिलित मोर्चा था। लेकिन साम्प्रदायिक अनबन के खिलाफ कोई सलाह काम नहीं आई और जैसे ही सम्मिलित मोर्चा टूटा, व्यक्तिगत राज के दिन भी खतम हो गए।'

लेकिन इतनी जल्दी नहीं।

यह ठीक है कि अधिकांश रजवाड़ों ने भवितव्य के आगे सिर झुकाकर दस्तखत कर दिए। इनमें सबसे पहला बीकानेर का महाराजा था, जो वायसराय का पुराना दोस्त था। बड़े नाटकीय अन्दाज से उसने दस्तखत किया।

बड़ौदा का महाराजा दस्तखत करने के बाद मेनन के गले में हाथ डालकर बच्चों की तरह रोया। दस्तखत करने के बाद ही एक राजा को दिल का दौरा पड़ गया।

लेकिन माउण्टबेटन की सारी कोशिशों के बावजूद कई प्रमुख रजवाड़े तैयार नहीं हो रहे थे। त्रावणकोर के महाराजा के दीवान सर सी० पी० रामास्वामी अय्यर ने अपने मालिक को वायसराय की सलाह और मेनन की धमकी बताई कि किसी तरह का

झमेला हुआ तो हिन्दुस्तान मदद नहीं करेगा। महाराजा ने माउण्टबेटन को तार दिया कि यह सभी शर्तों को मानने के लिए तैयार है और दस्तखत करने की जरूरत नहीं पड़ेगी। इस तरह वह मुहलत चाहता था। लेकिन वायसराय ने जवाब में तार दिया कि इतना काफी नहीं, दस्तखत चाहिए। इसी समय त्रावणकोर की एक गैर कानूनी संस्था स्टेट्स कांग्रेस कमेटी की कार्यकारिणी ने महाराजा के खिलाफ आन्दोलन का श्रीगणेश किया। त्रावणकोर की पुलिस के साथ सड़कों पर मुठभेड हुई। एक अनजान हमलावर ने सर सी० पी० रामास्वामी अय्यर को छुरा मारकर बुरी तरह घायल कर दिया। महाराजा ने वायसराय को तार दिया कि वह दस्तखत करने के लिए तैयार है। सरदार पटेल ने स्थानीय कांग्रेस कमेटी को तुरन्त प्रदर्शन बन्द करने का आदेश दिया।

रजवाड़ों में अशान्ति फैलाने और जो राजी न हों उनके खिलाफ पटेल और मेनन के सरल इरादों का यह जीता जागता सबूत था। इसका जादू का-सा असर हुआ। रजवाड़ों को सबक मिली। और अधिक संख्या में वे दस्तखत करने लगे।

लेकिन फिर भी कुछ रजवाड़े अड़े ही रहे। हैदराबाद तो था ही। काश्मीर, भोपाल, मैसूर और जोधपुर भी राजी नहीं हुए। उनके साथ पश्चिमी हिन्दुस्तान के काठियावाड़ समुद्र तट की छोटी-सी रियासत जूनागढ़ भी थी

राजनीतिक विभाग में मेनन के खुफियों ने खबर लाकर दी कि विभाग के अंग्रेज अफसर जोधपुर के महाराजा हनुवन्त सिंह को पाकिस्तान में शामिल होने की सलाह दे रहे हैं। जोधपुर के महाराजा को इसका अधिकार था कि वह चुनाव स्वयं करे। वायसराय ने यही बात कही थी कि जिस उपनिवेश के साथ सीमा मिलती हो उसमें शामिल हो जाना चाहिए। दो और राजपूती रियासतों की तरह जोधपुर की सीमा हिन्दुस्तान और पाकिस्तान, दोनों से मिलती थी।

अधिकांश राजाओं की तरह जोधपुर भी कांग्रेस का विरोधी था। उसे शक था कि हिन्दुस्तान में उसे शायद ही सुविधा मिले। बड़ी ही आजाद तबियत के इस आदमी को पोलो, हवाई जहाज चलाने और तवायफों का शौक था। बड़ा शाहखर्च, लापरवाह और खुशमिजाज था। उसके दादा ने एक बार लार्ड और लेडी कर्जन को भोज दिया था जिसमें हर अतिथि के सामने पाई[1] अलग-अलग पेश की गई। जब उसका ऊपरी हिस्सा हटाया गया तो उसमें एक एक नन्ही चिड़िया फुर्र से निकली। लेडी कर्जन ने कहा था—'एक चिड़िया तो शायद मेरे टायरा पर बैठ गई।' लेकिन इस नौजवान महाराज को और चीजों का शौक था जो कम मँहगी नहीं थी। समता आदि के लिए उसे फुरसत नहीं थी। अपने राज्य को वह तानाशाह की तरह चलाता था और अपना रवैया बदलना भी उसे कबूल नहीं था।

उसने चुपचाप जिन्ना से मुलाकात करने की सोची। शायद जिन्ना पर ज्यादा असर करे उसकी मोहिनी। उसने जैसलमेर के महाराजा को भी साथ कर लिया।

1. एक तरह का अंग्रेजी खाद्य।

यह रियासत भी पाकिस्तान से लगी हुई थी। उन लोगों को देखकर तो जिन्ना की बाछें खिल गईं। वह जानता था कि अगर ये दोनों रियासतें भी पाकिस्तान में शामिल हो गईं तो और राजपूत रियासतें भी पाकिस्तान में शामिल हो जाएँगी। फिर इस तरह पंजाब और बंगाल के बँटवारे की कमी भी ज़रूरत से ज़्यादा ही पूरी हो जाएगी और सभी प्रमुख रजवाड़ों को हड़पने की कांग्रेसी योजना भी विफल हो जाएगी। इसलिए उसने दराज से एक सादा कागज निकालकर जोधपुर के महाराजा की तरफ बढ़ाते हुए कहा—

'हिज हाइनेस, इस पर आप अपनी शर्तें लिखिए और मैं दस्तखत कर देता हूँ।'

जोधपुर के महाराजा ने जैसलमेर के महाराजा से पूछा—'आप मेरा साथ देंगे?'

जैसलमेर के महाराजा का जवाब था—'एक शर्त पर। मुझे लिखित आश्वासन चाहिए कि हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच कोई झमेला उठ खड़ा हुआ तो मुझे और मेरी रियासत को एकदम निष्पक्ष रहने दिया जाएगा।'

जिन्ना ने विश्वास दिलाया कि ऐसी कोई दिक्कत सामने आएगी ही नहीं और इन छोटी बातों पर सिर खपाना बेकार है। लेकिन इस बातचीत में जोधपुर के महाराजा ने शायद महसूस किया कि एक हिन्दू रियासत का हिन्दू शासक होकर भी वह मुसलमानों के दल में शामिल होने जा रहा है। उसने कहा कि वह उस पर सोचना चाहता है और दिल्ली के होटल में वापस लौट आया।

मेनन को इसकी खबर पहले मिल चुकी थी। उसी शाम मेनन गया मिलने। जोधपुर के महाराजा ने मिलने से ही इन्कार कर दिया। मेनन ने एक पुर्जा भेजा कि वह वायसराय के पास से ज़रूरी खबर लेकर आता है। जब उसे महाराजा के पास पहुँचाया गया तो उसने कहा—

'मैं वायसराय के पास से आ रहा हूँ। वह आपसे तुरन्त मिलना चाहते हैं। आप मेरे साथ वायसराय भवन अभी चलिए।'

दरअसल उस समय वायसराय को कुछ पता ही नहीं था कि क्या हो रहा है और न उसने जोधपुर के महाराजा को मिलने के लिए ही बुलाया था। फिर भी जोधपुर के महाराजा के साथ मेनन वायसराय भवन पहुँचा और इन्तज़ार करने वाले कमरे में उसे बिठाकर वायसराय के पास खबर भेजी कि वह तुरन्त मिलना चाहता है। वायसराय के सोने के कमरे में मेनन पहुँचाया गया। वहाँ मेनन ने जिन्ना की मुलाकात और राजपूत रियासतों को हड़पने की मुस्लिम लीग की चाल बताई। उसने माउण्टबेटन से अनुरोध किया कि वह जोधपुर के महाराजा को पाकिस्तान में शामिल न होने दें। फिर दोनों जोधपुर के महाराजा से मिलने नीचे उतरे। वह तो बहुत ही चिढ़ गया था। उसका धैर्य भी खतम हो गया था और उसके मन में शक भी घर कर चुका था। इस तरह की मसालेदार स्थितियों में माउण्टबेटन को मज़ा आता था।

तुरत माउण्टबेटन की पूरी मोहिनी काम करने लगी। फिर भी वह भीतर से बड़ा ही सरल बना रहा उस स्कूल मास्टर की तरह जो होनहार किन्तु शैतान लड़के को नया पाठ पढ़ाने जा रहा हो। उसने तुरत कहा कि पाकिस्तान में शामिल होने का

महाराजा को हर कानूनी हक था। लेकिन क्या वह महसूस कर रहा था कि इसका नतीजा क्या होगा ? हिन्दू रियासत के हिन्दू शासक की हैसियत से वह इस सिद्धान्त का विरोध कर रहा था कि हिन्दुस्तान को मुस्लिम और गैर मुस्लिम हिस्सो मे बाँटा जा रहा है। पाकिस्तान मे शामिल होने के फैसले के कारण उसकी रियासत मे काफी साम्प्रदायिक झमेले हो सकते है जहाँ गैर-कानूनी ही सही, पर बड़ा ही जोरदार कांग्रेसी आन्दोलन है।

महाराजा तुरन्त काबू म आ गया। उसन कहा—'जिन्ना ने तो अपनी शर्तें लिख डालन के लिए मेरे सामन सादा कागज रख दिया था। आप क्या देंगे मुझको ?'

मेनन ने जवाब दिया—'आप चाह तो मैं भी सादा कागज दे सकता हूँ। लेकिन उसकी ही तरह इसमे भी आपके हाथ कुछ नही आएगा।'

माउण्टबेटन दोनो के समझौत पर जोर दे रहा था। आखिरकार इस पर सब राजी हुए कि मेनन भी थोडी बहुत सुविधाएँ दे और दो-चार दिनो मे सब बातें चिट्ठी के रूप मे लिखकर जोधपुर जाय।

वायसराय ने दोनो की पीठ थपथपाते हुए कहा—'तो बात तय हो गई।' वायसराय बडा ही प्रसन्न था। इसी समय उसे कुछ देर के लिए बुलाया गया। जैसे ही वायसराय दरवाज के बाहर हुआ, मेनन की ओर नौजवान महाराजा घूमा।

'तुमन मुझे धोखा दिया'—उसन कहा—'बहाना बनाकर तुम मुझे यहाँ लाये और अब मैं तुम्हारी जान ले लूंगा।'

उसके हाथ मे एक पिस्तौल थी जिसका निशाना सीधा वी० पी० मेनन का सिर था। वह कहता गया—'मैं तुमस हुक्म नहीं ले सकता।'

मेनन गोलमटोल आदमी ह और उसके चेहरे मे साहस नही टपकता। फिर भी उसन, जहाँ तक बन पडी, उस सजीदगी स कहा—

'अगर आप समझते है कि मेरी जान लेने म और अधिक सुविधाएँ मिल जाएँगी तो आप गलती कर रह है। यह बचकाना नाटक बन्द करिए।'

इस पर जोधपुर का महाराजा ठठाकर हँस पडा और उसने पिस्तौल जब के हवाले की। जब माउण्टबटन लौटा तो मेनन ने बताया कि उसे पिस्तौल से धमकाया गया है।

वायसराय न धीमे म कहा—'यह मजाक का समय नही। तो फिर दस्तखत करने के बारे म क्या हुआ ?'

लकिन तीन दिन बाद ही उद्दंड और उखडा हुआ जोधपुर का महाराजा सचमुच काबू में आ गया। तब तक वह जोधपुर लौट चुका था और समझौते की दस्तावेज जिसम मेनन ने कुछ सुविधाएँ दी थी, ले मेनन जोधपुर गया। जब मेनन की गाडी महाराजा के भवन पहुँची तो मेनन ने देखा कि काफी बडी भीड मेनन और कांग्रस के खिलाफ नारे लगा रही है और प्रदर्शन कर रही है। मुश्किल स रियासत की पुलिस ने उसे बचाकर महाराजा के भवन के भीतर पहुँचाया। हँसता हुआ जोधपुर का महाराजा उसकी प्रतीक्षा कर रहा था।

उसने कहा—'यह सिर्फ आपको दिखाने के लिए था कि मैं भी प्रदर्शनकारियों को इकट्ठा कर सकता हूँ।'

मेनन के इम्तहान की शुरुआत ही थी यह।

दस्तावेज पर दस्तखत हो गया, शर्तें दोनों को मंजूर थीं।

फिर जोधपुर के महाराजा ने मेनन से कहा—'अब हम लोगों को पीना चाहिए। मैं हार गया हूँ, आप जीत गए हैं इसलिए हम लोग अब पीना शुरू करें।'

उसने ताली बजाकर ह्विस्की और सोडा मँगवाया। दोनों ग्लास को आधा भर कर अपना ग्लास एक साँस में पी गया। मेनन चुस्कियाँ लेता रहा महाराजा के गले के नीचे ह्विस्की के ग्लास उतरते गए और वह मेनन को और पीने का बढ़ावा देता रहा।

अन्त में मेनन ने कहा कि वह और नहीं पी सकता जब तक कि वह नहाकर और कपड़े बदलकर न आये। उसका माथा ठनक रहा था। महाराज पर नशा छा रहा था। और उसे मजा आ रहा था।

महाराजा ने कहा—'अच्छी बात है। लेकिन एक शर्त पर, जब मैं लौटूँ तो हम लोग जरा शैम्पेन पीएँगे।'

मेनन ने एतराज किया। वह शैम्पेन नहीं पी सकता था। उसको सिर दर्द हो जाता था। उसे ह्विस्की पसन्द थी।

महाराजा ने चिल्लाकर कहा—'देखिए आप कैसे डिक्टेटर हैं। आप जीत गए हैं इसलिए मुझे यह भी बता रहे हैं कि मैं कौन-सी शराब पीऊँ।'

आखिरकार किसी तरह महाराजा को जाकर कपड़े बदलने के लिए राजी किया गया। जब वह लौटा तो उसके साथ शैम्पेन की बेशुमार बोतलें भी आईं। धीरे-से मेनन ने ह्विस्की माँगी। उसके बदले शैम्पेन का दूसरा ग्लास मिला। इसी बीच अंगरक्षक को बुलाकर कहा गया कि शाम के लिए बैंड और भोज का इंतजाम होना चाहिए।

भोज में गोश्त, शिकार शराब और शैम्पेन थी। बैंड लगातार बज रहा था। तवायफें ठुमक रही थीं। शरीफ मेनन आँखें नीची कर हिन्दुस्तान में शामिल होने की ही बात करता जा रहा था। एक मौके पर गुस्से में महाराजा ने बैंड बन्द करवा दिया—'इतना शोर हो रहा है कि मैं सुन ही नहीं सकता आपकी बात। मेरे लिए आर्केस्ट्रा का इन्तजाम क्यों नहीं हुआ। (अंगरक्षक से) जाओ मेरे लिए आर्केस्ट्रा का इन्तजाम करो।'

मेनन ने याद दिलाया कि खुद महाराजा ने बैंड मँगवाया था।

बड़ी गम्भीरता से महाराजा ने जवाब दिया—बस इसी से पता चलता है कि अब समय आ गया है और हिन्दुस्तान की सरकार को बागडोर अपने हाथ में ले लेनी चाहिए। कैसी रियासत है यह जहाँ अंगरक्षक उस आदमी का हुक्म मानता है जिसने एक बोतल ह्विस्की और तीन बोतल शैम्पेन पी रखी है।'

उसने अपनी पगड़ी उतारी और जमीन पर फेंक दी।

मेनन ने सोचा कि अब दिल्ली की गाड़ी पकड़नी चाहिए। लेकिन महाराजा इसके

लिए वहाँ तैयार था उसने मेनन को अपने खास हवाई जहाज में बिठाकर दिल्ली के लिए उड़ान भरी। शराब के नशे में अब भी वह चूर था और हवा में हर तरह की कलाबाज़ी दिखा रहा था।[1]

दिल्ली पहुँचने तक मेनन की हालत खराब थी। लेकिन उसके पास दस्तखत की हुई दस्तावेज थी और राजपूत रियासतों को पाकिस्तान में शामिल होने से उसने बचा लिया था।

कुछ दिनों बाद ही भोपाल का नवाब भी रास्ते पर आ गया। तीसरे गुट की उसकी योजना मिट्टी में मिल चुकी थी। खुद तो वह मुसलमान था लेकिन उसकी रियासत की अधिकांश आबादी हिन्दू थी और पाकिस्तान में शामिल होने का खतरा वह नहीं उठा सकता था। लेकिन उसने बड़ी सफाई से घुटने टेके। उसने सरदार पटेल को लिखा—

'मैं यह नहीं छिपाता कि जब तक लड़ाई चल रही थी, अपनी रियासत की निष्पक्षता और आजादी की रक्षा के लिए मैंने अपनी पूरी ताकत लगा दी। अब जब मैंने हार मान ली है, आप देखेंगे कि मैं जितना कट्टर दुश्मन था उतना ही वफादार दोस्त भी हो सकता हूँ। किसी के खिलाफ मेरे दिल में कीना नहीं क्योंकि लड़ाई के इस दौर में आपकी ओर से मुझे समझदारी और सम्मान का व्यवहार मिला है, मेरी बातों को समझने की कोशिश की गई है। मैं अब यह बताना चाहता हूँ कि देश को तोड़ने फोड़ने वाली शक्तियों के खिलाफ जब तक आप मजबूती से मोर्चा लेते रहेंगे और रजवाड़ों के दोस्त रहेंगे आप मुझे हमेशा एक सच्चा और वफादार साथी पाएँगे।'

पटेल ने भी शालीनता का परिचय दिया और लिखा—

'सच्ची बात यह है कि आपकी रियासत का हिन्दुस्तान में शामिल होना, मेरी समझ से, न तो हमारी जीत और न आपकी हार है, जो उचित था और जिसका होना लाज़िमी था उसी की आखिर में जीत हुई। आपने और मैंने तो सिर्फ अपना पार्ट अदा किया है। इस व्यवस्था की पायेदारी को समझने और अपने पुराने कदमों को छोड़ने में आपने जिस साहस, हिम्मत और ईमानदारी का परिचय दिया है उस की तारीफ करनी ही पड़ती है क्योंकि आपका वह कदम न सिर्फ हिन्दुस्तान बल्कि आपकी रियासत के हितों के लिए भी उतना ही गलत था। धर्म, जाति और सम्प्रदाय के बावजूद सभी गैर वफादार लोगों के खिलाफ लड़ने और सच्ची वफादार दोस्ती का हाथ बढ़ाने की बात पढ़कर बड़ी खुशी हुई। पिछले चन्द महीनों में मुझे बड़ी निराशा और बड़ा अफसोस होता रहा कि जब देश ऐसे नाजुक दौर से गुजर रहा था तो आपकी प्रतिभा और क्षमताओं का देश को फायदा नहीं हो सका। और इसलिए आपकी सहायता और दोस्ती को मेरे लिए बड़ा मूल्य है।'

यह तो शुरुआत का अन्त था लेकिन अन्त की सिर्फ शुरुआत हुई थी। बड़ी

---

1 1952 में हवाई जहाज की एक दुर्घटना में वह मारा गया। उसके साथ बम्बई की एक नर्तकी भी, जो उसकी आखिरी पत्नी थी, मरी।

रियासत, छोटी रियासत, महाराजा, राजा, जागीरदार सभी दस्तखत करने के लिए कतारों में सज गए। लेकिन आज़ादी का दिन जैसे-जैसे क़रीब होता गया, तीन अपनी जगह पर अड़िग थे। उनमें दो तो काफ़ी प्रमुख रजवाड़े थे।

तीसरा, जो प्रमुख नहीं था, इस खेल का मोहरा था। पश्चिमी हिन्दुस्तान की काठियावाड़ी रियासतों में से एक था जूनागढ़। काठियावाड़ के रजवाड़ों में सिर्फ़ इसी एक का शासक मुसलमान था और जूनागढ़ का नवाब तो बिलकुल खास चीज़ था। महाराज अलवर की तरह यह भी सनकी था। रेस के घोड़ा को तो इसने नहीं जलाया लेकिन इसकी तबियत भी बड़ी अजीब और क्रूर थी। जूनागढ़ हिन्दुस्तान का एक बहुत ही खूबसूरत हिस्सा है। इसके मुस्लिम शहर की दीवारों के बाद दो पहाड़ हैं जिनकी ऊँचाई लगभग 3800 फीट है और जहाँ हिन्दुओं का तीर्थस्थान है। पहाड़ी चढ़कर एक स्थान पर कोढ़ी नीरोगता के लिए प्रार्थना करने आते हैं। गिरनार पर्वत पर जैनियों का तीर्थस्थान है।

जैन कट्टर शाकाहारी हैं जिनका तीन चीज़ों पर विश्वास है। पहली बात तो है कि दुनिया में जितनी भी चीज़ें हैं सभी की आत्मा होती है। दूसरी बात है सभी जीव-मात्र के प्रति दया। किसी भी जीव पर हिंसा मना। जैन साधु मुँह पर कपड़ा बाँधकर चलते हैं ताकि साँस लेते समय कीड़ों-मकोड़ों की हिंसा न हो जाय। तीसरी बात स्वभावतया है कट्टर अहिंसा। जहाँ जानवरों पर दया नहीं दिखाई जाती वहाँ जैनी उन चिड़ियों, गदहों, कुत्तों, बिल्लियों, खच्चरों और ऊँटों पर दया दिखाते हैं जो या तो बूढ़े हो गए हैं या जिन पर मनुष्य ने अत्याचार किया है।

गिरनार पहाड़ पर जैनियों ने बड़ा ही शानदार और परिस्थिति के लिहाज़ से बड़ा ही विलक्षण धर्मस्थान तैयार किया है। पहाड़ की चढ़ाई पर पत्थर काटकर चोटी तक तीन फीट चौड़ी सीढ़ियाँ तैयार की गई हैं। सीढ़ियों के दोनों ओर हज़ार-पन्द्रह सौ फीट का खड़ा ढलान।

इन सीढ़ियों के सहारे जैनियों ने संगमर्मर के टुकड़े चोटी तक पहुँचाये हैं जहाँ कई मन्दिरों का निर्माण हुआ है। ये मन्दिर बड़े विशाल हैं और इनकी मूर्तियाँ अद्भुत। जैन अपनी आत्मा, विवाह, सन्तान आदि के लिए यहाँ प्रार्थना करते हैं। सिर्फ़ बड़ा मोटा या बड़ा कमज़ोर या बहुत धनी जैनी अथवा नज़ारत से घूमनेवाले ही कुलियों के सहारे ऊपर जाते हैं। अधिकांश धर्मार्थी पैदल ही जाते हैं और नीचे के तालाबों में स्नान करने के लिए उतरते हैं, जहाँ नंगे साधुओं और बन्दरों की भरमार है।

जूनागढ़ की ख्याति का एक और कारण था और है भी। सिर्फ़ गिर के जंगलों में ही शेर पाए जाते हैं, एशिया में और कहीं नहीं।

यह बड़ा ही व्यंगात्मक लगता है कि अहिंसा के ऐसे कट्टर पुजारियों के पास ऐसा शासक हो जिसे खून खराबी और हिंसा ही अच्छी लगे। कुछ हद तक यह शानदानी शौक ही था। उसके बाप का एक प्यारा खेल यह था कि वह राजनीतिक विरोधियों और नज़र से उतरे हुए दरबारियों को नीचे चट्टान पर फेंककर मरवा डालता था।

नवाब की दो लतें थीं—कुत्ते पालना और शिकार करना। वह कुत्ते पालता था और उन्हें प्यार करता था। अपने महल के चारों ओर उसने उनके रहने के लिए घर बनवाए थे। उन्हें कमरा ही कहना ज्यादा ठीक होगा। लगभग डेढ सौ कुत्तों के लिए नहाने, सोने, खाने, नौकर और टेलीफोन की अलग-अलग व्यवस्था थी। एक अंग्रेज डॉक्टर उनकी देखभाल के लिए था। पालकियों मे बिठाकर कुत्तों को नवाब के सामने लाया जाता था। जब कुत्ते सुहागरात मनाते थे तो एक दिन की छुट्टी लोगों को दी जाती थी।

उसके पास शिकारी कुत्तों (हाउण्ड्स) का एक ऐसा झुण्ड भी था जिसके साथ वह शिकार करने जाता था। हिन्दुस्तानियों का कहना है कि वह कुत्तों को भूखा रखता था और जानबूझकर हिरण या शेर को घायल कर कुत्तो को छोड देता था। भूखे कुत्ते उस घायल जानवर के टुकड़े-टुकडे कर देते और उसे बडा मजा आता

मुसलमान की हैसियत से नवाब की चार बीवियाँ थीं और कई रखैलियाँ। इनके बारे में भी उसका वही रुख था जो हिन्दुस्तान या पाकिस्तान में शामिल होने के बारे में।

वायसराय की बैठक के बाद जूनागढ के नवाब ने बता दिया था कि वह हिन्दुस्तान मे शामिल हो जायगा। उसके मुसलमान होने के बावजूद मौजूदा हालत में यह फैसला ठीक ही था। जूनागढ की आबादी का 80 से 90 प्रतिशत हिस्सा हिन्दू था। समुद्र को छोडकर इसके चारो तरफ जो भी रियासतें थीं सभी के शासक हिन्दू थे और हिन्दुस्तान में शामिल हो चुके थे। पाकिस्तान से सिर्फ समुद्री लगाव था, वह भी 240 मील की दूरी। हिन्दुस्तान का सबसे भारी भरकम, मोटा और हैंसोड रजवाडा, नावानगर का जामसाहब कठियावाडी रियासतों का प्रतिनिधि माना गया था। उसने दिल्ली मे खबर दी कि किसी के भी शामिल होने मे कोई कठिनाई नही होगी। ऐसा लगता था कि रजवाडो की यह समस्या आखिरकार सुलझ ही गई थी।

जहाँ तक जूनागढ का सवाल था, बात ऐसी नहीथी। वह एक तरफ तो कांग्रेस से मीठी-मीठी बात कर रहा था और दूसरी तरफ पाकिस्तान में भी उसकी बात चल रही थी। यह विश्वास करना तो कठिन लगता है कि जिन्ना सचमुच जूनागढ को पाकिस्तान मे शामिल कराना चाहता था। जिन्ना के लिए इस समय और भी जरूरी मसले सामने थे और जूनागढ तो प्रशासन की दृष्टि से उसकी मुसीबत बन जाता। लेकिन मुस्लिम लीग और कांग्रेस की जो दाँवपेंच चल रही थी उसमे यह बड़े ही काम का मोहरा था।

उत्तर की तरफ एक बहुत बडा और प्रमुख रजवाडा था—चहकता हुआ और सुहानुमा काश्मीर—जिसने अभी फैसला नही किया था। दोनो उपनिवेश उसे चाहते थे और दोनो से उसकी सीमा-रेखा मेल खाती थी। काश्मीर किधर जायगा ? जूनागढ कीठीक उलटी हालत थी। महाराजा हिन्दू था, अधिकांश आबादी मुस्लिम। उपनिवेश मे शामिल होने की समस्या इतनी मिलती-जुलती थी कि कम से कम काश्मीर के मामले में कांग्रेस की चाल और नेकनीयती का जूनागढ की समस्या मे जिन्ना को

पता तो चल जाता।

1947 के शुरू में मुस्लिम लीग के एक कूटनीतिज्ञ अब्दुल कादिर मुहम्मद हुसैन को जूनागढ भेजा गया था। जब मुस्लिम लीग और कांग्रेस ने देश का बँटवारा मान लिया उसके कुछ ही दिन बाद उसने पुराने दीवान नबी बख्श को निकलवाया। नबी बख्श हिन्दुस्तान में शामिल होने का हिमायती था। हुसैन ने अब नवाब पर अपना जादू शुरू किया। नवाब को उसने विश्वास दिला दिया कि कांग्रेस उसके कुत्तों को मार डालेगी, उसके क्रूर शिकारों को बन्द कर देगी, उसकी रखैलियों की सख्या पर पाबन्दियाँ लगा देगी और गिर के शेरों का राष्ट्रीयकरण कर देगी। दूसरी ओर पाकिस्तान न सिर्फ आज़ाद ज़िन्दगी बसर करने का बढ़ावा देगी बल्कि उसकी मर्जी के खिलाफ जनता ने सिर उठाया तो उसे कुचलने में मदद करेगी।

वायसराय की बैठक के बाद तुरन्त दस्तखत के लिए नवाब के पास दस्तावेज भेज दी गई थी। लेकिन दिन गुजरते गए और दस्तावेज नहीं आई। पटेल और मेनन ने तार पर तार भेजे। कोई जवाब नहीं। आज़ादी का दिन नजदीक आया लेकिन जहाँ तक कांग्रेस का सवाल था, नवाब चुप था। इसलिए जब अखबारों में पता चला कि नवाब ने पाकिस्तान में शामिल होने का फैसला किया है तो स्टेट्स विभाग में तहलका मच गया। हिन्दुस्तान के पास कोई खबर भी नहीं भेजी गई। अखबारों में नवाब का घोषणा पत्र आया जिसमें था —

'पिछले कुछ सप्ताह से जूनागढ की सरकार के सामने यह सवाल रहा है कि वह हिन्दुस्तान या पाकिस्तान में शामिल होने का फैसला करे। इस मसले के सभी पहलुओं पर सरकार को अच्छी तरह गौर करना पड़ा है। वह ऐसा रास्ता अख्तियार करना चाहती थी जिससे अन्तत जूनागढ के लोगों की तरक्की और भलाई स्थायी तौर पर हो सके तथा राज्य की एकता कायम रहे और साथ ही साथ इसकी आज़ादी और ज्यादा से ज्यादा बातों पर इसके अधिकार बने रहें। गहरे सोच विचार और सभी पहलुओं की जाँच-परख के बाद सरकार ने पाकिस्तान में शामिल होने का फैसला किया है और अब उसे ज़ाहिर कर रही है। राज्य को विश्वास है कि वफादार रियाया, जिस के दिल में राज्य की भलाई और तरक्की है, इस फैसले का स्वागत करेगी।'

नवाब को चाहे पता हो न या हो, जिन्ना और लियाकतअली को पता था कि यह घोषणा कोरी बकवास है। जूनागढ की रियासत एक लगातार टुकड़ा नहीं थी। इसके बीच-बीच और रियासतों के हिस्से भी थे। काठियावाड़ी रियासतों में से गोंडाल, बड़ौदा, भावनगर हिन्दुस्तान में शामिल हो चुके थे। जूनागढ के ठीक बीच में कई ऐसी रियासतें थीं जो हिन्दुस्तान में शामिल हो चुकी थीं। अब उनके चारों ओर पाकिस्तान की जमीन थी और जूनागढ को कर दिए बगैर वे किसी काठियावाड़ी रियासत से व्यापार भी नहीं कर सकते। स्थिति बिलकुल गई बीती थी जिसे नवाब जैसा मूर्ख ही पैदा कर सकता था।

भारत सरकार ने तुरन्त लियाकतअली खाँ से पूछा कि क्या पाकिस्तान इसे कबूल करेगा। लेकिन कोई जवाब नहीं आया। ज़ाहिर था कि स्थिति की गम्भीरता और

कांग्रेस की सरगर्मी का मजा आ रहा था मुस्लिम लीग को। वे किसी तरह की मदद नहीं करना चाहते थे। हफ्तों बाद उन लोगों ने घोषणा की कि जूनागढ़ का फैसला मान लिया गया है और अब वह पाकिस्तान का हिस्सा माना जायगा। इस रियासत को पाकिस्तान में शामिल करने के लिए पुलिस की छोटी-सी टुकड़ी भेजने के अलावा कुछ किया भी नहीं। उन्हें अच्छी तरह पता था कि यहाँ की अधिकांश हिन्दू आबादी कांग्रेस की हिमायती है, वहाँ का छिपा हुआ कांग्रेसी आन्दोलन काफी ताकतवर था और उस रियासत को पाकिस्तान का हिस्सा बनाकर गलती का एक कदम बिलकुल विस्फोट पैदा कर देगा। कुछ मनकियों को छोड़कर, मुस्लिम लीग इस मामले में कुछ नहीं करना चाहती थी। उन्हें सिर्फ चुप बैठकर तमाशा देखना था और इन्तजार करना था।

जल्दी ही भारत सरकार ने घोषणा शुरू की कि नवाब के उत्पीडन के कारण जूनागढ़ से हिन्दू शरणार्थी भाग रहे हैं। जूनागढ़ के बीच जो रियासतें थीं वहाँ की रियाया ने भी भारत सरकार से मदद माँगी। वे लोग चारों तरफ से घेर लिये गए थे। नवाब ने अपनी फौज भेजकर इन रियासतों पर तुरन्त कब्जा कर लिया।

फिर तो इन इलाकों में भारतीय सेना को जाना ही था। खास जूनागढ़ की रियासत पर दखल करने के पहले भारतीय सेना ठिठकी। कांग्रेस को शक था कि जाल में उसे फँसाया जा रहा है। लेकिन फिर कांग्रेस ने फैसला कर लिया। कुछ हफ्तों तक तो जूनागढ़ पर घेरा पड़ा रहा। रसद कम होती गई। फिर रसद से लदी हुई भारतीय सेना आगे बढ़ी और जनता ने दिल खोलकर स्वागत किया। नवाब पहले ही अपने खास हवाई जहाज में पाकिस्तान भाग गया था। चार बीवियों के साथ जितने भी कुत्ते समा सके, उसने हवाई जहाज में भर लिया। आखिरी वक्त में एक बीवी को खयाल आया कि वह अपना बच्चा तो महल में ही छोड़ आई थी नवाब को रुकने के लिए कहकर वह महल को भागी। नवाब दो और कुत्तों को हवाई जहाज में भरकर रवाना हो गया। एक बीवी छूट गई। खानदानी जवाहरातों के नाम पर उसने इतनी रकम साथ रख ली थी कि उसकी और उसके परिवार की अच्छी परवरिश हो जाती लेकिन इसके अलावा उसने कुछ साथ नहीं लिया।

हालाँकि पाकिस्तान की सरकार ने इस घटना पर नाराज होने का दिखावा तो किया, यह ठीक था कि जिन्ना और लियाकतअली जरूर खुश हुए होंगे। जूनागढ़ की मिसाल हमेशा पेश की जा सकती थी। इसका प्रधान उपयोग तो था कांग्रेस की नीयत की जाँच। और कांग्रेस की क्या प्रतिक्रिया हुई ? जब एक हिन्दू रजवाड़े के मुसलमान शासक ने पाकिस्तान में शामिल होने का फैसला किया तो उन लोगों ने उसे नहीं माना।

यह काश्मीर के भविष्य के लिए एक नसीहत था और उन लोगों को उम्मीद थी कि दुनिया ने यह तमाशा खुली आँखों से देखा था। अगर काश्मीर जैसे मुसलमान रजवाड़े का हिन्दू शासक हिन्दुस्तान में शामिल होना चाहे तो पाकिस्तान को भी नहीं कहने का अधिकार था।

लेकिन ब्रिटिश राज के आखिरी दिन बीतते जा रहे थे और काश्मीर का महाराजा कुछ भी कहने के लिए तैयार नहीं था। दरअसल सर हरिसिंह को हर तरह का बढ़ावा दिया जा रहा था कि वह चुप ही रहे। महाराजा को प्यार करने का कोई कारण नहीं था पंडित नेहरू के लिए। जिन बातो मे इस हिन्दुस्तानी नेता को नफ़रत थी उन्हीं से महाराजा को प्यार था। महाराजा अहकारी और तानाशाह था जिसे जनता के हित की कोई परवाह ही नही थी। उसने काग्रेस के प्रति अपनी घृणा का अच्छा परिचय दे ही दिया था। उसके सदस्यो के दमन और नेताओ की गिरफ्तारी के साथ-साथ उसने पंडित नेहरू को भी यह धमकी दी थी कि अगर वह काश्मीर के भीतर आया तो गिरफ्तार कर लिया जायगा, गो पंडित नेहरू खुद काश्मीरी ब्राह्मण था। फिर भी पंडित नेहरू ने महाराजा को ये सवाद भेजे कि जल्दी मे कोई फ़ैसला न करे। गाधी ने भी, अपनी दक्षिण की उलझन से निकलकर, यही सन्देशा महाराजा को भेजा। नेहरू ने महसूस किया कि उसे श्रीनगर जाकर भविष्य के बारे म महाराजा से बात करनी चाहिए। गाधी ने कहा कि उसे पहले जाकर नेहरू का रास्ता साफ कर आना चाहिए नही तो कहीं वह गिरफ्तार न हो जाय।

माउण्टबेटन ने कहा कि वह खुद जायगा। आखिर वह सर हरिसिह का पुराना दोस्त था। जब प्रिंस ऑफ वेल्स ने हिन्दुस्तान का दौरा 1921 मे किया था तो दोना साथ-साथ उसके अगरक्षक की तरह काम कर रहे थे। सही फ़ैसले की सलाह देनेवाला और रास्ता सुझानेवाला उससे अच्छा और कौन हो सकता था ?

इसलिए वह 21 जून, 1947 को काश्मीर गया और महाराजा के साथ श्रीनगर म ठहरा। उसने जार्ज एबेल को साथ लिया। माउण्टबेटन जैसा आदमी, जो फैसला करने पर तूफानी चाल से काम करता था, अड़तालीस घण्टो मे कुछ भी हासिल नही कर सका। कैम्बेल-जानसन के शब्दो म—

'काश्मीर पहुँचकर माउण्टबेटन न पाया कि राजनीतिक मामलो मे महाराजा पकड मे आ ही नहीं रहा था। जब दोनो साथ-साथ मोटर गाडी मे घूमने तभी इस बात की चर्चा हो पाती। इन मौको पर माउण्टबेटन महाराजा और उसके मन्त्री पडित काक को सलाह देता था कि वे आजादी की घोषणा नहीं कर बल्कि किसी तरह जनता की राय का पता लगाकर 14 अगस्त तक घोषणा करे कि किस उपनिवेश की विधान-सभा म वे अपना प्रतिनिधि भेज रहे है। माउण्टबेटन ने उन्हे यह भी बताया कि हाल मे जो स्टेट्स विभाग बना है वह यह आश्वासन देने के लिए भी तैयार है कि अगर काश्मीर पाकिस्तान मे शामिल होने का फैसला करेगा तो यह भारत सरकार के लिए विरोधी काम नही समझा जायगा। उसने समझाया कि सत्ता सौंपने के दिन तक अगर काश्मीर ने दोनो मे स किसी उपनिवेश म शामिल होने का फैसला नहीं किया तो स्थिति कितनी खतरनाक हो जायगी।'[1]

उसने आगे चलकर लिखा है—'वायसराय की यह मशा थी कि महाराजा को

---

1. ए० कैम्बेल-जानसन—मिशन विद माउण्टबेटन।

अकेले म सलाह दे।''' महाराजा ने प्रस्ताव किया कि वायसराय से काश्मीर ठहरने की अवधि के आखिरी दिन यह बातचीत हो। माउण्टबेटन राजी हो गया। उसने सोचा कि इस तरह फैसला करने के लिए उसे ज्यादा-से-ज्यादा समय मिल जायगा। लेकिन जब समय आया तो महाराजा ने कहला भेजा कि वह पेट के दर्द से बिस्तर पर पड़ा है और बातचीत के लिए नहीं आ सकता। ऐसा लगता है कि महाराजा जब किसी उलझी हुई समस्या से कतराना चाहता था तो यही बीमारी हो जाती थी उसको। यह तो कहने की जरूरत ही नहीं कि माउण्टबेटन इस घटनाक्रम से बड़ा निराश हुआ।'[1]

इस घटना के बारे म ध्यान देने की यह बात है कि काश्मीर के महाराजा की यह बहानबाजी और हरकतें किसी भाग्यवादी की तरह माउण्टबेटन ने मान ली। गांधी और नेहरू इसे मान लेते तो बात समझ म आती। उनको इससे फायदा ही था। समय उनके पक्ष मे था। महाराजा को समझाया जा सकता था। या इराकर काश्मीर के सबसे प्रभावशाली नेता शेख अबदुल्ला को जेल से रिहा कराया जा सकता था। शेख अबदुल्ला मुसलमान होने के बावजूद पंडित नेहरू का गहरा दोस्त और हिन्दुस्तान का हिमायती था। उसे हिन्दुस्तान में शामिल होने के लिए आन्दोलन खड़ा करने का काम सौंपा जा सकता था।

लेकिन वायसराय ने इतनी नर्मी से महाराजा के बहान क्या मान लिए? अगर इस राज्य के भविष्य के बारे मे फैसला नहीं हुआ तो दोनों उपनिवेशों के सम्बन्ध बिगड़ने की सबसे ज्यादा उम्मीद थी। इसकी सीमा-रेखा न सिर्फ दोनों उपनिवेशों, भारत और पाकिस्तान—से मिलती थी बल्कि अफगानिस्तान, रूस और चीन से भी। विश्व शान्ति और स्थानीय अमन चैन के लिए भी यह जरूरी था कि इस रजवाड़े का भविष्य अनिश्चित नहीं छोड़ा जाय। हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के लिए काश्मीर के महत्त्व के अलावा, एक सिपाही की हैसियत से, यह उम्मीद की जा सकती थी कि माउण्टबेटन इसके भौगोलिक महत्त्व को समझेगा। अगर उस बतान की जरूरत ही होती तो कोई भी दावपेच जानने वाला उसे बता सकता था कि इसी हिस्से से होकर हिन्दुस्तान पर हमलावर धावा करने रहे हैं। अगर वह कहता कि ठीक है, इसे हिन्दुस्तान म शामिल होने दो क्योंकि वे इसकी अच्छी हिफाजत करेंगे। हालांकि यहां की आबादी मुस्लिम है, तो उसे साफ किया जा सकता था। या वह यह भी कह सकता था कि इसे पाकिस्तान को दे दो। एक संगठित मुस्लिम टुकड़े की तरह यह हिन्दुस्तान के उत्तरी सरहद की हिफाजत करता रहेगा।

में, अगर किसी उपनिवेश में शामिल ही होना है तो हिन्दुस्तान की ओर आपका झुकाव है। लेकिन आपको पता है कि आपके लोग इसे पसन्द नहीं करेंगे। आप जानते हैं कि उनका झुकाव पाकिस्तान की ओर होगा। यह एक समस्या है, मैं मानता हूँ। लेकिन भगवान् के लिए फैसला तो करिए। और मेरे दिल्ली जाने के पहले दो घण्टे के भीतर आप फैसला नहीं कर सकते तो मैं आपके बदले फैसला कर दूंगा और लोगों को बता दूंगा।'

माउण्टबेटन ने सत्ता सौंपने की बातचीत के दौरान म इससे कहीं ज्यादा साहस के काम किए हैं और काश्मीर महाराजा जैसे नाज़ुक, बेअसर और बेचारे लोगों के मुकाबले कहीं ज्यादा तगड़े लोगों के विरोध में।

फिर उसने ऐसा क्यों नहीं किया ? इस महत्वपूर्ण मौके पर उसका रवैया कहाँ ग़ायब हो गया ?

क्या यह हो सकता था कि लगातार बातचीत की थकान, पाकिस्तान के गवर्नर जनरल की समस्या पर जिन्ना का कतराना और क्षणिक रूप म मुसलमानों के प्रति वितृष्णा के कारण उसे भी राजनीतिक पट-दर्द हो गया था ?

अपनी प्रामाणिक किताब सरवे आफ ब्रिटिश कामनवेल्थ एफेअर्स[1] में निकोलस मैनसर्ग ने लिखा है—

'काश्मीर दोनों उपनिवेशों की सीमा पर है, दोनों का पड़ोसी। जहाँ इसका शासक हिन्दू था, उसकी आबादी अधिकांशतः मुसलमान। पूरे देश म ऐसा कोई रजवाड़ा नहीं था जिसका भविष्य अनिश्चित छोड़ देने पर (जबकि स्वतन्त्र राजकीय सत्ता हटा ली जाती) दोनों उपनिवेशों म अनबन की ज्यादा सम्भावना हो। इससे जो समस्याएँ सामने रखी थीं उन पर गहरी छानबीन नहीं करने का लाजिमी नतीजा था ऐसी ग़लती जिसके खतरनाक फल होने।'

पाकिस्तान क लिए तो यह बहुत बड़ी हार थी। और पाकिस्तान के नाराज़ होने के कई कारण थ। जूनागढ़ ने साबित कर दिया था कि जिस रजवाड़े की आबादी हिन्दू हो उसके मुसलमान शासक का पाकिस्तान म शामिल होना हिन्दुस्तान बर्दाश्त नहीं कर सकता था। लेकिन इसकी विपरीत स्थिति तब सामने आई, जब मुसलमान आबादी वाले रजवाड़े क हिन्दू शासक न हिन्दुस्तान म शामिल होने क लिए फैसला किया तो ? हिन्दुस्तान ने अपनी लूट बचाने के लिए फौज भेजी, सिर्फ शान्ति स्थापित करने तक वहाँ रहने का वादा किया और फिर जम ही गए।[2] हिन्दुस्तान और

---

1 आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस,1958

2. कश्मीर के महाराजा को धोखा दिया गया और पाकिस्तान तथा भारत के स्वाधीन होने के बाद भी वह असमंजस में रहा। 1947 के अक्तूबर के अन्त में पठान कबायलियों ने कश्मीर पर हमला किया। महाराजा ने मदद माँगी। वी० पी० मेनन ने महाराजा से मुलाकात की और महाराजा हिन्दुस्तान में शामिल हो गया। तुरन्त भारतीय सेना रवाना हुई, कबायलियों को खदेड़कर कश्मीर को [illegible]। इसके बाद लार्ड इस्मे ने [illegible] के साथ [illegible] में [illegible] कि उसने भी इस बात

पाकिस्तान का रिश्ता बरसों के लिए तीखा बन गया।

जब कश्मीर की गाड़ी वायसराय की गलती से एक रास्ते पर चली जा रही थी, उसकी सभी कोशिशों के बावजूद हैदराबाद की गाड़ी जहाँ की तहाँ जमी हुई थी।

9 जून, 1947 को निजाम ने वायसराय को अपनी तरफ करने की एक और कोशिश की। वह पाकिस्तान और हिन्दुस्तान से अलग स्वतन्त्र रहना चाहता था। माउण्टबेटन के नाम एक पत्र में उसने लिखा—

'पिछले कुछ दिनों में मैंने स्वाधीनता बिल का सातवाँ हिस्सा (क्लाज), जैसा कि अखबारों में आया है, देखा। मुझे अफसोस है कि पिछले महीनों में जैसा अक्सर होता रहा, कि इस मामले में राजनीतिक नेताओं से अच्छी तरह बातचीत की गई और रजवाड़ों के प्रतिनिधियों से बातचीत तो दूर, उन्हें यह दिखाया भी नहीं गया। यह देखकर मुझे दुख हुआ कि यह बिल न सिर्फ एक तरफा ढंग से ब्रिटिश सरकार के साथ की गई सन्धियों और समझौतों को रद्द करती है बल्कि यह आभास भी देती है कि अगर हैदराबाद पाकिस्तान या हिन्दुस्तान का हिस्सा नहीं बन सका तो ब्रिटिश कामनवेल्थ में भी नहीं रह सकेगा। जिन सन्धियों के आधार पर बरसों पहले ब्रिटिश सरकार ने विदेशी हमले और आन्तरिक विद्रोह के खिलाफ मेरे खानदान और इस राज्य को बचाने का वादा किया था उसकी हमेशा दाद दी जाती रही और हिमायत होती रही। इनमें सर स्टैफोर्ड क्रिप्स का 1941 का वादा प्रमुख है। मैंने समझा था कि ब्रिटिश फौज और वादे पर मैं अच्छी तरह भरोसा कर सकता हूँ। मैं अपनी फौज नहीं बढ़ाने के लिए राजी हो गया, अपने कारखानों में हथियार नहीं तैयार करने के लिए राजी हो गया। और उधर हमारी सहमति तो दूर, हमसे या हमारी सरकार से सलाह किए बगैर बिल पास हो गया।

'आपको पता है कि जब आप इंग्लैंड में थे, मैंने माँग की थी कि जब अंग्रेज हिन्दुस्तान छोड़कर जाएँ तो हम भी उपनिवेश का दर्जा मिले। मैंने हमेशा महसूस किया है कि एक शती से ज्यादा की वफादार दोस्ती, जिसमें हमने अंग्रेजों को अपना सारा विश्वास दिया, का इतना तो नतीजा होगा ही कि बिना किसी सवाल के हमें कामनवेल्थ में रहने दिया जायगा। लेकिन अब तो लगता है कि वह भी इन्कार किया जा रहा है। मैं अब भी उम्मीद करता हूँ कि किसी तरह का मतभेद मेरे और बर्तानिया सरकार के सीधे रिश्ते के बीच नहीं आएगा। हाल में ही मुझे बताया गया कि आपने यह भार अपने ऊपर लिया है कि पार्लियामेंट में ऐसी घोषणा होगी ताकि ऐसे सम्बन्ध सम्भव हों।

'मुझे उम्मीद है कि एक बार ऐसा सम्बन्ध हो जाय तो बर्तानिया सरकार और मेरी

की स्वीकृति दी थी क्योंकि 'उस समय कश्मीर में ब्रिटिश थे और कोई दखल नहीं देता तो कत्ल हो जाता इसलिए मैंने भी भारत में दखल देने की स्वीकृति दी थी।' महाराजा को पेंशन दे दी गई। भारत ने कश्मीर की जनता को मतदान का जो वादा किया था वह अधूरा ही रह गया और शेख अब्दुल्ला जो कभी नेहरू का दोस्त था, जेल में पड़ा है।

सरकार के बीच और नजदीकी मेल-मिलाप हो जाएगा। बरसों की वफादार दोस्ती का मेरा इतिहास रहा है।

'जिस तरह मेरे रजवाड़े का साथ बर्तानिया सरकार जैसा पुराना दोस्त और सहायक छोड़ रहा है उसके खिलाफ शिकायत करना अपना कर्तव्य समझता हूँ।

'जिन धागों ने मुझे अंग्रेज शहंशाह की वफादारी और भक्ति में जकड़ रखा था, वे ही तोड़े जा रहे हैं।

'मैं उम्मीद करता हूँ कि आप मेरा यह खत बर्तानिया सरकार के सामने पेश कर देंगे। अभी तो मैं इसे पत्रों में नहीं भेजूंगा क्योंकि इससे मेरे पुराने दोस्त और सहायक को दुनिया के सामने झेंपना पड़ सकता है। लेकिन अगर मुझे रजवाड़े के हित में पीछे चल कर अखबारों में देना ही पड़ा तो मैं उसे अपना अधिकार मानता हूँ।'

लेकिन हैदराबाद के निज़ाम की चाहे जितनी दौलत हो, जितना बड़ा क्षेत्र हो और पुराने जो भी रिश्ते हों, न तो वायसराय और न इंग्लैंड की लेबर सरकार हैदराबाद को हिन्दुस्तान से बाहर जाने देना चाहती थी। निज़ाम को यह बताया गया कि हैदराबाद को बर्तानिया सरकार कभी उपनिवेश का दर्जा नहीं दे सकती क्योंकि इसके चारों ओर उस देश का हिस्सा होगा जो इस स्थिति में दुश्मन बन जाएगा। 'यह तो पोलैंड की कहानी बन जाएगी।'—माउण्टबेटन ने कहा था। वायसराय की नज़र में सिर्फ एक ही रास्ता था—हिन्दुस्तान में शामिल होने के लिए और रजवाड़ों की ही तरह दस्तखत कर दें और मेनन, पटेल तथा नेहरू से विशेष सुविधाओं की बातचीत करें।

पीछे चलकर साबित हो गया कि यह नेक सलाह थी। लेकिन निज़ाम के हैदराबाद वाले और राजनीतिक विभाग के सलाहकारों ने उसे इसे ठुकराने पर राज़ी कर लिया। राजनीतिक विभाग में अब भी सर कानराड कार्फील्ड का काफ़ी प्रभाव था। इसके बदले उसने अपनी सेना तैयार करनी शुरू कर दी, अन्धविश्वासी रज़ाकारों को हथियारों से लैस करना शुरू कर दिया। और यह साफ था कि वह आज़ादी के लिए लड़ने को तैयार है और उसे विश्वास है कि अन्त में उसके वफादार दोस्त अंग्रेज उसका साथ देंगे। माउण्टबेटन की सारी वकालत बेकार गई। उसने निज़ाम के लिए विशेष सुविधाएँ प्राप्त करने का भी वादा किया लेकिन बूढ़े और ज़िद्दी शासक पर कोई असर नहीं पड़ा।

जिस दिन आज़ादी की घोषणा हुई, हैदराबाद आज़ाद ही था। लेकिन जैसे ही अंग्रेजों का प्रभाव पूरी तरह समाप्त हुआ, हिन्दुस्तानियों ने शिकंजा जकड़ दिया।[1]

---

1 जब तक भारतीय उपनिवेश का गवर्नर जनरल माउण्टबेटन रहा, वी० पी० मेनन और पटेल रुके रहे। उन्होंने समझौते की बातचीत भी माउण्टबेटन को चलाने दी। माउण्टबेटन के लंदन लौटने के दो दिन बाद निज़ाम ने घोषणा की कि वह 'माउण्टबेटन योजना' की व्यवस्था को मानने के लिए तैयार है। पटेल ने जवाब दिया—'उनको बता दो कि अब बहुत देर हो चुकी। माउण्टबेटन योजना तो घर चला गया।' इसके कुछ समय बाद ही हिन्दुस्तानी फ़ौज ने हैदराबाद पर कब्ज़ा कर लिया। निज़ाम सिर्फ कठपुतली की तरह रखा गया।

इस तरह जूनागढ, काश्मीर और हैदराबाद को छोडकर सभी रजवाडो ने, जहाँ बताया गया, दस्तखत कर दिए। आनेवाले दिनो मे यह बातचीत होनी थी कि कितना धन वे रख सकेंगे और उन्हे कितनी पेंशन मिलेगा।[1] कुछ समय के लिए नए उपनिवेशो के प्रशासन मे भी उन्हे हाथ बँटाने का हलका मौका मिलेगा।

लेकिन राजवाडो के दिन लद गए थे और उन्हे इसका पता था। सदियो की बबर स्वाधीनता के बाद कुछ ही सप्ताह म वे हिन्दुस्तान के पेट मे समा गए। इनको सर करने का काम हिन्दुस्तान के कूटनीतिज्ञों की सबसे बडी सफलता थी शायद। बिना किसी खून-खराबी के ऐसी विलक्षण सफलता का श्रेय दो आदमियो को था। माउण्टबेटन ने पुचकारकर और डरा धमकाकर काम लिया था। वी० पी० मेनन ने चालाकी मे नए पैंतर बदले और उन्हे कामयाब करने के लिए वायसराय को ही लगा दिया।

1 वी० पी० मेनन की मेहरबानी से उनके साथ उदार व्यवहार हुआ। 21 और 19 तोपो की सलामी। रजवाडो को अपना धन पूरे का पूरा मिल गया और औसतन 18 लाख सालाना पेंशन।

अध्याय 8

दोपहर में अँधेरा

हिन्दुस्तान को बाँटने का फैसला चुटकी बजाते ही कर लेना तो ठीक है। और यह फैसला हुआ भी इसी तरह। लेकिन दोनों उपनिवेशों के बीच की सीमा रेखा कैसे और कहाँ खींची जाय ?

निश्चय ही यह रेखा उन्हीं प्रदेशों में खींची जानी थी जहाँ मुसलमानों और गैर-मुसलमानों की लगभग बराबर आबादी थी। वे दोनों प्रदेश थे पंजाब और बंगाल। पंजाब में 16,000 000 मुसलमान थे और 12,000,000 हिन्दू और सिख। बंगाल में 33 000 000 मुसलमान थे और 27,000,000 हिन्दू अछूत और क्रिस्तान। अन्य प्रदेश जहाँ अल्प संख्यकों की संख्या काफी तो थी लेकिन दोनों पलड़े लगभग बराबर नहीं थे वे स्वत बहुमत वाले उपनिवेश में चले गए जैसे उत्तर पश्चिम सीमांत प्रदेश, सिंध आसाम बिहार और सेण्ट्रल प्रदेश।

पंजाब और बंगाल की आबादी ने स्वयं अपने प्रदेश का बँटवारा किया था उसी तरह जैसे उत्तर-पश्चिम सीमांत प्रदेश ने पाकिस्तान में शामिल होने का। (यह एक मात्र मुसलमान क्षेत्र था जहाँ कांग्रेस की हिमायती सरकार थी।) लेकिन बंगाल और पंजाब के बँटवारे का फैसला चुने हुए प्रतिनिधियों ने किया था और उत्तर-पश्चिम सीमांत प्रदेश के भविष्य का फैसला मतदान द्वारा हुआ था।

सवाल था कि बंगाल और पंजाब को कहाँ से काटा जाय और कौन यह काम करे ?

पहले तो प्रस्ताव था कि हाल में बने हुए संयुक्त राष्ट्र संघ को यह काम सौंपा जाय। फिर सोचा गया कि संयुक्त राष्ट्र संघ तो अभी दुधमुँहा बच्चा है और यह काम प्रौढ़ों का है। बर्तानिया सरकार की सलाह पर सर सिरिल रेडक्लिफ (अब लार्ड रेडक्लिफ) का नाम सामने आया। प्रस्ताव था कि एक छोटी-सी विभाजन कमेटी का यह ईमानदार और व्यावहारिक प्रयत्न हो सकता है। मुसलमान और गैरमुसलमान (खासकर सिख) को यह बताया गया कि पंचायत में निपुण होने के साथ-साथ इस पचीदा मौके पर वह सबसे निष्पक्ष पंच हो सकेगा, इसका एक और भी कारण है यह कभी हिन्दुस्तान आया नहीं था। हिन्दू और मुसलमान, सिख और जैन, पीर और पंडित में उसके लिए कोई भेद नहीं था। मुस्लिम लीग और कांग्रेस दोनों ने लंदन के प्रमुख गुप्तचरों को सर सिरिल के बारे में पता लगाने के लिए लिखा।

लेकिन शवकी जिन्ना को भी कुछ कहने के लिए नही मिला और वह बोला—ऐसा लगता है कि वकालत के पेशे म वह बहुत ही सफल हैं।

दरअसल सर सिरिल रेडक्लिफ से बर्तानिया सरकार ने हिन्दुस्तान जाने के लिए 1947 के जून म कहा था। उससे पूछा गया था कि क्या वह सयुक्त भारत-पाकिस्तान समिति का निष्पक्ष प्रधान होना कबूल करेगा जो न सिर्फ दोनो उपनिवेशो की सीमारेखा तय करेगी बल्कि सम्मिलित सम्पत्ति की कीमत आँककर उसका बँटवारा करेगी। उसने अभी हामी भरी ही थी कि काग्रस की सलाह पर मि० एटली ने अपने विचार बदल दिए। सम्पत्ति के बँटवारे के लिए हिन्दुस्तान म अलग कमेटी बनाई गई और सर पैट्रिक स्पेन्स उसके प्रधान बने। किसी ने यह समझ लिया था कि कमेटी चाहे जितनी भी कटिबद्ध हो, दोनो काम एक कमेटी के लिए बहुत ज्यादा हो जाएँगे। सर सिरिल को सिर्फ देश के बँटवारे का काम सौंपा गया। इण्डिया ऑफिस के एक सरकारी कर्मचारी ने कहा—उसके अलावा और किसी बात की चिन्ता नही करनी है आपको।

किसी बात की चिन्ता नही? यह तो ऐसा काम था जो आदमी को पागल बना दे।

सर सिरिल 8 जुलाई, 1947 को दिल्ली पहुँचा। 15 अगस्त को स्वाधीनता दिवस था। हिन्दुस्तान की 350 000 000 आबादी म से 88 000,000 के घरबार, जीविका और राष्ट्रीयता का उसे फैसला करना था। इस काम के लिए इण्डिया ऑफिस के स्थायी अवर सचिव क साथ हिन्दुस्तान के एक बडे नक्शे के सामने आधे घटे की बातचीत ही उसका मसाला था। यह ठीक था कि सिद्धातत वह 'बँटवारा कमीशन' का सिर्फ चेयरमैन था और चार जजो के दो अलग अलग बोर्ड पजाब और बगाल के बँटवारे का फैसला करेंगे। हर बोर्ड म दो जज भारत की ओर से और दो पाकिस्तान की ओर स रहेंगे। सभी हिन्दुस्तान की हाईकोर्ट के जज थे और (शायद दो को छोड कर) बडे अच्छे आदमी थे। सर सिरिल की देखरेख म सी० सी० बिस्वास और बी० के० मुखर्जी (काग्रेस की ओर से) तथा सालेह मोहम्मद अकरम और एस० ए० रहमान (मुस्लिम लीग की तरफ स) बगाल का बँटवारा करेंगे। महरचन्द महाजन और तेजासिंह (काग्रेस की ओर से) और दीन मोहम्मद तथा मोहम्द मुनीर (मुस्लिम लीग की तरफ स) पजाब का बँटवारा करेंगे।

इग्लैण्ड से रवाना होने के पहले कम-से-कम कहा यही गया था सर सिरिल से और दिल्ली पहुँचने के 48 घटे बाद तक वह यही विश्वास करता भी रहा। जिस दिन वह दिल्ली आया उसी दिन शाम को हिन्दुस्तानी नेताओ म मिलाने के लिए वायसराय ने उसे बुलाया। कांग्रेस की ओर से नेहरू और पटेल थे और मुस्लिम लीग की ओर से जिन्ना और लियाकत अली। सर सिरिल ने बताया कि उसको और जजो के दोनो बोर्डों को जो काम सौंपा गया है वह बहुत ही पेचीदा और लम्बा चौडा है। उसने देश के और उसकी आबादी के आकार प्रकार के बारे मे कहा, दोनो छोर पर बँटवारे की समस्याओ की ओर ध्यान खींचा। उसने साफ कहा कि होशियार से होशियार पच

को भी इस काम में वर्षों लग जाएँगे। लेकिन उसे एहसास है कि यह जल्दी का काम है। वह और जजो के दोनों बोर्ड भरसक कोशिश करेंगे मदद की। लेकिन उसे कितना समय दिया जायगा?

माउण्टबेटन ने कहा—पाँच सप्ताह!

सर सिरिल रेडक्लिफ की हैरानी के मुखर होने के पहले ही नेहरू ने बीच में कहा—आज की स्थिति में और भी अच्छा होगा अगर यह काम पहले हो जाय।

बाकी सभी ने सहमति मे सिर हिला दिया जिसमें जिन्ना भी शामिल था।

साफ था कि उनमें से किसी को समझाना असम्भव था कि पाँच सप्ताह में किसी देश का बँटवारा नहीं हो सकता। ऐसी हालत में गलतियाँ होगी ही। थोड़ा धैर्य, समय और छानबीन भविष्य की बहुत सारी चख-चख से छुटकारा दिला सकता है। लेकिन नहीं, तुरन्त बँटवारा चाहिए—फिर खून तो बहना ही था।

सर सिरिल ने अपना प्रधान दफ्तर दिल्ली में बनाया लेकिन पजाब के लिए लाहौर में और बगाल के लिए कलकत्ते में भी उसके दफ्तर थे। माउण्टबेटन और हिन्दुस्तानी नेताओं से मुलाकात के 48 घंटे बाद उसने अनुभवों के ऐसे सागर में गोते लगाए जो उसे ताउम्र झकझोरते रहे।

जिस वक्त दोनों बाउण्डरी कमीशन के सदस्यों से उसकी मुलाकात हुई, उसे पता चल गया कि फैसला एकतरफा ही होना है। बगाल के चारों जज स्थिति के बारे में बहुत ही स्पष्ट थे।

उन लोगों ने कहा—'हम लोगों ने अपनी इच्छा से यह काम नहीं उठाया। हमें इसमें जोत दिया गया है। आपको यह समझना चाहिए कि बगाल के बँटवारे के बारे में आप जो भी फैसला करेंगे, हम उससे अपना नाता नहीं जोड सकते। यह सिर्फ हमारी नौकरी और तरक्की का सवाल नहीं है। अगर हम लोग उस इलाके के बँटवारे से उलझे जिसके बारे में झगड़ा है तो हमारी जान दो कौडी के लायक नहीं रह जाएगी। हम लोग सलाह से आपकी हर मदद करेंगे। लेकिन फैसले आपके होंगे और सिर्फ आपके ही।'

पजाब में जजो ने न सिर्फ मदद से इन्कार किया बल्कि उसके और अपने साथियों के खिलाफ साजिश भी करते रहे। उनके साथ जो खानगी बातचीत होती थी वह मुस्लिम अखबारों में बिगाड़कर छपवाई जाती थी। सिख जज मुश्किल से उस कमरे में बैठ पाता था जहाँ मुसलमान जज होते थे और बैठता भी था तो उसके चेहरे से आग बरसती थी। उसके लिए कारण भी था। कुछ सप्ताह पूर्व रावलपिंडी में मुसलमानों ने उसकी बीबी और दो बच्चों का कत्ल कर दिया था। पजाब के गवर्नर सर इवान जेन्किन्स ने स्थानीय मुस्लिम लीग कमेटी को सलाह दी थी कि ऐसी परिस्थिति में अगर वे लोग जो हुआ उस पर दुख प्रगट करने के लिए उसके पास जाएँ तो बात बन सकती है। वे लोग ऐसी बात के लिए सहमत नहीं थे और उन्होंने इकार कर दिया।

बगाल के बटवारे का काम मुश्किल था पर असम्भव नहीं। बगाल के गवर्नर

सर फ्रेडरिक बरोज और प्रधान मन्त्री मि० सुहरावर्दी ने बहुत कोशिश की थी कि बगाल को स्वतन्त्र राज्य घोषित कर दिया जाय। यह सम्भव नहीं हो तो कलकत्ते को स्वतन्त्र नगर। लेकिन वायसराय और बर्तानिया सरकार, दोनो ने इसे ठुकरा दिया क्योंकि काग्रेस इस पर कभी राजी नही होगी।

सर सिरिल रेडक्लिफ से सर फ्रेडरिक बरोज ने कहा था—'जब आप इस प्रदेश को तराश चुके होंगे तो दो बातें होगी। पहली बात तो है बेतहाशा कत्ल। दूसरी बात है कि पूर्वी बगाल गदी बस्तियो (स्लम) की तरह हो जायगा, वह भी ग्रामीण।'

लेकिन वाकया यह है कि सिर्फ दूसरी भविष्य वाणी ही सच निकली। कारण भी स्पष्ट था। पूर्वी बगाल तो कलकत्ते के लिए भोजन और पटसन पैदा करता था। भविष्य मे पूर्वी बगाल का बाजार भी गया और बन्दरगाह भी। लेकिन पूर्वी बगाल हो या न हो, कलकत्ता हमेशा कलकत्ता ही रहेगा।

रेडक्लिफ ने बड़ी सफाई से और जल्दी तराश दिया। कलकत्ते के बाहर अधिकाश मुसलमान पूर्वी हिस्से मे रहते थे और हिन्दू पश्चिमी हिस्से मे। इससे उसका काम आसान हो गया। लेकिन इसका यह मतलब नही था कि सभी या कोई भी उसके फैसले से सतुष्ट हो। लेकिन बँटे हुए बगाल की धारणा ही सभी बगालियो को इतनी असभव लगती थी कि कोई नहीं विश्वास करता था कि यह स्थायी होगा।

पजाब की तो हालत ही दूसरी थी। लाहौर पहुँचकर सभी बातो का अध्ययन करने के बाद रेडक्लिफ तो परेशान हो गया। जो काम उसे सौंपा गया था वह इतना असम्भव था कि किसी भी आदमी का हौसला पस्त हो जाता। हिन्दू, मुसलमान और सिख, सभी के पारे बेहद चढे थे। ऐसा लगता था कि सिर्फ अब सिखो को समझ म आ रहा था कि बँटवारा क़बूल कर उन लोगो ने क्या किया। अब उनकी समझ मे आ रहा था कि उनके महत्वपूर्ण धर्मस्थान, उनकी सबसे जरखेज जमीन, उनके मालदार फिरके पश्चिमी पजाब म थे और इसलिए बाउण्डरी कमीशन के फैसले के अनुसार पाकिस्तान म आ सकने थे। सर रेडक्लिफ पर नक्शो, दरखास्तो, धमकियो और धूसो की बारिश होने लगी। दूसरी तरफ मुसलमान उसे परेशान करने लगे। और उसकी पृष्ठभूमि मे दोनो ओर के शैतानो ने हिंसा और धमकियो का आन्दोलन शुरू कर दिया।

उस साल वर्षा देरी से हुई और पजाब भट्टी की तरह गर्म हो रहा था। जिन्हे हिन्दुस्तान की गर्मी का अनुभव नहीं, खासकर जब बारिश पिछड़ जाय, उनके लिए पहला मोर्चा तो उम्रभर याद रहेगा। सुबह नौ बजे तक शरीर पसीने से तर हो जाता है, कपडे गीले हो जाते हैं और इस घबराहट मे दिमाग खाली हो जाता है कि अभी गर्मी और भी बढ़ सकती है। तापमान और ऊपर जाता है। पजाब मे तो बिलकुल नरक का-सा अनुभव होता है जब गर्मी इतनी बेवर्दाश्त हो जाती है। धूप म इतनी चकाचौंध कि लगता है रात हो गई है और ऐसी रात जो भयानक रूप म आग उगल रही है।

मेरा के साथ बातचीत म सर सिरिल ने पूरी अनुभूति को याद करते हुए कहा—

'ऐसी भयानक गर्मी पड़ती है कि दोपहर को काली घनी रात का आभास होता है, नरक के खुले मुंह-जैसा। कुछ दिनों के बाद तो मैं सचमुच सोचने लग गया था कि क्या मैं जिन्दा भी रह सकूंगा। तब से हमेशा मेरी राय में बाउण्डरी कमीशन के चेयरमैन की हैसियत से मेरी सबसे बड़ी सफलता सिर्फ शारीरिक रही है—मैं मर नहीं गया, जिन्दा ही रहा।'

इस समय तक उसे पता चल गया था कि जहाँ तक उसके काम का सवाल है वह हर तरह से अकेला ही है। उसे मालूम हो गया था कि वह किसी पर विश्वास नहीं कर सकता, अंग्रेजों पर भी नहीं, उसे खाने या पीने के लिए बुलाया जायगा और तब मेजबान इशारे करने लगेगा। आखिर में उसने सभी से अपने को अलग कर लिया। एक नौजवान हिन्दुस्तानी ए० डी० सी० उसे दिया गया था जो किसी भी हालत में आज़ादी के बाद बाहर जा रहा था। उसे सख्त हिदायत थी कि कभी राजनीतिक चर्चा न करे। इसके अलावा एक लम्बा चौड़ा पंजाबी अंगरक्षक उसे दिया गया था जो सिर्फ कमीज और कमरबन्द पहनता था जिससे दो पिस्तौलें लटकती थीं। वह हमेशा साथ रहता था। जब बाथरूम के पास या सर सिरिल के बिस्तर के पास वह घूमता तो सर सिरिल भगवान् से प्रार्थना करता कि वह अंगरक्षक उसके प्रति वफादार रहे।

पंजाब के बँटवारे के बारे में सर सिरिल रेडक्लिफ को सिर्फ इतना ही समझाया गया था—'बाउण्डरी कमीशन को यह आदेश दिया जाता है कि बंगाल और पंजाब का बँटवारा कर दे। मुसलमान और गैरमुसलमानों के सटे हुए क्षेत्रों के आधार पर बँटवारा करते हुए और बातों का भी ध्यान रखे।'

और बातों का क्या मानी लगाया जाय? हर रोज बैठक में मुसलमानों, सिखों और हिन्दुओं का प्रतिनिधि-मण्डल आता सुझाव पेश करता। सर सिरिल ने तो उस क्षेत्र को देखा भी नहीं था जिसका बँटवारा करना था। प्रतिनिधि-मण्डल नक्शा लेकर आता। इन्हीं को देखकर उसे फैसला करना था। मुश्किल यह थी कि ये सभी नक्शे एक-दूसरे से भिन्न थे। अपनी दरख्वास्तों और दलीलों के लिए नक्शों के साथ छेड़-खानी की गई थी। सर सिरिल का एक बड़ा सिर दर्द यह भी था कि एक बड़ा-सा नक्शा सामने हो जिस पर वह काम कर सके। यह अजीब बात लगती है कि जब 28,000,000 लोगों की तकदीर का फैसला करने का काम सौंपा गया तो ठीक ढंग का नक्शा भी नहीं दिया जा सका।

और हमेशा उसके सामने गुस्से से भरे लोग आते, गर्मागर्म दलीलें देते और बेसिर-पैर के अधिकार बताते। एक दिन की बात रेडक्लिफ के दिमाग में खास तौर से ताजा है जब लाहौर में एक हिन्दू ने आकर कहा था कि हो सकता है न्याय एक उदाहरण हो जब कांग्रेस ने बहुत ज्यादा माँग की हो। यह एकमात्र उदाहरण था जब किसी ने विपक्ष के साथ न्याय करने की कोशिश भी की हो। और यह बात भी उस हिन्दू ने फुसफुसाकर कही थी।

इस मुश्किल काम की परेशानी में सिर्फ एक चीज उसे ऐसी लगी जो दाना के लिए बर्दाश्त के लायक होती। उसकी नजर से पंजाब के बँटवारे की सबसे बड़ी समस्या

लोगो का जमाव या सम्पत्ति का बँटवारा नही था बल्कि नहरो पर अधिकार था। अंग्रेजो के प्रोत्साहन से ज्यादातर सिखो के पैसे, डिजायन और मेहनत ने इसे तैयार किया था। पाँचों नदियो का पानी मध्य और पश्चिमी पंजाब को नहरो के सहारे सींचता था। नहरों की व्यवस्था ने ही ऊसर को जरखेज जमीन बना दिया था। इन नहरों की ही बदौलत पंजाब गेहूँ उपजाता था और सारे देश को खिलाता था। इस साल 1947 म बारिश पिछड गई थी और नहरें सूख चली थी फिर भी लाखो का पेट भरने के लिए काफी थी।

लेकिन नहरो की इस व्यवस्था पर बँटवारे से बहुत बड़ा सकट आनेवाला था। सर सिरिल ने यह बात तुरन्त समझ ली। जिन नदियो से पानी लिया जाता था वे पूर्वी हिस्से मे थी और नहरें पश्चिमी हिस्से में। एक हिस्सा हिन्दुस्तान मे पडता और दूसरा पाकिस्तान म। तुरन्त रेडक्लिफ ने वायसराय को खबर भेजी कि वह नेहरू और जिन्ना के पास एक सुझाव भेजना चाहता है। उसका ख्याल था कि सिंचाई की इस व्यवस्था पर दोनो का नियन्त्रण हो ताकि दोनो का फायदा हो सके। इस तरह के सम्मिलित काम भविष्य मे बडे सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

इस सलाह के लिए उसे दोनो तरफ से डाँट खानी पडी जिन्ना ने कहा कि वह बँटवारे का काम पूरा करे जिसका मतलब निकलता था कि हिन्दुओ से पानी लेने के बदले वह रेगिस्तान जमीन पाकिस्तान के लिए ज्यादा पसन्द करता था। नेहरू का जवाब था कि हिन्दुस्तान के पानी से वह क्या करता है यह उसका अपना मामला है। दोनो नेता उससे सख्त नाराज थे और उनका इशारा था कि वह कूटनीतिक चाल चल रहा है।[1]

हिन्दू, सिख और मुसलमान अपने दाँवपेंच चलाते रहे और जो भी नक्शा उसे मिल सका उसी पर उसने बँटवारे का काम शुरू कर दिया। सिख अपने प्यारे लाहौर के लिए शोर मचाते रह। मुसलमान पूर्व के फिरको के लिए चीखते रहे। लेकिन वह लाचार था। यहाँ वह नहरो, कारखानो और खेतो की मिल्कियत के आधार पर बँटवारा करने नहीं आया था। वह एक प्रदेश का ऐसे दो टुकडो में बाँटने के लिए आया था जो सम्प्रदाय के आधार पर दोना उपनिवेशो का भाग बन सकें।

सर सिरिल रेडक्लिफ को उस काम के पाँच सप्ताह दिया गया था जिसम बरसो लगत। इसलिए वह अपना काम चार सप्ताह या पाँच सप्ताह या छ सप्ताह मे पूरा करता है इसका बहुत महत्त्व नहीं था। ऐसी हालत म तो वह शहर को पास बहती हुई नदी, गाँव को पास के खेत, कारखाने को गोदाम और रेलवे को उसके अहाते स अलग करने के लिए मजबूर था। जल्दी करने के लिए तो यहा ही कहा गया था।

यहाँ जो हालत बताई गई है उगस ऐसा लगता है कि वह अपने काम से नफरत करने लगा होगा। इतने लोगो के साथ उसके जो अनुभव हुए थे उससे यह देश को

1 बाद के ज्ञान पर यह मानना पड़ेगा कि नेहरू ने अपने विचार बदले और उसी ने बाद भारत और पाकिस्तान के बीच पानी सम्बन्धी समझौता 1960 में कराया।

प्यार नहीं कर सकता था। किसी भले आदमी ने इतने कम अरसे में मानव स्वभाव के इतने गिरे हुए पहलू कभी नहीं देखे होंगे।

उसे जो आखिरी तारीख दी गई थी उससे पहले उसने अपना फैसला लिखकर तैयार कर लिया था। उसने सभी की सलाह सुनी थी, सभी तरह के नक्शे देखे थे, बला की गर्मी में और रात के खौफ में काम किया था अकेले और बेसहारा की तरह। जब उसने अपने फैसले पर दस्तखत किया तो शरीर से इतना चूर और दिमाग़ से इतना थका था कि दोनों सम्प्रदायों की प्रतिक्रिया की चिन्ता उसे सता ही नहीं सकती थी। जो कुछ हो सकता था, उसने किया। सिर्फ एक इच्छा थी उसकी—हिन्दुस्तान से निकल भागना। 9 अगस्त, 1947 को बंगाल का फैसला तैयार हुआ और दो दिन बाद पंजाब का। सिलहट जिला और आसाम के कुछ हिस्सों पर छोटा सा काम करना शेष था। मुसलमानों का बहुमत होने के कारण ये पूर्वी पाकिस्तान में जानेवाले थे।

काम खतम कर आज़ादी के दिन 15 अगस्त को वह इंग्लैण्ड लौट गया। पीछे चलकर उसने लेखक से बताया— अजीब लोग हैं। इन लोगों को कुछ पता ही नहीं था। इन लोगों ने मुझे कहा कि आकर यह मुश्किल और गन्दा काम कर दो। जब मैंने कर दिया तो मुझ से नफ़रत करने लगे। लेकिन ऐसी परिस्थिति में उन लोगों को और क्या उम्मीद थी? उन लोगों को यह तो पता ही होगा कि बँटवारा मान लेने के बाद क्या हो सकता है। लेकिन उन लोगों ने परिस्थिति का सामना करने के लिए कोई तैयारी नहीं की थी। अजीब लोग। घर का सबक़ किया ही नहीं।

'लोग मुझसे पूछते हैं मुझसे कभी-कभी कि क्या मैं वापस जाकर भारत देखना चाहूँगा। भगवान् बचायें। मुझे बुलाएँ तब भी न जाऊँ। मुझे तो शक है कि देखते ही गाली मार देंगे, दोनों तरफ के लोग।'

जो तूफान आनेवाला था उसके लक्षण हिन्दुस्तान के हर हिस्से में दिखाई पड़ने लगे थे। माउण्टबेटन ने अपने दफ्तर में पन्ने फाड़नेवाले कैलेण्डर लगा रखे थे जिन पर लिखा होता था—सत्ता सौंपने के लिए इतने दिन बाकी। सारे देश में हिन्दू-मुसलमान के दल सम्पत्ति के बँटवारे पर गरमागर्म बहस करते। दिल्ली के अखबारों ने विज्ञापन छापना शुरू कर दिया था —

'क्या आप पाकिस्तान जा रहे हैं? जा रहे हैं तो दिल्ली के राशनिंग अफसर को राशन कार्ड (खाद्यान्न और कपड़े का) लौटाना न भूलिये।'

रेलवे का भी बुरा हाल था और सिर्फ इसलिए नहीं कि चोरी और कत्ल ज्यादा होने लगा था। दिल्ली और कलकत्ते में जो मुसलमान ड्राइवर कराची और लाहौर में जो हिन्दू ड्राइवर बरसों से गाड़ी चला रहे थे वे सब अनजान पटरियों पर रेल की इंजिनें ले जानेवाले थे।

एक घोषणा निकली कि 3 अगस्त से पाकिस्तान के कर्मचारियों और सामान को ले जाने के लिए नई दिल्ली से खास गाड़ियाँ कराची जाएँगी। उस पर स्टेट्समैन का सम्पादकीय था —

'आनेवाले कुछ दिनों में लड़ाई के जमानेवाली मशीन फिर से दुहराएगी। हर

किसी को पहले यह सवाल पूछ लेना चाहिए कि क्या उसका सफर करना अनिवार्य है। हमारा सुझाव है कि यह सिर्फ इसलिए नही कि रेलगाडियो और पटरियो पर खतरनाक गुनाह हो रहे हैं, हालांकि साम्प्रदायिक तत्वों ने इन्हें भी अपना लक्ष्य बनाया है और इसके बडे ही खूंखार उदाहरण भी मिले हैं, बल्कि इसलिए कि रेल के कर्मचारी हिन्दुस्तान के एक हिस्से से दूसरे हिस्से जाएँगे। दरअसल यह काम शुरू हो गया है। परिवार, बीवियाँ, बच्चे, सामान का ले जाना, फौज का बँटवारा रेलवे पर काफी बडा बोझ बन जायगा। ड्राइवर उन पटरियों पर गाडी चलायेंगे, जिन्हें वे जानते ही नही, उन सिगनलों से गुजरेंगे जहाँ शायद कोई आदमी ही नही। बहुत होशियारी से गाडी चलानी पडेगी। सबसे अच्छा होगा कि इस झमेले के खतम होने तक सामान्य जनता अलग ही रहे रेल यात्रा से। बाकी लोग आशान्वित होकर उम्मीद कर सकते हैं कि पहुँच जाएँगे।'

अगर उन्हें पता चलता कि क्या होनेवाला है तो स्टेट्समैन के सम्पादक हर किसी को रेल यात्रा से दूर ही रहने की सलाह देते, आशान्वित होकर नही भयग्रस्त होकर लोगो को सफर करने की।

उत्तर प्रदेश की आबादी के राष्ट्रीय भावना वाले हिस्से ने गदर की निशानी को टेढी नजरो से देखना शुरू कर दिया था जिसे अब तक उनके अंग्रेज शासको ने बडे प्यार से देखा था। हिन्दुस्तान के मेट्रोपोलिटन ने वायसराय के पास जल्दी खबर भेजी कि लखनऊ की रेजिडेंसी नष्ट कर देनी चाहिए नही तो आबादी का एक हिस्सा घुसकर उसे गन्दा कर सकता है। उसने सलाह दी कि कानपुर का कुआँ कब्रगाह बना दिया जा सकता है और घाट पर का क्रास हटाकर गडवा देना चाहिए।

लॉर्ड इस्मे ने पूछा—रेजिडेंसी पर के यूनियन जैक का क्या होगा? गदर के जमाने से वह आज तक फहरा रहा है और कभी उतारा नही गया।'

इसी बीच उत्तर प्रदेश की सरकार ने जनता को आगाह किया कि जनता का सास्कृतिक स्तर उन्नत करने के लिए प्रदेश के कुछ नामो के हिज्जे म परिवर्तन करना पडेगा। जिस तरह विदेशी गलत उच्चारण करते थे, कुछ शहरो और नदियो के नाम उसी तरह गलत लिखे जाते रहे हैं। इनका सशोधित रूप ही अब से सरकारी पत्राचार और दस्तावेजो मे लिखा जायगा। उदाहरण Benares अब Banaras कहा जायगा। Cawnpore के बदले Konnanpur लिखा जायगा, Ganges के बदले होगा Ganga और Jumna के बदले Yamuna'

लेकिन इससे भी ज्यादा खतरनाक बातें हो रही थी और सबकुछ साम्प्रदायिक ही नही था। इधर हिन्दू, सिख और मुसलमान आपस म गुँथे थे और धूप उनकी फसल बरबाद कर रही थी। धरती का चटखना जैसे सुनाई पडता था पर बारिश का कहीं पता नही। ऐसा लगता था कि हिन्दुस्तान के लिए इस वर्ष पाँचो नदियो को भरने के लिए पानी ही नही था ताकि फसल तैयार हो सके और आबादी का पेट भरे। मद्रास मे एक अंग्रेज अफसर ने लिखा था—'आजादी के अलावा भी हम परेशान करनेवाली अन्य समस्याएँ थी। शहर म सिर्फ पन्द्रह दिनो का खाना था। सारा दक्षिण भारत

बन्दरगाह से बाहर सारी भर की जिन्दगी बसर कर रहा था।'

स्वाधीनता दिवस मनाने के लिए दिल्ली में पर्दो ने महराबों और सजावटों का सिलसिला शुरू हो गया। किन पार्कों और खुली जगहों में नाच-गाना हो। यह फैसला करने के लिए कमेटियाँ बन गई थीं। दिल्ली सिटी कौन्सिल यह जानकर बहुत नाराज हुई कि कुछ खाली जगहों में पहले से लोग भर पड़े थे और ऐसे लोग जो शहर तथा उत्सव के विरोधी थे। एक मस्जिद के सामने उर्दू पार्क में 4000 शरणार्थी डेरा डाले हुए थे। लाल किले और जामा मस्जिद के बीचवाले मैदान में कई हजार और लोग थे। इस मामले से अखबार वाले भी चुप थे। कोई कुछ नहीं बता रहा था। आखिर ये लोग क्या जमे थे यहाँ? सिर्फ एक बात कही जाती थी कि ये लोग मेव थे, अलवर में रहनेवाले मुसलमानों का एक खास फिरका जो वहाँ से भागकर आ गए थे। ऐसा लगता था कि अब अलवर में रेस के घोड़े नहीं जलाये जाते थे बल्कि गाँव। पंजाब का कुछ हिस्सा अलवर से सटा था और पंजाब में भी मेव थे इसलिए पंजाब के गवर्नर सर इवान जेन्किन्स ने अलवर के खुफिया द्वारा पता लगाना चाहा कि बात क्या है। लेकिन सर इवान के खुफिया का ही पता नहीं था। कोई कुछ नहीं कह रहा था। गाँवों में आग लगा दी जाती थी, लोगों को कत्ल कर दिया जाता था और लाशों को खेतों में गाड़ दिया जाता था या कुओं में भर दिया जाता था। इस कत्लेआम के पीछे कौन था इसका पता लगाना असम्भव था। महाराजा और उसके दीवान डा० खरे (सनकी हिन्दू) किसी भी तरह की जिम्मेदारी से इन्कार कर रहे थे। लेकिन हिन्दू महासभा के डा० खरे ने जिस बात का प्रचार किया था उसका एक असर जरूर हो रहा था। भगदड़ में जमीन जायदाद सब-कुछ छोड़कर मुसलमान भाग रहे थे।[1] प्रतिदिन सैकड़ों की संख्या में वे दिल्ली पहुँच रहे थे। सिटी कौन्सिल का यह सरदर्द था कि उन्हें कैसे खिलाया जाय और स्वाधीनता दिवस के दिन उनका क्या किया जाय।

विदेशों में काम करनेवाले बर्तानिया सरकार के अफसरों में जितनी अच्छाइयाँ हो सकती हैं, सभी का जीता-जागता रूप था सर इवान जेन्किन्स। पहली लड़ाई के ठीक बाद जब वह पंजाब का एक जिलाधीश बहाल हुआ था, तब से हिन्दुस्तान में ही था। तब से उसने पंजाबियों को प्यार करना सीखा लेकिन अन्धे की तरह नहीं। चालीस साल साथ रहने के अनुभव से उसने पंजाबियों को अपना समझना शुरू कर दिया था और ओहदे की अहमियत के अलावा वह अपने को किसी भी तरह बड़ा नहीं मानता था। लेखक के नाम एक पत्र में उसने लिखा है—सभी सिविल अफसर हिन्दुस्तानियों के मातहत काम करने के आदी थे। मैंने इण्डियन सिविल सर्विस 1920 में शुरू की। अक्सर मेरे अफसर हिन्दुस्तानी होते और राजनीतिज्ञ भी। दरअसल इण्डियन सिविल सर्विस वालों की भावनाएँ बहुत अच्छी थीं। हम लोगों में से कोई हिन्दुस्तानी अफसर के मातहत काम करने या उसका हुक्म मानने से इन्कार करेगा हास्यास्पद बात थी।'

---

1 वी० पी० मेनन की सलाह से हिन्दुस्तानी स्टेट्स विभाग ने अलवर के महाराजा को हटाया और डा० खरे की दीवानगिरी भी गई।

ब्रिटिश राज के आखिरी दिनो जेन्किन्स बडा ही जानकार और महत्त्वपूर्ण अफ़सर था। वह हिन्दुस्तान का बहुत बडा दोस्त भी था। लेकिन पजाब के बाहर का हिन्दुस्तान वह जानता ही नही था। वह इस बात का सबसे बडा सबूत था कि इण्डिया ऑफिस किस तरह एक आदमी को एक क्षेत्र म रखकर वहाँ के लोगो को जानने, समझने, सलाह देने और उन पर शासन करने का मौका देती थी। दरअसल छुट्टियो मे इग्लैण्ड जाने के अलावा वह कभी पजाब से बाहर नही गया।

वह पजाबियो की खूबियो और खराबियो, दोनो को जानता था। 1947 की गर्मियो मे सिर्फ खराबियो की उसे चिन्ता थी। सर इवान जेन्किन्स ने कभी यह छिपाया नही कि वह (क) हिन्दुस्तान के बँटवारे और (ख) पजाब के बँटवारे म विश्वास नही करता था। उसने बार-बार हिन्दू, सिख और मुसलमान राजनीतिज्ञो को समझाया कि उनका यह प्रदेश बाँटा गया तो हिन्दुस्तान म इसका जो महत्त्व है वह खतम हो जायगा। उसने इस पर जोर दिया कि न सिर्फ पजाब सबसे खुशहाल सूबा है बल्कि सबसे ज्यादा आत्मनिर्भर भी। शायद सभी सूबो म पजाब ही ऐसा था जो अपने लोगो का खाना-पीना, रोजगार, इमारत, व्यापार, शिक्षा खुद चला सकता था। उसने (बगाल के सर फ्रेडरिक बरोज़ और सुहरावर्दी की तरह) पजाब की स्वतन्त्रता के लिए नही बल्कि पजाबियो और पूरे आजाद हिन्दुस्तान के हित के लिए इस पर जोर दिया था।

नतीजा हुआ कि हिन्दुस्तानी भाषा के अखबारो ने उस पर अग्रेजी राज कायम रखने की साजिश का इल्जाम लगाया। यह साफ था कि बात ग़लत थी लेकिन कही तो गई थी। फिर उसका सबसे बडा सिरदर्द दिल्ली थी। वायसराय और हिन्दुस्तानी राजनीतिज्ञो को वह उस स्थिति की जानकारी कैसे दे सकता था जो उनके जल्दबाजी के कारण हो गई थी—ऐसे सूबे को बाँटना जो बाँटा नही जा सकता। सामने खतरा था और सिर्फ बेरहमी से साफ-साफ सोचनेवाले ही खतरे से बचा सकते थे।

उसने कहा कि क्या 10 जुलाई को लॉर्ड इस्मे उससे 'गम्भीर परिस्थिति' पर विचार विमर्श कर उसका आशय वायसराय को बता सकेगा। उसके बदले एवेल शिमला गया और उसने जो रिपोर्ट भेजी वह नीचे है —

'कल रात (10 जुलाई) पजाब के गवर्नर जेन्किन्स से मेरी देर तक बातचीत हुई। इसमे कोई शक नही कि सिखो का बडा ही खतरनाक दृष्टिकोण हो गया है।·· हिन्दू और मुसलमान कानून और अनुशासन छोडकर ठीक हैं। कानून और अनुशासन की समस्या अमृतसर और लाहौर की है। ये दोनो और खासकर लाहौर बडा ही अशान्त शहर है। 15 अगस्त के पहले लाहौर छोडकर कही भी सरकार की स्थापना के लिए हिन्दू और सिख तैयार नही हैं। वे समझते हैं कि यदि उन लोगो ने लाहौर छोड दिया तो उस शहर पर से उनका हक कमजोर हो जायगा। · ·· आप नेहरू और पटेल से बात करें और उनसे प्रार्थना करें कि लाहौर पर से काग्रेस और सिख अपना हक वापस कर लें ताकि बाउण्डरी कमीशन का काम ठप न पडे।'[1]

---

1 भारत सरकार के कागजात से।

लेकिन जेन्किन्स की नजरों में यह काफ़ी नहीं था। उसने अपनी रिपोर्ट खुद लिखनी शुरू की। उसके हाथ में ऐसा प्रदेश जिसे खुशहाल करने म बरसोकी मेहनत लगी थी और जो अब चकनाचूर होनेवाला था। वह इसे कैसे बचा सकता था? बाउण्डरी कमीशन और सर सिरिल रेडक्लिफ के फैसले इस काम म मदद नहीं कर सकते थे। उसने 10 जुलाई को वायसराय को लिखा —

'प्रिय लॉर्ड माउण्टबेटन—मैं समझता हूँ कि अभी-अभी सिखों के प्रतिनिधि ज्ञानी करतारसिंह से मेरी जो बातचीत हुई उसकी जानकारी मे आपकी दिलचस्पी होगी। सिखो की नीयत के बारे में ज्ञानी ने बहुत खुलकर बात की। मेरी राय भी यही है कि अगर बाउण्डरी कमीशन के फैसले उन्हें पसन्द नहीं आये या उस फैसले के पहले पाकिस्तान और भारत की सरकारें बनीं तो वे उपद्रव करेंगे।'······

इसके साथ उसने अपनी रिपोर्ट भी जोड दी जिसके कुछ हिस्से यो हैं —

'ज्ञानी करतारसिंह आज मुझसे मिलने आया······। उसने कहा कि वह स्वाधीनता बिल और बाउण्डरी कमीशन के बारे म बातचीत करने आया है। उसने कहा कि पजाब मे काफ़ी बडे पैमाने पर आबादी का तबादला करना होगा। क्या अंग्रेज इसे लागू करने के लिए तैयार हैं? उसे शक था। और अगर सिखो की एकता पर ध्यान नहीं दिया गया तो लडाई होकर रहेगी। अंग्रेजो ने हमेशा कहा कि अल्पसंख्यकों की वे सुरक्षा करेंगे और हुआ क्या? अंग्रेजो की वादाखिलाफी से ही आज की स्थिति आई है।'

'मैंने जवाब दिया कि सिखो के असन्तोष का मुझे पता है। लेकिन जब आजादी आती है तो कुछ लोग जो अपने को सुरक्षित समझते हैं, नुकसान उठाते ही हैं। साथ ही साथ, मेरी समझ से तो इस वर्तमान परिस्थिति के लिए सिख खुद ही जिम्मेदार हैं। ज्ञानी ने खुद बँटवारे के लिए जोर दिया था और बलदेवसिंह ने योजना मान ली थी।

'ज्ञानी ने कहा कि उस समय बँटवारे का यह अर्थ नहीं था कि सिर्फ़ आबादी के आधार पर बँटवारा होगा। सिखो का भी अपनी जमीन पर उतना ही हक़ था जितना हिन्दुओं और मुसलमानो का। ननकाना साहब का धर्मस्थान कम से कम नहर की एक व्यवस्था तो उन्हें चाहिए ही। फिर पश्चिम पजाब से सिख आबादी को पूर्वी पजाब लाने का इन्तजाम होना ही चाहिए। आबादी के साथ-साथ जायदाद का भी हिसाब रखना चाहिए क्योंकि मुसलमानो की अपेक्षा सिख ज्यादा खुशहाल हैं। अगर बर्तानिया सरकार, वायसराय और राजनीतिक नेताओं ने इसे तसलीम नहीं किया कि सिखों का भविष्य भी एक अहम सवाल है तो मुसीबत होगी।'' वे लडने के लिए मजबूर होंगे। ···सिखो को एहसास है कि उनकी स्थिति ठीक नहीं फिर भी वे क्रान्तिकारी तरीके से लडेंगे—अफसरों का क़त्ल, रेल की पटरियों की तोड़फोड़, नहर की बर्बादी आदि-आदि।'

'मैंने फिर कहा कि यह बडी बेवकूफी होगी। ज्ञानी का जवाब था अगर ब्रिटेन पर हमला हो तो मैं भी यही करूँगा।'···· *अभी मुसलमान मेजर्जन की बातचीत कर रहे हैं उन सिखों के बारे म जो उनके बीच हैं। लेकिन उनकी नौबत उस पिचारी*

की सी है जो शोर मचाकर चिड़ियों को भगाना नही चाहता। उसका विश्वास था कि पश्चिमी पंजाब के मुसलमान यह कोशिश करेंगे कि उनके बीच के सिख अपने को सुरक्षित महसूस करें और तब इत्मीनान से सफाई करेंगे।

'अन्त में ज्ञानी ने मुझसे इस संकट की घड़ी में सिखों की मदद की अपील की। उसका कहना था कि मैं पंजाब को आँसुओं और खून की धारा में नहीं छोड़ सकता। अगर सीमा की समस्या ठीक तरह से नहीं सुलझाई गई तो यहाँ आँसू और खून की धारा बहेगी। सारी बातचीत में ज्ञानी बड़ा ही शान्त और संयत था लेकिन अपील करते समय वह रो पड़ा। सिखों की यह आखिरी शर्त है। इसमें शक नहीं कि वे सब परेशान और दुःखी हैं। मैं तो समझता हूँ कि पिछली शती की ही तरह वे अब भी परेशानी पैदा कर ही सकते हैं।'[1]

13 जुलाई को जेन्किन्स ने माउण्टबेटन को फिर पत्र लिखा और अपनी बातों पर जोर देते हुए खतरनाक हालत से आगाह किया। उसने सिफारिश की कि सर सिरिल रेडक्लिफ की रिपोर्ट किसी भी हालत में 15 अगस्त के पहले प्रकाशित कर देनी चाहिए ताकि लोगों की यह भगदड़ खतम हो। उसका सुझाव था कि बँटवारे की सीमा-रेखा पर फौज भी तैनात कर देनी चाहिए। उसने अन्त में लिखा था:—

"मेरा विश्वास है कि भावी उपनिवेशों के प्रतिनिधि अभी यह स्पष्ट कर दें कि विशृंखल रूप से सत्ता नही ली जायगी, वे ढंग से काम करना चाहते हैं और जनता की सुरक्षा के लिए एक मजबूत संगठन तैयार कर रहे हैं तथा इस बात का अच्छा प्रचार किया जाय तो पंजाब में थोडा स्थायित्व आ जायगा। क्योंकि सवाल सिर्फ सूबे की सीमा-रेखा का नहीं है, सवाल है दोनों उपनिवेशों की बीच की सीमा-रेखा का।'[2]

आखीर में वायसराय को पंजाब के खतरे का एहसास होने लगा। 15 जुलाई की सुबह उसने पंजाब की स्थिति पर बातचीत करने के लिए अपने कर्मचारियों को बुलाया। 20 जुलाई को वह लाहौर गया और जेन्किन्स तथा मिल्कियत का बँटवारा करनेवाली कमेटी के सदस्यों से उसने बातचीत की। दोनों ने दो तरह की बातें बताईं। कमेटी ने कहा सब ठीक चल रहा है। जेन्किन्स का कहना था कि साम्प्रदायिक हिंसा और शक का खुला दौर है तथा कमेटी बहुत धीमे काम कर रही है। एक बार फिर वायसराय से कहा गया कि बाउण्डरी कमीशन की रिपोर्ट 15 अगस्त के पहले प्रकाशित हो जानी चाहिए। इस बार यह अपील कमेटी के सदस्यो ने की।

वायसराय की उँगलियाँ जल चुकी थीं। उसे पता था कि आग बुझाने के लिए दमकल चाहिए। भारतीय और पाकिस्तानी सेना के अब सुप्रीम कमाण्डर सर क्लाड आचिनलेक से सलाह की उसने। इसी बैठक में पंजाब सीमा सेना की स्थापना का फैसला हुआ जो बँटवारे के फैसले की घोषणा के पहले और बाद पंजाब में शान्ति स्थापित रखेगी। 22 जुलाई को फिर एक बैठक हुई जिसमें सरदार पटेल और डाक्टर

---

1. भारत सरकार के कागज़ात से।
2. भारत सरकार के कागज़ात से।

राजेन्द्रप्रसाद भावी भारत सरकार की ओर से जिन्ना और लियाकतअली भावी पाकिस्तानी सरकार की ओर से और बलदेवसिंह सिखों की ओर से मौजूद थे। इन लोगों ने एक वक्तव्य प्रकाशित किया और यह उम्मीद की गई कि इससे सब ठीक हो जायगा।

'15 अगस्त से दो स्वतन्त्र उपनिवेशों की स्थापना का फैसला अब ले लिया गया है इसलिए भावी सरकारों की ओर से बँटवारा कौंसिल यह घोषणा करती है कि वह शान्तिपूर्ण स्थिति की स्थापना के लिए कटिबद्ध है ताकि बँटवारे और अनुशासन तथा आर्थिक पुनर्गठन के कई जरूरी काम पूरे हो सकें।

'कांग्रेस और मुस्लिम लीग, दोनों ने सत्ता मिल जाने के बाद अल्पसंख्यकों के साथ न्यायोचित और बराबरी के व्यवहार का जिम्मा लिया है। दोनों भावी सरकारें अपने आश्वासनों को दुहराती हैं। उनकी मंशा है कि जाति और धर्म का कोई खयाल नहीं करते हुए सभी नागरिकों के मान्य अधिकारों की रक्षा की जायगी। सामान्य नागरिक अधिकारों के मामले में सभी बराबर होंगे और दोनों सरकारें यह आश्वासन देंगी कि उनकी सीमा के भीतर सभी नागरिक अपनी स्वाधीनता के अधिकारी होंगे जैसे विचारों की स्वतन्त्रता, संगठन बनाने का अधिकार, अपने तरीके से धर्म की उपासना, भाषा और संस्कृति की रक्षा।

'दोनों सरकारें यह भी ऐलान करती हैं कि 15 अगस्त के पहले जिनका भी राजनीतिक मतभेद रहा हो, उनके खिलाफ कोई कारवाई नहीं की जायगी।

'सुरक्षा के इस आश्वासन में यह निहित है कि दोनों उपनिवेशों में किसी भी प्रकार की हिंसा बर्दाश्त नहीं की जायगी। दोनों सरकारें इस बात पर जोर देना चाहती हैं कि इस निश्चय के मामले में दोनों सरकारें साथ हैं।

'पंजाब में शान्ति बनाये रखने के लिए दोनों सरकारों ने 1 अगस्त से खास फौजी कमाण्ड स्थापित करने का फैसला किया है जो सियालकोट, गुजरांवाला, शेखपुरा, लायलपुरा, मोंटगुमरी, लाहौर, अमृतसर, गुरदासपुर, होशियारपुर, जालधर, फिरोजपुर और लुधियाना के जिलों में काम करेगा। दोनों सरकारों की सहमति से इसका फौजी कमाण्डर मेजर जनरल रीस नियुक्त किया गया है और भारत की ओर से ब्रिगेडियर दिगम्बरसिंह तथा पाकिस्तान की ओर से कर्नल अय्यूब खान[1] सलाहकार के रूप में रहेंगे। 15 अगस्त के बाद काम की दृष्टि से दोनों नई सरकारों की फौज पर इन क्षेत्रों में मेजर जनरल रीस का नियन्त्रण रहेगा जो सुप्रीम कमाण्डर और सम्मिलित सुरक्षा कौंसिल की मारफत दोनों सरकारों के प्रति जिम्मेदार रहेगा। अगर जरूरत समझी गई तो दोनों सरकारें बंगाल में भी ऐसे संगठन खड़े करने से नहीं हिचकेंगी।

दोनों सरकारों ने बाउण्डरी कमीशन के फैसलों को मानने का वादा किया है, फैसले चाहे जो हों। दोनों कमीशनें काम कर रही हैं और उन्हें ठीक ढंग से काम करने देने के लिए यह जरूरी है कि सार्वजनिक भाषण, लेख, बायकाट या और कामों की

---

1 पाकिस्तान का वर्तमान राष्ट्रपति।

नई दिल्ली म 7 जून 1947 को कांफ्रेंस जिसम बंटवारे की ब्रिटिश योजना स्वीकार की ग

धमकियों म परहेज किया जाय। दोनो सरकारें यह हासिल करने के लिए उचित कदम उठायेंगी और फैसले जैसे प्रकाशित हुए, दोनों सरकारें निष्पक्षता से और तुरन्त उन्हें लागू करेंगी।'

वक्तव्य शानदार था। कैम्बेल-जानसन ने चर्चा की है कि वायसराय इसे सभी सम्प्रदायों की आजादी का घोषणा पत्र मानता था। उसने यह भी कहा कि शायद ही दोनों पार्टियों को पता हो कि वे किस चीज पर दस्तखत कर रहे हैं। वी० पी० मेनन ने तो एक कदम आगे बढकर कहा कि यह बहुत ही महत्वपूर्ण था और लगभग 50,000 फौज सिर्फ शान्ति बनाये रखने के लिए तैनात की गई जिसका बहुत अच्छा असर पडा।

लेकिन यह सारी उम्मीदें बेकार साबित हुईं। सेना की इतनी बडी टुकडी ने इतना कठिन परिश्रम किया और कुछ हाथ नही आया।

पंजाब सीमा फौज के अधिकांश लोग चौथी हिन्दुस्तानी डिवीजन के थे। जिस किसी ने लडाई के जमाने म इरिट्रिया, पश्चिमी रेगिस्तान और इटली मे इनके काम देखे हैं उन्हें पता है कि दुनिया के सबसे अच्छे डिवीजनों मे इसका नाम आता है। खतरा उठाने और नुकसान पहुँचाने म किसी ब्रिटिश या अमेरिकन डिवीजन से यह बहुत आगे था। इसालियन पूर्वी अफ्रीका, अलामियन, मोंटे केसीनो, सभी जगह जो काम इसे सौंपा गया पूरा हुआ।

लेकिन इस बार सिर्फ असफलता ही हाथ आनी थी और इसका दोष उनका नही था। क्योंकि जिस क्षेत्र को शान्त करने का काम सौंपा गया था उसके बारे मे सभी की गलत धारणाएँ थी।

वायसराय के लिए स्थिति बिलकुल काबू म थी। बाउण्डरी कमीशन के फैसले की घोषणा के बाद जो छुटपुट उपद्रव हो रहे हैं वे उबलकर खास जगहों म आ जाएँगे और उन्हें खत्म करने क लिए फौज है ही। कई सप्ताह पहले उसने मौलाना अबुलकलाम आजाद को आश्वासन दिया था। पंजाब सीमा फौज बनाकर उसने वादा पूरा किया।

30 जुलाई को वह बंगाल गया वहाँ की हालत देखने। सुहरावर्दी न स्वतन्त्र बंगाल की माँग कबूल कराने की आखिरी कोशिश की क्योंकि उसे पता था कि पाकिस्तान म उसके लिए जगह नही। जिन्ना ने पूर्वी बंगाल के लिए नाजीमुद्दीन को चुन लिया था। सुहरावर्दी भारत म ही रहने की सोच रहा था। प्यारे शहर कलकत्ते को छोडकर कहाँ जा सकता था। माउण्टबेटन ने उसे अलग किया।

फिर उसने ले० जनरल टकर से पूछा कि क्या उसे भी पंजाब बाउण्डरी फोर्स की तरह रखना चाहिए? टकर ने नाही की और आश्वासन दिया कि कोई अशान्ति नहीं फैलेगी, पिछले साल की खूँरेजी दुहराई नहीं जायगी।

इस समय भी पंजाब के संकट को टालने का रास्ता था। अगस्त के पहले सप्ताह म भी वायसराय (गांधी के शब्दों मे) 'अपना जादू' दिखा सकता था। मगर इवान जेन्किन्स स्थिति की गम्भीरता से आगाह करता जा रहा था।

वी० पी० मेनन न सलाह दी थी कि ननकाना साहब को एक तरह का स्वतन्त्र

शामिल शहर घोषित कर दिया जाय। वायसराय और उसके सलाहकारों को पता था कि सिखों के लिए ननकाना साहब का क्या महत्त्व है। *27 जुलाई को खबर आई कि सिख 7 अगस्त के आसपास उपद्रव करने वाले हैं। उनके पास काफी हथियार हैं। मुसलमानों को इसका पता है। दोनों फौज को मिला लेने की चाल में हैं।*

मेनन की सलाह पर कोई काम हुआ या नहीं, नहीं मालूम।

सर इवान जेन्किन्स ने एक कदम आगे बढ़ने की सलाह दी। बाउण्डरी कमीशन के फैसले की घोषणा के पहले ही नेहरू और पटेल से अपील करने की सिफारिश की कि वे लाहौर से अपना दावा वापस ले लें। शानी ने मौंटगुमरी को पूर्वी पंजाब में शामिल करने की जो बात कही है वह इतनी हास्यास्पद नहीं। *गैरमुसलमानों को वहाँ इकट्ठा कर मुसलमानों को उसी तरह लायलपुर जिले में जमा किया जा सकता है। यह काम बाउण्डरी कमीशन से नहीं हो सकता। इसके लिए दोनों दलों को व्यक्तिगत रूप से समझाना पड़ेगा।*

दो महीने पहले माउण्टबेटन इसे खुशी से स्वीकार करता। *यह उसकी कार्यक्षमता* और समझौते कराने की कुशलता के लिए चुनौती होती जिससे उसकी सफलता का जाम लबालब भर जाता। लेकिन उसने कोशिश क्यों नहीं की?

इस बात के सबूत हैं कि उसने नेहरू और पटेल से चर्चा की थी। लेकिन वे सुनना नहीं चाहते थे। पाकिस्तान दे देने के बाद व किसी भी तरह की सुविधा के लिए तैयार नहीं थे। जिन्ना भी तैयार नहीं था। लेकिन उसकी उदारता को उकसाया जाता तो शायद काम बन जाता क्योंकि पाकिस्तान हासिल कर, जिसकी उसने कल्पना भी नहीं की थी, उसने एक तरह की उदारता का जामा पहन लिया था।

शायद मार्च से लगातार 16 घंटे प्रतिदिन काम करने के कारण वायसराय थक गया हो। *या दूसरा कारण यह भी रहा हो कि जिन्ना ने दोनों उपनिवेशों के गवर्नर जनरल के मामले में नाही कर दी थी। माउण्टबेटन इस बात की पुनरावृत्ति नहीं चाहता हो।*

इसलिए न तो सुविधाएँ माँगी गईं और न दी गईं। सिखों को शान्त करने के जो कारण हो सकते थे वे सामने ही नहीं आए। हथियारों का संग्रह, कृपाणों की घिसाई और लड़ाई की तैयारी होती रही।

इस समय तक पंजाब की घटनाओं का कोई तारतम्य नहीं था। मार्च में रावलपिंडी में मुसलमानों ने बेरहमी से 2000 सिखों को कत्ल कर दिया था। लेकिन उसके बाद छिटपुट घटनाएँ होती रहीं। दोनों ओर को पता चल गया था कि आग लगाना आसान काम है। लाहौर या अमृतसर के किसी इलाके में सिर्फ छप्परों पर चढ़कर आग लगा देना है और भाग जाना है। घर, मुहल्ला या शहर जलकर खाक हो जायगा। सिर्फ लाहौर में 167 बार आग बुझाने के लिए फायर ब्रिगेड बुलाई गई थी। जलती हुई झोपड़ियाँ रात को किसी भी हवाबाज को सिर्फ दिखाई पड़ती थीं।

लेकिन ब्रिटिश राज्य के आखिरी पन्द्रह दिनों में इस संघर्ष का रूप बदल गया। सिखों का बुजुर्ग, बूढ़ा कूटनीतिज्ञ और सलाहकार मास्टर तारासिंह सामने आया।

उसने शुरू से पजाब के बँटवारे का विरोध किया था। थोडेसे इलाके से जो पाकिस्तान को देने के लिए राजी था। दोना उपनिवेशो म से हिस्से निकालकर पह स्वतन्त्र सिख राज्य बनाने का हिमायती था। तारासिंह किसी जादूगर और बाइबिल के पात्र जैसा दीखता और काम करता था। अमृतसर के स्वर्ण मंदिर मे सिखो के बीच उसने भाषण दिया—

'सिख भाइयो ! आपको पता होना चाहिए पश्चिम म हमारे भाइयो पर उन लोगो का खतरा है जो हम काफिर कहते हैं। हमारी जमीने कुचल दी जाने वाली हैं, हमारे बच्चा को गलत और विरोधी प्रतिज्ञा करनी पड सकती है। फिर समय आ गया कि हमारे बहादुर उठ खडे हो और मुगल हमलावरो को मार भगाएँ। रावलपिंडी की याद न भूलो। हम अपने लोगो का बदला लेना है। हमारी जमीन पर हमारे अधिकारो के रास्ते मे जो भी आये उसे न छोडो।'

सिखो ने इसे बडी गम्भीरता से हृदयगम किया। मास्टर तारासिंह को इसका पता था। अमृतसर का स्वर्ण मन्दिर पूजा आराधना के अलावा बहुत बडा साम्प्रदायिक केन्द्र भी था। यहाँ किसी भी मुसाफिर को खाने और सोने की सुविधा मिल जाती थी। यहाँ जलसे हुआ करते थे। यहाँ जुलाई के अत और अगस्त के प्रारम्भ मे सिख नेताओ न षडयन्त्र प्रारम्भ किया।

यह सिर्फ कोरी बकवास नही थी। 5 अगस्त को बैठक के बाद दिल्ली म वायसराय ने नेहरू, पटेल, जिन्ना और लियाकत अली खाँ को अपने कमरे म रोक लिया। फिर उसके सामने लाहौर का एक खुफिया पेश किया गया जिसे जेन्किन्स न भेजा था। उनके पास काफी कागजात थे।

उसने कई प्रमुख सिखो के खत, पर्चो की नकल और सिख गुरुद्वाराओ को भेजी गई हिदायतें पेश की। एक योजना थी कि पश्चिमी पाकिस्तान के नहरो की व्यवस्था को उडा दिया जाय। दूसरी योजना थी कि पाकिस्तान जाने वाली गाडियो पर हमला किया जाय। तीसरी योजना थी कि पूर्वी पाकिस्तान से मुसलमानो को गाँव छोडने पर मजबूर किया जाय और छिपकर उन्हे मार डाला जाय। और अत म एक यह योजना भी थी कि 14 अगस्त को जब जिन्ना कराँची जा रहा हो तो उसको भी कत्ल कर दिया जाय।

कागजात काफी प्रमाणिक थे। सभी को स्थिति की गम्भीरता का एहसास दिलाने के लिए काफ़ी थे। जिन्ना और लियाकत अली ने तुरन्त मास्टर तारासिंह की गिरफ्तारी की माँग की। कम-से-कम यह न्यायसगत तो लगता था कि ऐसे उपद्रवी को गिरफ्तार कर लिया जाय।

लेकिन फिर माउण्टबेटन हिचकिचाया। लॉर्ड इस्मे ने भी कदम उठाने पर जोर दिया। मास्टर तारासिंह ने कुछ छिपाया नही था। सिखो की तैयारी के काफी सबूत थे। यह मौका था जब उपद्रव करने वालो के साथ सख्ती बरती जानी चाहिए थी और उन्हे अलग कर देना चाहिए था।

कुछ सप्ताह के पहले का माउण्टबेटन मजे से यह कर सकता था। अब भी उसक

अख्तियार भी था भी। वह वायसराय तो था ही। जो तबाही और बर्बादी होनेवाली थी उसका भी उसे एहसास था। लेकिन उसने फैसला नहीं किया। यह सच है कि सरदार पटेल उसकी गिरफ्तारी के विरुद्ध था।[1] लेकिन माउण्टबेटन और नेहरू मिलकर कहते तो वह राजी हो जाता। लार्ड बर्न सर इवान जेन्किन्स और पूर्वी तथा पश्चिमी पाकिस्तान के मनोनीत गवर्नरों (सर चन्दूलाल त्रिवेदी और सर फ्रांसिस मुडी) से बातचीत करने की घोषणा की।

उन लोगों ने वायसराय को सलाह दी कि मास्टर तारासिंह को गिरफ्तार नहीं किया जाय। सर इवान की दलील साफ थी—अभी गिरफ्तार कर फायदा ही क्या होगा जब कि 15 अगस्त को वह छोड़ दिया जायगा।

लेकिन क्या उसे छोड़ दिया जाता? सत्ता सौंपने का काम शान्तिपूर्ण ढंग से पूरा हो इसके लिए वायसराय से कम चिन्तित नेहरू नहीं थे। शायद कुछ सिख नेताओं की गिरफ्तारी से सिखों को नाराज कर भी वह खूँरेजी को बचा जाता।

कदम-ब-कदम पंजाब की बिगड़ती हुई हालत के बारे में दिल्ली को खबर दी जाती रही। कम-से-कम तीन मौके ऐसे थे जब वायसराय खूँरेजी बचा सकता था। लेकिन यकीन दूरदर्शी के अभाव और जिन्ना से फिर मुठभेड़ से बचने के लिए वायसराय ने मुँह फेर लिया। नतीजा हुआ भयानक तबाही और बर्बादी।

6 अगस्त 1947 को लाल किले में एक पार्टी हुई। भावी भारतीय सेना के अफसरों ने पाकिस्तान जानेवाले फौजी अफसरों को पार्टी दी। पंडित नेहरू, सरदार बलदेवसिंह और नये भारतीय कमाण्डर इन-चीफ जनरल करिअप्पा मौजूद थे।

भावुकता का मौका था। एक साथ काम करने वाले लोग अब अलग अलग सेना में जा रहे थे। लेकिन अंग्रेज अफसरों को छोड़कर किसी के चेहरे पर उदासी नहीं थी। अंग्रेज अफ़सरों के लिए फौज का बँटवारा एक दर्दनाक घटना थी। यह पार्टी उसका प्रतीक थी। दूसरी तरफ राजनीतिज्ञों के लिए ब्रिटिश हुकूमत का एक हथियार खतम हो रहा था और हिन्दुस्तानी फौजियों के लिए नई तरक्की के बहुत बड़े मौके सामने आ रहे थे। आनेवाले दिनों में जो हुआ वह कितना व्यंगात्मक था।

इस मौके पर जनरल करिअप्पा ने कहा— हम फिर मिलेंगे। मैं जान-बूझकर यह कह रहा हूँ कि दोस्ती के वातावरण में साथियों की हैसियत से हम फिर मिलेंगे। अब तक हम लोग एक साथ काम करते रहे। बाहरी हमलावरों से दोनों उपनिवेशों की रक्षा में उसी तरह हम लोग काम करते रहेंगे और मिलते रहेंगे। अब हम लोग दो सेनाओं में काम कर रहे हैं। लेकिन हम लोगों को यह उम्मीद है कि चाहे कोई कुछ कहे या करे हम लोगों की इस दोस्ती पर कभी आँच नहीं आएगा।

मुसलमान अफ़सरों की ओर से ब्रिगेडियर रज़ा ने आमीन कहा। कुछ की आँखों में आँसू आ गए और सभी ने हाथ मिलाकर गाना गाया। तीन दिन बाद पाकिस्तान जाते समय इस पार्टी में शामिल होने वाले तीन अफसरों को सिखों ने मार डाला और उसी गाड़ी में पाकिस्तान के डेढ़ सौ अफ़सर बीवी बच्चों के साथ मारे गए।

---

1 आनेवाले दस वर्षों में उसने मास्टर तारासिंह को पाँच बार कैद किया।

7 अगस्त, 1947 को जिन्ना वायसराय के डकोटा पर करांची चला गया। जाते समय वायसराय ने उसे राल्स रायस गाडी और मुसलमान ए० डी० सी० लेफ्टिनेंट अहसन का उपहार दिया तथा खुद छोडने के लिए हवाई अड्डे तक गया।

फिर तो पजाब के लिए कुछ सुविधाएँ प्राप्त करने की रही-सही उम्मीद भी जाती रही। जाते समय उसने हिन्दुओ और मुसलमानो को बीती बात भुला देने की सलाह दी और भारत की उन्नति की आशा प्रकट की। दूसरे दिन पटेल ने कुछ कहा उनसे उसके मुँह पर ठडा पानी पड गया। पटेल ने दिल्ली मे कहा—'भारत के शरीर से जहर अलग कर दिया गया। हम लोग अब एक हैं और हमे कोई अलग नही कर सकता। नदी या समुद्र के पानी के टुकडे नहीं हो सकते। जहाँ तक मुसलमानो का सवाल है, उनकी जडें, उनके धार्मिक स्थान और केन्द्र यहाँ हैं। मुझे पता नही कि वे पाकिस्तान मे क्या करेंगे। बहुत जल्द वे हमारे पास लौट आयेंगे।'

काग्रेस सभापति मि० कृपलानी के एक वक्तव्य से जिन्ना का गुस्सा और भडक उठा। पाकिस्तान की काग्रेस कमेटियो ने पूछा था कि स्वतन्त्रता-दिवस पर वे पाकिस्तान का झडा लहरायें या नही। कृपलानी का आदेश था कि किसी तरह का झडा लहराने की जरूरत नही, किसी तरह के जशन मे भाग नही लेना चाहिए। लियाकत अली खाँ ने बडे ही गरम शब्दो मे जवाब दिया कि अगर काग्रेसी और हिन्दू नेता ऐसे भडकाने वाले भाषण बन्द नही करते और अपने लोगो की हिंसा नही रोकते तो भगवान् ही पाकिस्तान और भारत को बचाये।

वाकई पजाब की हालत ऐसी हो गई थी कि भगवान् को छोडकर कोई नही बचा सकता था, गाधी भी नही। भगदड शुरू हो गई थी। पश्चिम से हिन्दू और सिख भाग रहे थे तथा पूर्व से मुसलमान। गाधी ने अपनी जगह पर जमे रहने की अपील की लेकिन इसमे (भाषा से) कही डर कम होने वाला था।

लाहौर मे हिन्दुओ के एक मजमे मे उसने कहा—'जिसे कोई प्यार करता हो, वह दम तोड रहा हो तो भागा नही जाता, उसी के साथ जान दी जाती है। भय से घबराने पर तो मौत के पहले आदमी मर जाता है। यह कायरता है।'

सिखो से उसने कहा—'मेरे दिमाग मे सिखो के नाम पर वह तस्वीर उभरती है जो बहादुर आदमी की है और जो किसी से नही डरता तथा किसी बेकसूर को नुकसान नहीं पहुँचाता। अगर हिन्दुओ, मुसलमानो और सिखो का यह दर्दनाक झगडा चलता रहा तो किसी विदेशी ताकत को हिन्दुस्तान पर हमला करने का यह निमत्रण होगा। इसलिए मैं हृदय से प्रार्थना करता हूँ कि यह वर्तमान झगडा खतम होना चाहिए क्योकि इससे किसी भी सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा नही बनती।'

लेकिन वह तो सिर्फ पजाब होकर गुजर रहा था। वह बगाल जा रहा था। यहाँ उसकी उपलब्धियाँ विलक्षण थी। लेकिन उसकी जरूरत तो पजाब को थी। अगस्त के शुरू मे गाधी, नेहरू, पटल, जिन्ना और वायसराय को भी पजाब मे होना चाहिए था। जो कोई भी इसे रोकने की थोडी भी ताकत रखता था, सब को पजाब

में होना चाहिए था। सभी को इसका पता था। क्या सचमुच उन लोगों को उम्मीद थी कि फौज से यह काम हो जाएगा?

गांधी ने ही उन्हें बताया कि पंजाब में क्या करना चाहिए था। बदकिस्मती से एक साथ वह दो जगहों में तो हो नहीं सकता था। उसका उदाहरण बंगाल में था।

नवां अध्याय

एक आदमी की सीमा फ़ौज

1947 के अगस्त में भारत और पाकिस्तान के नए उपनिवेशों के जन्म संस्कार के समय जिस वहशीपने और खूँरेजी का दौर चला उससे सिर्फ एक शहर बची रहा और उसका नाम था कलकत्ता जहाँ हिन्दुओं और मुसलमानों की काफी बड़ी आबादी थी और जहां ठीक एक साल पहले 6,000 हिन्दू-मुसलमान मौत के घाट उतारे गए थे। यह वह शहर था जहाँ गुंडों, शैतानों और उपद्रव करने वालों की भरमार और जहाँ सबसे ज्यादा उपद्रव का वायसराय और हिन्दुस्तानी नेताओं को अन्देशा था। इसीलिए माउण्टबेटन ने 30 जुलाई को ले० जनरल टकर से पूछा था कि उसे भी सीमा फौज की जरूरत है या नहीं।

टकर ने इसलिए इन्कार किया था कि वह भी उपद्रव का सामना करने के लिए अपने को समर्थ समझता था और इसमें कोई शक नहीं कि वह कर्मठ, चालाक और अडिग फौजी बिना किसी बाहरी सहायता के अपने इलाके को साम्प्रदायिक दंगों से अलग रखने के लिए कटिबद्ध था। लेकिन एक सहायता जब आई तो उसकी प्रतिक्रिया दूसरी तरह की हुई। यह सहायता मोहनदास गांधी के रूप में आई, एक आदमी की सीमा फौज जो बंदूकों और हथियारबन्द गाड़ियों से लैस 50,000 सिपाहियों से भी ज्यादा पुरअसर साबित हुई।

गांधी का इरादा था नोआखली में रहने का जहाँ हिन्दुओं पर बहुत अत्याचार हुए थे। बँटवारे की खराबियों के बारे में अब भी उसकी वही राय थी। उसका अब भी विश्वास था कि हिन्दुस्तान के बँटवारे को मानकर नेहरू और पटेल ने गलती की है और दिल्ली या करांची के 'उत्सव' के बीच वह नहीं रहना चाहता था। उसके लिए यह मातम का दिन था और नोआखाली ठीक जगह थी। लेकिन वहाँ जाते समय बंगाल का गवर्नर सर फ्रेडरिक बरोज मिलने आया। सर फ्रेडरिक इस बात के लिए तुला हुआ था कि यहाँ रहने के अन्तिम दिनों को वह खूँरेजी से रंगना नहीं चाहता था। हर तरह के अस्त्र के उपयोग के लिए वह तैयार था, नैतिक और सैनिक। मुसलमानों का भी एक प्रतिनिधि मण्डल मिलने आया। उनकी भी यही हालत थी। मुसलमानों के लिए कलकत्ते की स्थिति प्रतिपल बिगड़ती जा रही थी। मुसलमान अफसर पूर्वी पाकिस्तान चले गए थे। पुलिस में अधिकांश हिन्दू थे। सर फ्रेडरिक ने बताया कि इस बार हिन्दू बदला लेने के लिए तुले हैं और सचमुच कत्लेआम होगा, वे कुछ नहीं कर सकेंगे। सभी ने गांधी को कलकत्ते में रुक जाने के लिए कहा। गांधी

ने इस पर सोचने का वादा किया।

दूसरे दिन मुसलमानो का और एक बडा प्रतिनिधिमण्डल आया। उन्होंने भी अपील की। चालाक गाधी ने कहा—'एक शर्त पर रुक सकता हूँ। अगर नोआखाली मे कुछ गडबडी हुई तो मेरा जीवन समाप्त हो जायगा क्योकि मैं आमरण अनशन करूँगा।'

तुरन्त मुसलमानो की बैठक हुई। लौटकर उन्होंने बताया कि वे लोग मुस्लिम लीग के नेताओ और प्रमुख उपद्रवकारी मियाँ गुलाम सरवर के पास आदमी भेजेंगे ताकि हिन्दुओ की रक्षा हो। गाधी कलकत्ते म रुकने के लिए राजी हो गया। इस तरह के काम मे गाधी उस्ताद था।

जब गाधी कलकत्ते आया तो कलकत्ते का वह मुसलमान सुहरावर्दी कराँची गया था। उसको तो ग्रहण लग गया था। कलकत्ते मे तो उसके हाथ कोई सत्ता रह ही नही सकती जब कांग्रेस सत्तारूढ होती। जिन्ना ने पूर्वी बगाल के लिए उसके प्रतिद्वन्द्वी नाजिमुद्दीन को नामजद किया था। सुहरावर्दी यह जानने के लिए कराँची गया था कि पाकिस्तान मे उसके लिए कौन सी जगह बन सकती है। उसे पता चल गया कि जिन्ना की जिन्दगी मे कुछ भी नही।

लेकिन तकदीर की इस मोड पर सुहरावर्दी उतना पस्तहिम्मत नहीं हुआ था। वह हमेशा कलकत्ते को अपना शहर मानता था जहाँ 'नाइट क्लब' मिल जाते थे जिन्हे वह प्यार करता था, जहाँ लडकियाँ मिल जाती थी जिन्हे वह और भी प्यार करता था। उस शहर की गन्दगी, दुर्गन्ध, गरीबी, शैतानी—सब उसकी तबियत के अनुकूल थी। अगर यही होना था तो कलकत्ते से अच्छी कौन सी जगह उसके लिए हो सकती थी, जहाँ की गलियाँ इतनी अधेरी थी।

लियाकत अली खाँ से मिलने के बाद उसने मुस्लिम लीग के अखबार डान मे पढा कि गाधी नोआखाली जा रहे हैं। वह तुरन्त कलकत्ते आया और गाधी से मिला। उसने भी गाधी से अपील की कि वह कलकत्ते मे रह जाय। गाधी ने कहा—'एक शर्त पर, अगर उसके साथ वह रहे।'

'जरूर, जरूर!'—सुहरावर्दी ने कहा।

'शायद आप मेरा मतलब ठीक-ठीक नही समझ रहे हैं। जब मैं कहता हूँ मेरे साथ तो मेरा मतलब है शाब्दिक रूप म साथ। हम लोग शहर के उस हिस्से मे जाएँगे जहाँ सबसे ज्यादा खतरा है और फिर वहीं अपना निवास-स्थान बनाएँगे। एक ही छत के नीचे हम दोनों रहेंगे। हमारे बचाव के लिए न तो पुलिस होगी और न फौज। और हम लोग साथ-साथ यह प्रचार करेंगे कि बँटवारा हो जाने के बाद हिन्दुओं और मुसलमानो को एक दूसरे को नफरत की नजर से देखने की जरूरत नहीं।'

सुहरावर्दी इस पर कुछ कहना चाहता था लेकिन गाधी ने सलाह दी कि वह इस मसले पर घर जाकर सोचे।

दूसरे दिन सुहरावर्दी ने आकर कहा कि वह इस शर्त को मानने के लिए तैयार है और गाधी राजी हो गया। गाधी को सुहरावर्दी के बारे म सब कुछ पता था। उसने शाम की प्रार्थना-सभा म एलान किया कि उसने कुछ दिनों तक कलकत्ते म रहने

का फैसला किया है और वह तथा सुहरावर्दी मिलकर साथ-साथ साम्प्रदायिक सद्भावना का प्रचार करेंगे। भीड़ में फुसफुसाहट शुरू हुई कि सुहरावर्दी ख़तरनाक आदमी है, जिस पर विश्वास नहीं करना चाहिए।

गांधी ने टका-सा जवाब दिया—'मेरे बारे में भी लोगों ने ऐसा ही कहा है।'

उसने अपने काम के लिए बेलियाघाटा का चुनाव किया मुसलमानों का इलाका जिसके चारों ओर हिन्दुओं का इलाका। यह ऐसा इलाका था जहाँ रोंगटे खड़े करने वाली ग़रीबी, गन्दगी, नीचता और गुनाह थे। जहाँ रंडीखाना, शराबख़ाना और हर तरह की बीमारी और शैतानी का कारखाना था। जैसे एक घाव को साम्प्रदायिक ख़ून-ख़राबी ने लाल कर दिया था। इसके बीच टेनिसी विलियम्स के नाटक की तरह हैदरी महल था। कभी एक धनी मुसलमान की जायदाद रहा था जो गन्दगी से घबराकर चला गया था। यहाँ गांधी ने अपना निवास स्थान बनाने का फ़ैसला किया। उसके साथ की दो लड़कियाँ सफ़ाई मे जुट पड़ी लेकिन मल-मूत्र, चूहे-साँप से भरी जगह में यह काम वैसा ही था जैसे डूबते हुए नाव को चम्मच से उलीचना। कलकत्ते मे वर्षा शुरू हो गई थी। कीचड़ और सड़ाँध का चारों ओर साम्राज्य था।

सरदार पटेल ने 13 अगस्त को पत्र लिखा—'तो आप कलकत्ते में रुक गए और वह भी ऐसे इलाके में जो टूटा-फूटा तथा गुण्डों और शैतानों का मशहूर अड्डा है। बड़ा भयानक ख़तरा है। लेकिन उससे भी बड़ी बात है कि आपका स्वास्थ्य इतना वज़न ले सकेगा? मुझे लगता है कि वहाँ भयानक गन्दगी होगी। अपने बारे मे सूचना देते रहिये।'

गांधी ने व्यवस्था की थी वह सुहरावर्दी के साथ ही हैदरी महल जायगा और तीसरे पहर ढाई बजे उसे बुलाया था। सुहरावर्दी ने जीवन मे कभी समय की पाबन्दी नहीं रखी थी (कम से कम दिन में)। इस बार भी नई बात नहीं हुई। गांधी ने समझा कि वह बदल गया। वह अकेले ही हैदरी महल चला गया। ढाई घण्टे बाद जब सुहरावर्दी पहुँचा तो दर्शन के लिए हिन्दुओं की बड़ी भीड़ जमा थी। शैतानी करनेवालों की संख्या भी कम नहीं थी। हिन्दू महासभा के नौजवान भी थे। गुण्डे भी थे। शायद फिर कुछ ख़ूँरेज़ी का मौका मिल जाय।

उन लोगों ने चीखकर कहा—'यहाँ क्यों आये हो? मुसलमानों की रक्षा के लिए? नोआखाली जाकर हिन्दुओं को क्यों नहीं बचाते?'

इसी शोर-शराबे के बीच सुहरावर्दी पहुँचा। लोगों ने घेर लिया। आवाज़ें आने लगीं—मुसलमान सूअर, खूनी चोर, गोमांस खानेवाले को मार दो। सुहरावर्दी चुपचाप बैठा रहा और गाड़ी से निकलने की उसने तब तक कोशिश नहीं की जब तक कि गांधी ने अपने आदमियों को नहीं भेजा। यह तय हुआ कि सुहरावर्दी को भीड़ भीतर जाने देगी तभी गांधी उनके प्रतिनिधियों से मिलेगा। सुहरावर्दी उस उबलती हुई भीड़ में से होकर भीतर गया। वह साथ रहने के लिए तैयार होकर आया था, खुली क़मीज और हाफ-पैंट में।

शायद ही कभी इतने भिन्न गुणों, तबियतों, आदतों और रहने-सहने के तरीकों

के लोग ऐसे धाम में साथ रहे हो। यह गांधी की खासियत थी कि सफाई और रहने-सहने के तरीकों के अपने ढग के प्रति इतने कट्टर होते हुए भी छोरदराबेगे से उसे जरा भी परेशानी नहीं हुई। बाहर वर्षा शुरू हो गई थी। एक ही पाखाना था जिसमें सब जाते थे। थूक, खखार, पान की पीक से फर्श भर गया था। गलियारो मे पेशाब-पाखाना बहने लगा था। उसकी दुर्गन्ध मे सुहरावर्दी परेशान हो गया था।

गाधी—मित्र, इसके बारे में सोचो ही मत। सबकुछ दिमाग से निकाल दो।

सुहरावर्दी—कैसे दिमाग से निकाल दूँ जब नाक के सहारे यह घुसता ही जा रहा है।

खटमल और गन्दगी से तो परेशान लगता था लेकिन बाहर की खतरनाक भीड का जैसे उस पर कोई असर ही नहीं पड रहा था। जब गाधी प्रतिनिधियों से बात कर रहा था, भीड ने खिडकी पर पत्थर फेंके। गाधी भीड को समझाने गया तो आवाज आई—

'सुहरावर्दी क्यों नहीं सामने आता ?'

सुहरावर्दी खिडकी के पास आया लेकिन महात्मा ने कहा कि अभी सामने न आओ। दूसरी रात जब प्रदर्शनकारियो ने फिर उसका नाम पुकारा तो वह सामने आया। गाधी उसके बगल म खडा था, उसके कन्धे पर हाथ रखे हुए। सुहरावर्दी ने चिल्लाकर भीड से कहा —

'यह बंगाल की बडी खुशकिस्मती है कि इस समय महात्माजी हमारे बीच हैं। क्या बंगाल इस सौभाग्य को पहचानेगा और आपसी खूनखराबी बन्द करेगा ?'

एक हिन्दू की आवाज आई—'कलकत्ते के उस क़त्ल के लिए तुम ज़िम्मेदार थे। जवाब दो, थे कि नहीं ?'

सुहरावर्दी—'हाँ, हम सभी थे।'

भीड—'जवाब दो।'

सुहरावर्दी—'हाँ, यह मेरी जिम्मेदारी थी।'

और वह उनके सामने खडा रहा जैसे उन्हें चुनौती दे रहा हो। लेकिन इस उद्दण्ड राजनीतिज्ञ के चेहरे पर कुछ था जिसने उन पर असर किया और यह थी नम्रता। इसके बाद जब प्रदर्शनकारी आते तो बलबले कम उठते, सवाल ज्यादा होते। फिर तो गाधी और सुहरावर्दी साथ-साथ प्रार्थना-सभा म जाने लगे और कई मौका पर दस हजार से लेकर लाख तक की भीड म साथ-साथ बोले।

हैरत की बात यह है कि गाधी का जादू और उसकी चाल कारगर हो गई। उसके आने के सिर्फ 24 घण्टे बाद 5000 हिन्दुओ और मुसलमानो का एक साथ जुलूस निकला और नारे लग रहे थे—हिन्दू-मुस्लिम एक हो, हिन्दू-मुस्लिम भाई भाई।

खूँरेजी बन्द हो गई। लफ्टिनेण्ट जनरल टकर की गुरखा और अंग्रेज फौज एकदम तैयार थी लेकिन उसकी जरूरत नहीं पडी। कलकत्ते के जिन अंग्रेजो ने एक साल पहले वहाँ का क़त्ल देखा था उन्होंने हिन्दुओ और मुसलमानो को गले-गले मिलते देखा। और असर फैलता जा रहा था। बिहार और नोआखाली म भी आग बुझ रही थी।

गांधी ने लिखा—'यहाँ अहाते में अनगिनत हिन्दू प्यारे नारे लगाते जा रहे हैं।

यह कहा जा सकता है कि भाई-चारे का आनन्द हर घडी बढता जा रहा है। यह क्या चमत्कार है या आकस्मिक घटना ? चाहे जिस नाम से इसे पुकारा जाय, इतना तो स्पष्ट है कि सभी तरफ से जो श्रेय मुझे दिया जा रहा है, मैं उसके काबिल नही और न सुहरावर्दी है। यह एक या दो आदमियों का काम नही है। हम लोग भगवान् के घर के खिलौने हैं। वह अपनी धुन पर हमें नचाता है। इसलिए ज्यादा से ज्यादा आदमी यही कर सकता है कि इस नाच मे टाँग न अडाये और अपने सृजनहार की आज्ञा सोलह आना मान ले। इस तरह सोचने पर कहा जा सकता है कि इस चमत्कार मे परमात्मा ने हम दोनो का अपने साधन की तरह उपयोग किया है और जहाँ तक मेरा सवाल है, मैं सिर्फ इतना ही पूछना हूँ कि क्या मेरी जवानी के सपने मेरी जिन्दगी की शाम मे पूरे हो सकेंगे।'[1]

ये सपने पूरे नही हो सकते क्योकि उसने हमेशा आजाद लेकिन सयुक्त हिन्दुस्तान का सपना देखा था चाहे लोगो का जो भी धर्म हो। वह हिन्दुओ और मुसलमानो में भाई-चारा कायम कर सकता था लेकिन खून से रगे हुए हिन्दुस्तान को वह नही जोड सकता था जिसे राजनीतिज्ञो ने दो टुकडो में बाँट दिया था।

माउण्टबेटन ने उसे लिखा —

'पजाब मे हमारे साथ 50,000 सिपाही हैं लेकिन दगे भी। बगाल मे सिर्फ एक आदमी की फौज है और कोई दगा नही। काम करनेवाले एक अफसर और प्रशासक की हैसियत से इस एक आदमी की सीमा फौज के प्रति मैं सम्मान प्रकट कर सकता हूँ ? कमाण्ड का दूसरा आदमी सुहरावर्दी भी इसमें शामिल है।'

अगस्त, 1947 के खून के प्यासे साम्प्रदायिक वातावरण मे खुश होने के लिए क्या था ? लेकिन जिस समय निराशा के सभी आसार मौजूद थे, कलकत्ते और बाकी बगाल ने ऐसी घटनाएँ पेश की जिससे आदमी को खुशी हो सकती थी, आशा बँध सकती थी।

और इसकी प्रेरणा कलकत्ते की गन्दगी और कीचड मे चलते हुए दो आदमियो से मिली जो पुराने जमाने के लारेल-हार्डी फिल्म के पूर्वी सस्करण से लगते थे। महात्मा गाधी शान्त, देवत्व की आभा से परिपूर्ण, अपनी लँगोटी मे मुस्कराता हुआ। शहीद सुहरावर्दी अभ्यास नही रहने के कारण पसीने से लथपथ, खुली कमीज और हाफपैंट में उसके साथ घिसटता हुआ।

जब बँटवारा कमेटियाँ झगड रही थी, राजे-महाराजे अपनी पेन्शन की बातचीत कर रहे थे और उस महान् दिन 15 अगस्त के लिए राजनीतिक नेता आईनो के सामने रियाज कर रहे थे, वायसराय का दफ्तर उस दिन की रस्म-अदायगी के बारे मे सर खपा रहा था। उस मौके के लिए न तो कोई सिलसिला बना-बनाया था और न पहले कभी ऐसा हुआ ही था। अंग्रेजों ने इसके पहले अपने साम्राज्य का छोटा-सा टुकडा भी नही दिया था। काम जल्दबाजी में हुआ था लेकिन सदिच्छा से। अब रसमअदायगी

1. गांधी के अखबार 'हरिजन'

का क्या हो ?

लॉर्ड इस्मे ने वायसराय को एक नोट लिखा जिसका शीर्षक था 'सत्ता सौंपने के दिन के रस्म'। उसमे लिखा था :—

'हमारा सुझाव है कि यह एक अहम राजनीतिक मसला है। निम्नलिखित बातें सामने आती हैं :—

(क) दोनो उपनिवेशों की राजधानी मे ये रस्म मनाये जाने चाहिए''' आपके लिए दिल्ली मे सुबह और दोपहर या शाम को करांची मे उपस्थित होना आसानी से सम्भव हो सकेगा।

(ख) जहाँ तक दिल्ली का सवाल है हमलोगो को ऊँचा झण्डा उड़ाते हुए बाहर जाना चाहिए। पंडित नेहरू को बहुत शानशौकत पसन्द न हो और वह सादगी चाह सकते हैं। रस्मअदायगी के स्वरूप पर आपको दोनो प्रधान मन्त्रियो से बातचीत करनी चाहिए और हमारा विश्वास है कि वे आपका साथ देंगे।

(ग) शायद दिल्ली मे दरबार हाल म ही यह काम हो। यह उम्मीद की जाती है कि दोनो मौको पर आप सम्राट् का सन्देश पढ़ेंगे।

(घ) यह उम्मीद की जाती है कि वहाँ उपनिवेशो के प्रतिनिधि मौजूद होंगे।

(च) इस रस्मअदायगी मे फौज की टुकड़ियो के भाग लेने का सवाल उठता है। यह उम्मीद है कि दोनो उपनिवेशो म उस दिन तक उनके अपने लोगो की एक एक टुकड़ी हो जायगी। अंग्रेज़ी फौज भाग लेगी और दोनो राजधानियो मे टुकड़ियाँ तैनात रहेंगी।

(छ) हमारा सुझाव है कि पथ प्रदर्शन के लिए इण्डिया ऑफिस पत्र भेजा जाना चाहिए।

लेकिन यह नोट तब लिखा गया था जब उम्मीद की जाती थी कि माउण्टबेटन दोनो उपनिवेशो का गवर्नर जनरल होगा और यह मानकर नोट लिखा गया था कि इस रस्मअदायगी मे सत्ता सौंपनेवाले की हैसियत से ब्रिटेन भी भाग ले सकेगा।

लेकिन जिन्ना और नेहरू ने इतनी लम्बी लड़ाई इसलिए नही लड़ी थी कि ब्रिटिश राज उस सत्ता का साझीदार बन जाय। (माउण्टबेटन के साझेदारी के लिए वे राजी थे) मुस्लिम लीग के नेता ने स्पष्ट कर दिया कि 14 अगस्त को वायसराय आकर रस्म पूरी कर दे। 15 अगस्त उनके लिए छोड़ दे। यह इन्तजाम वायसराय के लिए ठीक था। उस दिन उसकी जगह थी दिल्ली।

ब्रिटेन की लेबर सरकार सम्राट् के सन्देश के लिए राजी नही हुई और सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर इण्डिया लॉर्ड लिस्टोवेल ने वायसराय को लिखा कि इसे सभी हिन्दुस्तानी और अंग्रेज पसन्द नही भी कर सकते हैं।

अंग्रेजो के राष्ट्रीय गान 'गाड सेव द किंग' का क्या होगा ? एक महीना पहले इस मौके पर सभी उसके पक्ष म थे। अब वायसराय को घबराहट होने लगी। इस सिलसिले मे यह दिल्ली मे इसे छोड़ने के लिए भी तैयार था। उसने प्रदेशो के गवर्नरों को लिखा :—

'मेरी सामान्य नीति राष्ट्रीय गान के बारे म रही है कि सत्ता सौंपने के बाद सावजनिक रूप स इसे प्रस्तुत नही करना चाहिए सिर्फ गवर्नर के भवनो म यह प्रस्तुत हो। सत्ता सौंपने की रस्म के समय गवनरो को तोप की सलामी और राष्ट्रीय गान के पहले हिस्से का हक है। लेकिन इस दूसरी बात पर जिद मचाना ठीक नही होगा और यहाँ भी यही मशा है।'[1]

इस रस्मग्रदायगी के जश्न को बदरग नही करने दिया जायगा, किसी को भी नही। माउण्टबेटन इस पर तुला हुआ था। उसने इतनी तेजी से काम किया था, इतने खतरे उठाये थे और दोनो उपनिवेशो तथा ब्रिटेन के बीच सदभावना का सम्बन्ध स्थापित किया था। किसी तरह की गलती से वह इसे बिगडने देने के लिए तैयार नही था। किसी भी हालत म 15 अगस्त पाकिस्तान और भारत की जनता के लिए खुशी का दिन होना ही चाहिए और इसे गढनेवाले की हैसियत से वह आखिरी खतरा उठाने के लिए भी तैयार था।

बुरी खबर तो उसकी जेब म ही थी। 9 अगस्त स ही उसके पास सर सिरिल रेडक्लिफ का फैसला पडा था। लाखो लोगो की जिन्दगी इससे बदल जायगी। इससे झटका लगेगा निराशा होगी और बेपनाह गुस्सा भडकेगा। पूरब मे चटगाव के पहाडी इलाके पूर्वी पाकिस्तान को दिये गए थे जिससे काग्रेस सख्त नाराज होती। पश्चिम म पजाब की दो नदियो के सहारे उसने एक मजबूत रेखा खींची थी जिससे सभी नहरें जिस सिखो की मेहनत और पैसे ने तैयार किया था गेहूँ के उपजाऊ खेत धर्मस्थान और लाहौर का शहर पाकिस्तान म चला गया।

एक एसी भी बात थी फैसले म जिससे मुसलमानो को गुस्सा आ सकता था। गुरदासपुर का जिला जहाँ मुसलमानो का बहुमत था और जहाँ से काश्मीर का एक मात्र रेल और सडक का रास्ता था भारत को मिला। पीछे चलकर जो हुआ उससे खासकर पाकिस्तान के दोस्तो ने इस फैसले को शक की नजर मे देखा।

लाखो लोगो के बेपनाह सवालो का जवाब यहाँ था। इस फैसले के बाद वे अपना सामान सहेजकर पूरब की ओर चल देते। साम्प्रदायिक तनाव की इस बढती हुई चकाचौंध म जितनी जल्दी उन्हें अपनी तकदीर का पता चल जाय उतना ही अच्छा है।

फिर माउण्टबेटन ने इस फैसला को प्रकाशित क्या नही किया ?

जिस किसी को माउण्टबेटन के चरित्र का अध्ययन है उसके लिए उत्तर साफ है। कैम्बेल-जानसन ने अपने स्वामी की विचारधारा साफ-साफ लिख दी है—

इसे प्रकाशित करने क बारे म कई तरह के विचार सामने आए। प्रशासन की दृष्टि स इस पर जोर दिया गया कि जितनी जल्दी यह प्रकाशित हो जाय उतनी ही बेहतर सहायता होगी और पहले से ही फौज तैनात कर दी जा सकेगी। दूसरी राय थी कि फैसला स झमेले उठेंगे ही इसलिए इस 14 अगस्त को प्रकाशित किया

1 भारत सरकार के कागजात से

जाय। माउण्टबेटन ने कहा कि अगर इस मामले में वह अपना फैसला कर सकता है तो इसका प्रकाशन स्वाधीनता-दिवस के उत्सव के बाद के लिए मुल्तवी होना चाहिए। क्योंकि इसका सम्बन्ध मानसिक स्थिति से है और दोनों ओर मतभेद और दुःख होगा ही जो स्वाधीनता-दिवस को बदरंग कर देगा और जिसे रोकना चाहिए।

जो कोई चीज स्वतन्त्रता-दिवस के साफ आसमान पर काले बादल की तरह छा जाने की कोशिश करेगी, सफलता के अधिकारी की प्रतिक्रिया उसके विरुद्ध होगी ही। आगे चलकर जो घटनाएँ घटी उनकी दृष्टि से फैसले को इतने अर्से तक दबाने में उसने गलती की और भारतीय तथा पाकिस्तानी नेताओं पर विश्वास नहीं कर उसने और बड़ी गलती की। पहले ही प्रकाशित फैसलों ने लोगों को अपना सामान समेटकर हट जाने का मौका दिया होता। गोशीदा तौर पर जिन्ना, नेहरू और जनरल रीस को खबर दी जाती तो फौज इस तरह तैनात की जाती कि कम-से-कम व्यवस्था का आभास तो मिलता। लेकिन माउण्टबेटन ने किसी को कुछ नहीं बताया। फैसले को अपने कलेजे से चिपकाये रहा। स्वतन्त्रता दिवस खुशी-खुशी बीता लेकिन इसके फलस्वरूप लाखों का सर्वस्व चला गया।

यह बात माउण्टबेटन की आत्मा के लिए है। शायद इसने उसे नहीं कुरेदा या बात उसके दिमाग में भी नहीं आई। ब्रिटिश राज्य के आखिरी क्षणों में उसकी मानसिक स्थिति के बारे में कैम्बेल जानसन ने लिखा है—

'जब रात आधी बीती तो माउण्टबेटन अपने टेबल के सामने चुपचाप बैठा था। मैंने उसे सब तरह की मन स्थितियों में देखा है। आज उसके चारों ओर महान् शांति का वातावरण था, निर्लिप्तता का। उसकी व्यक्तिगत सफलता उल्लास के लिए बहुत भारी पड़ती थी। बल्कि इतिहास की अनुभूति और यह अनुभूति कि पुरानी और नई व्यवस्था उसी में समन्वित है जो एक तरह का संयम माँगती थी।

जिस आदमी के पास ऐसा समाचार बन्द पड़ा हो जिससे आनेवाले कुछ सप्ताहों में लगभग दस लाख लोग मारे जाएँगे और इतिहास की सबसे बड़ी तथा दर्दनाक यात्रा शुरू होगी, उस आदमी की ऐसी मानसिक स्थिति विलक्षण थी। और इसके बावजूद जैसा कि माउण्टबेटन ने खुद पीछे चलकर कहा—'हिन्दुस्तानियों के लिए स्वतन्त्रता के अलावा और किसी चीज का सवाल नहीं था।'[1]

एक बात निश्चित है। इस फैसले को प्रकाशित नहीं करने के पीछे कोई बदनीयती नहीं थी जैसा कि आनेवाले दिनों में जिन्ना और कुछ पाकिस्तानियों ने विश्वास कर लिया। अगर लगातार कुछ घटनाएँ और शैतानी नहीं की जाती तो वे विश्वास भी नहीं करते। उस समय उसकी जाँच का कोई रास्ता भी नहीं था।

ऐसा हुआ कि 8 अगस्त को माउण्टबेटन के हाथों में फैसला आने के पहले जेन्किन्स ने जार्ज एबेल को शिमले से टेलीफोन किया। वह काफी परेशान था और जानना चाहता था कि पंजाब के बारे में फैसला हो गया या नहीं। जब उसे कहा गया कि

1. लेखक के साथ बातचीत।

अभी नहीं तो उसे एबेल ने पता लगाने के लिए कहा ताकि फौज को अवश्यभावी उपद्रव के लिहाज से तैनात किया जा सके ।

एबेल ने सर सिरिल के दफ्तर में जानकारी के लिए टेलीफोन किया। उसके बाद क्या हुआ यह रहस्य ही है। सर सिरिल ने कुछ नहीं बताया होगा। उनके किसी कर्मचारी ने कहा हो तो बात दूसरी है लेकिन यह भी असभाव्य लगती है। जार्ज एबेल ने एक खाका सर इवान जेन्किन्स को भेजा और कहा कि 'यह टेलीफोन पर उतारा गया है' इस खाके में फिरोजपुर और जीरा पाकिस्तान में थे।

जब फैसला प्रकाशित हुआ तो ये दोनों शहर हिन्दुस्तान में थे।

वह खाका सरकारी तौर पर नहीं भेजा गया था। बहरहाल, 'टेलीफोन पर नक्शा उतारना' जरा कैसा तो लगता है। 15 अगस्त को इग्लैण्ड जाते समय अगर सर इवान उसे अपनी तिजोरी में छोड नहीं जाता तो बात वहीं खतम हो जाती। पश्चिमी पजाब के गवर्नर सर जान मुडी को, जिसने जेन्किन्स का काम सम्हाला वह खाका मिला। सर इवान या इण्डिया आफिस के रिकार्ड विभाग को यह खाका भेज देने के बदले उसने उसे जिन्ना को भेज दिया। जिन्ना ने खाका अपने विशेषज्ञों के हाथ सौंपा। उन लोगो ने तुरन्त उसे सरकारी खाका मान लिया और उसकी तारीख 8 अगस्त देख कर यह मान लिया कि नेहरू और भारत की इच्छानुसार फैसले को सर सिरिल रेडक्लिफ से बदलवाने के लिए माउण्टबटन ने फैसले का प्रकाशन रोक रखा था। उसने सर सिरिल से सिर्फ फिरोजपुर और जीरा ही नहीं गुरदासपुर भी भारत को दिलवा दिया। इस तरह भारत का काश्मीर से सीधा सम्बन्ध हो गया जो उसे नहीं मिलता और काश्मीर से भारत का कोई सम्बन्ध ही नहीं रहता।

माउण्टबटन ने इस इलज़ाम का कोई जवाब नहीं दिया है। जो तथ्य है वही इसका जवाब देगा। काफी छानबीन के बाद लेखक के दिमाग मे इस बात की कोई शका नहीं। फैसला रोक रखने की उसने गलती भले ही की हो पर साजिश का सवाल ही नहीं उठता। बहुतेरे पाकिस्तानियो की तरह यह सुझाना कि पाकिस्तान के गवर्नर जनरल पद के लिए जिन्ना की झिडकी का बदला लेने की गरज़ से उसने फैसले मे उलट फेर करवाया, माउण्टबेटन के चरित्र का बहुत गलत अन्दाज़ करना है।

उसने साजिश नहीं की यह तो साफ है। फैसले को रोक रखने म उसने बडा गलत कदम उठाया, यह बात उतनी साफ नहीं।

अध्याय 10

इंग्लैण्ड : शासक नहीं दोस्त

14 अगस्त, 1947 को *'ईस्टर्न कमाड के समस्त ब्रिटिश यूनिट के नाम'* ले० जनरल टकर ने लिखा—'जिस तरह सभी विभागो के ब्रिटिश रेजिमेट ने पिछले दो सौ साल से हिन्दुस्तान में काम किया, उस तरह काम करने का आज आखिरी दिन है। ब्रिटिश सेना ही इन वर्षों मे वह मजबूत ढाँचा रही है जिस पर हमारे राष्ट्र ने हिन्दुस्तान के इतिहास मे पहली बार इसकी भौगोलिक और प्रशासकीय एकता के रूप की इमारत खडी की।

आपके मशहूर रेजिमट सदा के लिए हिन्दुस्तान छोड रहे हैं।

इसलिए आज सभी अफसरो और आदमियो की ओर से पिछले दो कठिन वर्षों मे हमारे लिए आपने जो कुछ भी किया उसका मैं शुक्रिया अदा करता हूँ। ...इतजार के इन चन्द दिनो मे *अच्छी तरह काम करिए जैसा आप हमेशा करते आए हैं* और अपनी शोहरत को पूरी बुलन्दी पर छोड जाइये। हिन्दुस्तान के हित मे जिस सहयोग की भावना का यहाँ आपने परिचय दिया है उसे साथ ब्रिटेन ले जाइये और इस तरह *अपने देश की मदद कीजिए...* ।'

उसी दिन सर क्लाड आचिनलेक ने अपना आर्डर निकाला—

हिन्दुतानी सेवा का विशेष आर्डर

हिज एक्सेलेंसी फील्ड मार्शल सर क्लाड जे० ई० आचिनलेक, जी० सी० बी०, जी० सी० आई० ई०, सी० एस० आई०, डी० एस० ओ०, ओ० बी० ई०, हिन्दुस्तानके कमांडर इन चीफ की ओर से। नई दिल्ली, 14 अगस्त 1947/एस०/ए० ओ० 79/एस०/47—हिन्दुस्तानी सेना के सभी आर्डर रद्द। यह हिन्दुस्तानी सेना का आखिरी आर्डर है।

आचिनलक जो अब भारतीय और *पाकिस्तानी,* दोनो सेनाओं का प्रधान था बिलकुल दूसरी मानसिक स्थिति म था। 14 अगस्त को वह हवाई जहाज से करांची से दिल्ली आ रहा था। रास्ते म लाहौर रुका। 24 घण्टे बाद भारत और पाकिस्तान आजाद हो जाएँगे। *लेकिन पजाब में आजादी का क्या मतलब निकलेगा।*

जॉन कॉनेल ने अपनी किताब, *आचिनलेक, ए बिटिकल बायोग्रेफी* में लिखा है'—'जब उसने पजाब की सरजमीन को झुककर देखा तो हर गाँव से, दूर क्षितिज तक धुआँ उठ रहा था और धूल भरी सडको पर शरणार्थियों के अन्तहीन जत्थे पूर्व और पश्चिम जा रहे थे।'

बडी यात्राएँ तो अभी दरअसल शुरू ही नही हुई थी। पश्चिमी पजाब के लाखो गैर मुसलमान और पूर्वी पजाब के लाखो मुसलमान इस उम्मीद मे रुके थे कि सीमा रेखा के फैसले उनके पक्ष मे होंगे। जो बात सिर्फ रेडक्लिफ और माउण्टबेटन जानते थे उन्हें नही जाननेवाले नेतागण लोगो को रुकने का बढ़ावा दे रहे थे और धमकियो के बावजूद वे जमे थे। अमृतसर मे मुसलमान दुकानों का पूरा इलाका जल रहा था। आचिनलेक, जनरल रीस और सर इवान की लाहौर के हवाई अड्डे पर ही बैठक हुई। इधर उन लोगो की बातचीत चल रही थी और उधर भारत जानेवाली गाडी पर चढने के लिए कतारा म खडे सिखो को दर्जनो की सख्या मे मौत के घाट उतारा गया। पुलिस खडी तमाशा देखती रही। जेन्किन्स ने बताया कि पुलिस पर विश्वास नहीं किया जा सकता और शहर के दस प्रतिशत मकान बरबाद कर दिये गए हैं। अगर मार्शल लॉ भी लागू कर दिया जाय तो उसकी पाबन्दी के लिए काफी अफसर नही हैं। यह साफ था कि गवर्नर के पास कोई चारा नही था। चौबीस घण्टे के अन्दर ही वह हवाई जहाज पर इग्लैण्ड के लिए रवाना हो जायगा। लेकिन उस समय अपने प्यारे पजाब के गवर्नर की हैसियत से इस सकट का सारा बोझ उसके कन्धो पर था और उसका दर्द साफ दिखाई पड रहा था।

ऐसी ही निराशा जनरल रीस की थी। उसकी पजाब सीमा फौज, जिस पर शान्तिपूर्ण तरीके से सत्ता सौंपने का इतना भरोसा माउण्टबेटन और दिल्ली के राजनीतिज्ञ किये बैठे थे, सिर्फ तीन सप्ताह पहले मैदान म आई थी लेकिन जनरल रीस को पता था कि वह सोलह आने असफल होगी। दूसरा हो ही क्या सकता था ? फोर्थ इण्डियन डिवीजन बडी ही शानदार जमात थी लेकिन उसे इस तरह के वहशीपन का सामना करना पडा था जैसा कभी किसी लडाई मे देखा भी नही गया था।

उसके मुसलमान सदस्यो ने सिख इलाको मे अपने सहधर्मियो को कत्ल और अपग होते देखा तो गैर मुसलमानो को बचाने से वे दूर हटते गए। सिख और हिन्दू सिपाहियो के बीच भगोडे सिपाही (अधिकांशत जापानियो के हिमायती इण्डियन नेशनल सेना के पुराने सदस्य) प्रचार करते थे कि वे हथियार लेकर भाग जाएँ या जब हमले हो तो मुँह फेर लें। चाहे जिस भी सम्प्रदाय का क्यो न हो, हर सिपाही अपने परिवार के लिए चिन्तित था क्योंकि बहुत-स मुसलमानो के बीवी-बच्चे बम्बई म थे और बहुत से गैर मुसलमान रावलपिण्डी और पेशावर के आस थे।

इतना ही नहीं, वे जानते थे कि अग्रेजो का दिल उखड गया है, उनका प्रभाव खत्म हो गया है। यह कोई ऐसी बात नही थी जिसकी उम्मीद न हो क्योंकि कल या परसों वे इग्लैण्ड के लिए रवाना हो जाएँगे। उनकी इज्जत और शक्ति ब्रिटिश राज की समाप्ति और फौज के बँटवारे ने खतम कर दी थी। क्या उनकी बात मानी जायगी ? और अगर मानी गई तथा सीसिया लोग मारे गए तो राजनीतिज्ञ क्या कहेंगे ? क्या उन्हें शान्तिभग करनेवाला बनाया जायगा या शान्ति का निष्पक्ष रक्षक ?

"हर रोज नेता आते और सलाह देते कि लूटनेवालों और हमला करनेवालों पर गोली चला देनी चाहिए। लेकिन हमेशा वे दूसरी तरफ के लूटनेवालों और हमला

करनेवालों की बात करते । जब उनकी ओर के लूटने और हमला करनेवालों पर गोली चलाने का सुझाव रखा जाता तो वे आगबबूला हो जाते'—लेखक के साथ बातचीत में जेन्किन्स ने यह कहा था।

पंजाब सीमा फौज के साथ दो ऐसे हिन्दुस्तानी अफसर थे जो आगे चलकर अपने-अपने देशों में बड़े ऊँचे ओहदों पर पहुँचे। एक था ब्रिगेडियर अय्यूब खान जो पीछे चलकर फील्ड मार्शल और पाकिस्तान का राष्ट्रपति बना। दूसरा था ब्रिगेडियर के० एस० थिमैय्या जो आगे चलकर जनरल और भारतीय सेना का कमाण्डर-इन-चीफ हुआ। एक मुसलमान और दूसरा हिन्दू था। दोनों ने लेखक के साथ बातचीत में यह विचार प्रकट किया है कि अंग्रेज अफसर तो बड़ी अजीब स्थिति में थे और फ़ौज को भेजना ही नहीं चाहिए था। दोनों की यही राय थी कि जो भी फौज काम में लाई गई उनका कमाण्ड अंग्रेज अफसरों के हाथों में होना चाहिए था। वे अपनी फ़ौज को गोली चलाने का हुक्म देने से नहीं हिचकिचाते और इनकी बात एकदम मानी जाती।

फोर्थ इण्डियन डिवीजन के सरकारी इतिहास के अनुसार जनरल रीस ने लाहौर के हवाई अड्डेवाली बैठक में यह कहा था कि फौज के उपयोग से परिस्थिति नहीं सम्भलेगी। लाखों की संख्या में जब सम्प्रदायों का सम्प्रदाय हाथ से बाहर निकल जाय तो सिर्फ राष्ट्रीय और धार्मिक नेता ही इस सत्यानाश को रोक सकते हैं।[1]

लेकिन राष्ट्रीय नेता तो दिल्ली में स्वतन्त्रता-दिवस की तैयारी में व्यस्त थे।

रीस ने अपनी स्थिति की लगभग ऐसी तस्वीर खींची—अगस्त के दूसरे सप्ताह में सिखों ने अपने हमले शुरू कर दिये जैसा कि उन्होंने ऐलान किया था और जिसकी खबर दिल्ली को दी गई थी। आखिरकार उन्होंने महसूस किया था कि सीमा-रेखा चाहे जहाँ भी खींची जाय बँटवारे की चोट उन्हें ही सहनी पड़ेगी और जिस दर्द से वे कराह रहे थे उसका एक ही इलाज उन्हें सूझता था—कत्ल, कत्ल, कत्ल! यह क़त्ल योजनाबद्ध भी था और साथ ही साथ अन्धा और पागलपन से भरा भी। अपने नेता मास्टर तारासिंह के क़दमों में अमृतसर के स्वर्ण मन्दिर में उसके भड़कानेवाले भाषण सुनकर ये प्रदेश के सभी गुरुद्वाराओं में समाचार देने चले जाते। अचरज की बात है कि मन्दिर में गुरु ग्रन्थ साहब का ज़ोर-ज़ोर से पाठ होता था कि विनम्र बनो, सभी के प्रति सदिच्छा रखो और उसी भवन से सौ गज की दूरी पर क़त्ल के लिए लोगों को भड़काया जाता था। उन लोगों ने कत्ल करने के लिए जत्थे भी बना लिए थे।

कई तरह के जत्थे थे, बीस-तीस आदमियों से लेकर पाँच-छः सौ से भी ज्यादा संख्या वाले। जब हमला सीमित होता तो जत्थों की संख्या वही रहती। लेकिन खास मौके पर जैसे एक गाँव या रेलगाड़ी या मुसलमानों के बड़े काफ़िले पर हमले की बात आती तो गाँव के लोग भी शामिल हो जाते और संख्या कई हजार तक पहुँच जाती। उनके आने-जाने हुए नेता थे और उनका दफ्तर चलता-फिरता रहता था। उनके हरकारे पैदल या घोड़े या कभी-कभी मोटर पर भी आते। हमलावर छिपे रहते।

---

1. ले० कर्नल जी० आर० स्टीवेन्स, ओ० बी० ई०—हिस्ट्री ऑफ द फोर्थ इण्डियन डिवीजन।

आखिरी समय मे दूसरी ओर से, उत्तर-पश्चिम सीमान्त प्रदेश की तरह, बडी सख्या में टूट पडते। लाख कोशिश के बावजूद उनमे भगदड मच जाती। फिर छिपी हुई पार्टी भाला तलवार लेकर टूट पडती। हमलावर और काफिले के लोग इस तरह घुल-मिल जाते कि काफिले की सुरक्षा वाला दल उन्हे बचा नही पाता।[1]

'सिखो ने हमला शुरू किया था इसलिए वे हथियार से ज्यादा लैस थे और मुसलमानो की अपेक्षा ज्यादा तैयार। उनका धार्मिक चिह्न कृपाण बदला लेने का हथियार बन गया था। इसकी कमी घर पर तैयार किये गए भालो और कुल्हाडियो से पूरी की गई। भोडे किस्म के बम और गोले भी तैयार किये गए।''' ''जत्थो मे होशियार लडाकों की जमात थी जो राइफल, बम, टॉमी गन और मशीनगनो से लैस थे। मुसलमानो के पास भी मुस्लिम लीग नेशनल गार्ड के रूप मे सीखे हुए लोग थे लेकिन सिखो की तरह साथ काम करने की भावना उनमे नही थी।'[2]

यह ठीक है कि हमला करने के लिए मुसलमानो की तरह सिख तैयार नही थे। अक्सर सिखो का जत्था जब हमला करता तो बचाव के लिए उनके पास लाठी या कचिया होती।

लेकिन उन लोगो ने सीखा। ब्रिटिश राज्य के अन्तिम दिनो और घण्टो मे ज्यादातर मुसलमान ही मारे गए। जत्थो की बन आई थी। लेकिन इस खूँरेजी और बलात्कार से जो कि योजनाबद्ध थी, खून और माँस के लोथडो की प्यास भले ही बुझती हो, लेकिन इससे सिखो का भला नही हो सकता था बल्कि आखिर मे उनका नुकसान ही होना था। क्योकि अधिकांश सिख पश्चिमी पजाब मे थे। हर मुसलमान के कत्ल के साथ सिखो का खतरा बढता जा रहा था। और भडकाये जाने पर मुसलमान भी खून के उतने ही प्यासे हो सकते थे।

यह हिन्दू और मुसलमान के बीच की लडाई नही थी। यह लडाई थी सिख और मुसलमानो के बीच। इसलिए यह समझना और मुश्किल हो जाता है कि कांग्रेस की ओर से नेहरु और मुस्लिम लीग की ओर से जिन्ना ने बीच-बचाव क्यो नही किया। अगर माउण्टबेटन की ओर से दोनो को कहा जाता तो उसका नतीजा जरूर होता। स्वाधीनता दिवस के पहले की हालत के बारे मे एक सरकारी विज्ञप्ति जो अब तक प्रकाश मे नही आई यो है —

'हालांकि कभी-कभी हिन्दू सम्प्रदाय के लोगों को बहुत नुकसान उठाना पडा लेकिन बदले की इस लडाई मे उन लोगों ने बहुत ही छोटा पार्ट अदा किया। आर० एस० एस० (राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ) के लोगो ने अपने को गलियो की छिटपुट हत्या और प्रधान शहरो म खिडकियाँ तोडने तक ही सीमित रखा।' ' ''लेकिन किसी भयानक युगलबन्दी के शब्दों की तरह अमृतसर के मुसलमानो और लाहौर के सिखो की चीख-पुकार उन गलियों मे गूँजने लगी। सतलज और व्यास के बीचवाले उस जरखेज

---

1. वही—वही।
2 वही।

इलाके मांझा में जो सिखों का गढ था, सिखों के पहले जत्थे गाँवों के मुसलमानों का सफाया करने के लिए सामने आये। दिन-ब-दिन क़त्ल का यह सिलसिला ज़ोर पकड़ता गया। लाहौर के उत्तर में स्थित गुजरांवाला में मुसलमानों ने जवाबी हमला किया और सैकड़ों सिख मौत के घाट उतारे गये। मध्य पंजाब के सभी हिस्सों से तबाही और बरबादी की दर्दनाक कहानियाँ आने लगीं।'[1]

उनकी कत्लबाज़ी (जनरल रीस के शब्दों में) सामन्तशाही युग के पहले की सी खूँखार थी। ले० कर्नल पी० एम० मिचिसन, डी० एस० ओ० जिसने चौथे इण्डियन डिवीज़न का कमाण्ड जी० एस० ओ० की तरह सम्भाला इस तरह के दृश्यों का वर्णन यों करता है —

'व्यास से लाहौर मोटर पर जाते समय जब कि लगभग एक लाख मुसलमान पैदल पश्चिम की ओर जा रहे थे, पचास मील की दूरी में मैंने लगभग 400 से 600 लाशें देखीं। शरणार्थियों पर एक हमला तब हुआ जब मैं क़रीब था। हमला घनी फसल की ओर से हुआ। चन्द मिनटों में पचास मर्द, औरत और बच्चे क़त्ल कर दिये गए और तीस घायल दौड़ते हुए हमारे पास आये।

'हम लोगों ने अठारहवीं कैवेलरी का एक टैंक दौड़ाया। हमलावर सिख मारे गए और तीन कैदी हुए। कैदी बड़े काम के साबित हुए क्योंकि पूछताछ पर उन्होंने उन गाँवों के नाम बताये जहाँ के लोग हमले के लिए जिम्मेवार थे। तुरन्त गाँवों की तलाशी ली गई और जुरमाना किया गया।'[2]

हर कोई इस बात पर ज़ोर दे रहा था कि पंजाब में शान्ति स्थापित करने का सिर्फ एक रास्ता है और वह रास्ता है कांग्रेस के नेहरू और मुस्लिम लीग के जिन्ना को बेपनाह हालत का सही पता बताना। उन्हें पंजाब लाकर दिखाना चाहिए कि यहाँ क्या हो रहा है। सिर्फ नौतानियन के रहनुमाओं को हुक्म देकर काम नहीं खतम हो जाता। अपने उपनिवेशों के सही शासक के रूप में उन्हें अनुशासन और नियन्त्रण रखना चाहिए था। जिन्ना को चाहिए कि मुसलमान हमलावरों को रोके। नेहरू को अन्धे और खून के प्यासे सिखों पर शिकंजा कस देना चाहिए चाहे उनके नेताओं को गिरफ्तार ही क्यों न करना पड़े।

यह ऐसा काम था जो वायसराय के शासन के आखिरी घण्टों में उनके ताज को सुनहला बना देता। लीक से हटकर वायसराय ने इतने सारे काम किये थे कि निश्चय ही यह वह मौका था जब मन्त्र की सी निष्ठा और गरिमा से उसे जुट पड़ना चाहिए था। वह पंजाब की हालत के बारे में अनभिज्ञ तो नहीं था। उसे यह भी ज़रूर पता होगा कि पंजाब सीमा फौज अपने काम में असफल रही। उसने यह भी महसूस किया होगा कि मौलाना अबुलकलाम आज़ाद को उसने जो वादा किया था कि किसी हिन्दू, सिख या मुसलमान का बाल भी बाँका नहीं होने देगा वह सिर्फ मुँह चिढ़ाना

---

1 भारत सरकार के कागज़ात से।

2. चौथे इण्डियन डिवीज़न की गुप्तचर रिपोर्ट।

साबित हुआ।

सम्राट् तथा अपनी ओर से पाकिस्तान के नये उपनिवेश को शुभकामनाएँ देने के लिए वह 13 अगस्त को करांची गया। वायसराय की हैसियत से यह उसका आखिरी सरकारी कर्त्तव्य था। वह शायद सबसे ज्यादा मोहक रूप से शान्त और आत्मस्थ रहा होगा। जब उसे कहा गया कि जिन्ना के कत्ल की साजिश के बारे में जो कुछ सुना गया है, वह ठीक है और रस्मी तौर पर जब 14 अगस्त को उसकी सवारी निकलेगी तब उस पर बम फेंका जायगा, तो तुरन्त माउण्टबेटन ने कहा कि सवारी में वह भी जिन्ना के साथ रहेगा। जिन्ना ने जब रस्मी तौर पर दिये गए भोज में लम्बा भाषण पढ़ा तो भी वह जरा परेशान नहीं हुआ क्योंकि कैम्वेल जॉनसन ने कह रखा था कि भाषण नहीं होगा। माउण्टबेटन ने बिना किसी लिखित भाषण के दस मिनट तक जवाब दिया लेकिन ऐसा लगता था कि उसे हफ्तों पहले से रट लिया गया है।

14 अगस्त को एसेम्बली के सामने उसने कहा—'पाकिस्तान का जन्म इतिहास की एक घटना है। हमलोग जो इतिहास के अंग हैं और इसके निर्माण में सहायता कर रहे हैं ऐसी स्थिति में नहीं, अगर हम चाहें तो भी कि घटनाओं पर फतवे दे सकें, मुड़कर पीछे देखें और जिन घटनाक्रमों की यह परिणति हुई है उसका विश्लेषण करें। ऐसा लगता है कि इतिहास कभी तो ग्लेशियर की मन्थर गति से चलता है और कभी पहाड़ी झरने के प्रवल वेग से। इस समय, दुनिया के इस हिस्से में हम लोगों की सम्मिलित कोशिश से वर्फ पिघल गया है, धारा का गतिरोध हट गया है और हमलोग प्रवल वेग से बह रहे हैं। पीछे मुड़कर देखने के लिए समय नहीं है। यह समय है आगे देखने का।'

वह जिन्ना के साथ गाड़ी में गलियों से गुजरा। लोग विनम्रतापूर्वक स्वागत कर रहे थे, दिल खोलकर नहीं। जिन्ना बहुत ही तना हुआ और घबराया था। वायसराय के चेहरे पर किसी तरह का तनाव नहीं। किसी ने उपहास नहीं किया, कोई बम नहीं फेंका गया। आखिर में जब लौटने के बाद जिन्ना ने उसके घुटनों पर हाथ रखते हुए कहा कि 'खुदा का शुक्र है, मैं आपको जिन्दा वापस ले आया' तो माउण्टबेटन की प्रतिक्रिया एक सभ्य और सुसंस्कृत की थी।

उसी दिन तीसरे पहर करांची छोड़कर दिल्ली के लिए रवाना होते हुए माउण्टबेटन को खुशी हुई। उसके लिए करांची और पाकिस्तान तो चटनी थे। वह दिल्ली में मौजूद रहना चाहता था। वह जानता था कि स्वतन्त्रता-दिवस पर सबसे ज्यादा नजर में चढ़ने का मौका जिन्ना किसी को नहीं देगा। जिस दिन जिन्ना करांची पहुँचा, उसने अपने ए० डी० सी० से कहा—

'मैंने कभी सोचा भी नहीं था कि यह मुमकिन होगा। मैंने अपनी जिन्दगी में पाकिस्तान देखने की उम्मीद भी नहीं की थी।'

लेकिन यह तो वाक्या हो गया। वह कल पाकिस्तान का जन्म देखेगा इस एहसास में कि यह एक आदमी का काम है और अगर जिन्ना न होता तो पाकिस्तान भी नहीं होता। उस शानदार पल में जब वह अपने लोगों के सामने खड़ा होकर पढ़ेगा

'पाकिस्तान जिन्दाबाद' की माग में माउण्टबेटन उसे नहीं चाहिए।

1847 से जो यूनियन जैक लगातार रात और दिन लखनऊ की रेजिडेंसी पर फहरा रहा था वह बुधवार 13 अगस्त की शाम को उतार लिया गया और फील्ड मार्शल आकिनलेक के पास भेज दिया गया। आकिनलेक ने उसे सम्राट् तक पहुँचाया ताकि वह विंडसर कासल में सजावघर में और ऐतिहासिक झण्डों के साथ जगह पा सके। दूसरे दिन जब भारत का झंडा फहराने के लिए भारतीय जुलूस पहुँचा तो पता चला कि डंडा जड़ से काटकर हटा दिया गया है जिस पर झंडा फहराया जाना है।

माउण्टबेटन एक रहस्य का आनन्द अब तक अकेले ही उठा रहा था। लेकिन अब उसने अपने सहकारियों को बता दिया कि वायसराय की हैसियत से उसने जो काम किये हैं उसके लिए स्वाधीनता-दिवस पर उसे अर्ल की उपाधि से विभूषित किया जायगा।

एक उत्सव में जिसका सम्पादन माउण्टबेटन ने किया, जार्ज एबेल को सर की उपाधि दी जा चुकी थी। आकिनलेक ने जब सुना कि उसे बैरन बनाया जा रहा है तो उसने इन्कार कर दिया। वायसराय ने अपनी सिफारिश लंदन भेज दी थी। लॉर्ड इस्मे ने सूची मँगाकर देखी कि उसके मातहत काम करने वालों को पुरस्कार मिला है या नहीं तो सबके ऊपर उसे अपना ही नाम नजर आया। उसका नाम के० जी० एस० आई० (नाइट ग्रैंड क्रास ऑफ दि स्टार ऑफ इंडिया, हिन्दुस्तानी साम्राज्य का सबसे बड़ा पुरस्कार) के लिए भेजा गया था। पैंतीस साल पहले जब वह हिन्दुस्तान में काम करता था तो इस उपाधि के लिए तरसा करता था। लेकिन पुराने खानदानी अंग्रेज की तरह उसका खयाल था कि हिन्दुस्तान को वापस लौटाना ऐसा काम नहीं जिसके लिए सम्राट से पुरस्कार मिले।

अपना नाम कटवाकर वह वायसराय से कहने गया कि वह सम्मान वह स्वीकार नहीं कर सकता। माउण्टबेटन ने हँसकर कहा कि अब तो बहुत देरी हो चुकी। सिफारिशें भेज दी गई हैं। उसने जवाब दिया कि अगर वायसराय तुरन्त तार नहीं करते तो वह स्वयं केबल भेजेगा। आखिरकार लंदन केबल भेजा गया। सम्राट् बहुत नाराज हुआ लेकिन इस्मे का नाम हटा दिया गया।

पेचिश के दौरे से इस्मे तब तक बिस्तर पर पड़ा रहा जब तक कि स्वतन्त्रता-दिवस का जश्न खतम नहीं हो गया।

दिल्ली की हवा उत्तेजना और गर्मी से लबालब भरी थी जिस समय 14 अगस्त के आखिरी पल विदा हो रहे थे। उत्सव के लिए मेहराबों की भरमार थी। हर जगह झंडे उड़ रहे थे। किसानों से भरी बैलगाड़ियाँ उत्सव के लिए दिल्ली आ रही थीं। आधी रात के समय वे दिल्ली में रहने और ऐसी उत्तेजना और हर्षोल्लास के साथ जो न तो कभी सम्भव था और न होगा। आखिरकार आजादी आ गई। जिस आजादी के लिए इतने लोगों ने जानें दीं, इतने लोग जेल गए। लगभग सभी मौजूद थे वहाँ। नेहरू का कुन्दन-सा चेहरा थकान से पीला और उदास हो गया था, आँखों के

पाकिस्तान जाने वाली गाड़ी में ठसकर भरे हुए मुसलमान शरणार्थी

पंजाब के दंगों के शिकार

चारो ओर गड्ढे पड गए थे। पटेल रोम के शहंशाह की तरह था मानो रोमन टोगा की जगह उसकी धोती हो और झंडे की जगह जीत। राजगोपालाचार्य उस तरह हँस रहा था जिस तरह शराब से परहेज करने वाले उस बुड्ढे ने कभी नही हँसा होगा। प्रसाद लगभग रो रहा था। राजकुमारी अमृतकौर सचमुच रो रही थी और गहरी बेपनाह उदासी से भरा मौलाना अबुलकलाम का चेहरा प्रसन्न मुखडो से अलग थपेडे खाये हुए चट्टान की तरह था जिसके लिए यह उत्सव दर्दनाक जैसा बन गया था।

प्रसन्न कांग्रेसियो ने उसकी परवाह नही की। जिसकी उपस्थिति से वे परेशान हो सकते थे और जिसने अकेले आजादी के लिए उन सबसे ज्यादा काम किया था उसके लिए ये आखिरी महीने बडे दुखदायी बन गए थे। उसके लिए भी यह खुशियाँ मनाने का वक्त नही था। यह ठीक था कि देश आजाद हो गया। लेकिन यह भी ठीक था कि देश के टुकडे हो गए और खून बह रहा था। इस समय महात्मा गाधी के लिए एक ही जगह थी—कलकत्ते की वह गदी बस्ती जहाँ वह थोडी शान्ति और राहत के लिए काम कर सकता था, जहाँ वह अपने लोगो के पाप के लिए उपवास कर सकता था, जहाँ उस सयुक्त और स्वतन्त्र हिन्दुस्तान के लिए वह मातम मना सकता था जिसके लिए उसने काम किया था, प्रार्थना की थी, योजनाएँ बनाई थी और सपने देखे थे।

यह अवसर किसी भी नेता के लिए इस घडी और मौके के अनुकूल शब्दो को सजाने की चुनौती था। लेकिन जवाहरलाल नेहरू हमेशा ऐसी चुनौतियाँ स्वीकार कर उसम खरा उतरने वाला था। जब एसेम्बली को नये उपनिवेश के प्रति वफादारी का शपथ दिलाने के लिए वह खडा हुआ तो उसने कहा —

'बहुत दिन पहले हम लोगो ने तकदीर के साथ एक ' किया था और अब समय आया है जब हम वफादारी के अपन वादे को पूरी तौर पर या सोलह आना तो नही लेकिन काफी हद तक पूरा करेंगे। ठीक आधी रात के समय, जब दुनिया सो रही होगी हिन्दुस्तान जिन्दगी और आजादी म आँख खोलेगा। ऐसा क्षण आता है और जो इतिहास मे विरला होता है जब हम एक युग से दूसरे युग म कदम रखत है, जब एक जमाना खतम होता है और किसी राष्ट्र की आत्मा, जो सदियो से दबी थी, मुखर हो उठती है। यह उपयुक्त अवसर है जब हम भारत, भारतवासी और उससे भी बडी मानवता की सेवा के लिए अपने को उत्सर्ग करने की शपथ लें।'

आधी रात आई और बात खतम हो गई। न तो गरज और न , मुश्किल से सुनी जाने वाली आह के साथ 182 वर्ष पुराना अग्रेजी राज्य समाप्त हो गया। जिस ब्रिटिश राज्य ने देश पर शासन किया था, देश के न्याय, ईमानदार और अच्छी सरकार की व्यवस्था के साथ उसका शोषण भी किया था, जनता को प्रोत्साहन भी दिया था, वह मिट गया।

और शायद जिस तरह यह राज्य खतम हुआ और नई व्यवस्था आई यह चीनी राजदूत मि० चियाल्युएलो की नीचे दी गई यथार्थ कविता से सबसे अच्छी तरह

बयान की गई है जो उसने इस अवसर पर लिखी थी —

'भारत स्वतन्त्र हो
यह क्या
हिमालय-सा सपना नहीं होगा ?
कितना विचित्र
कितना असम्भव विचार
भर दिमाग म ही नहीं आया · ·· !
अचानक और अविश्वसनीय रूप से विजय हुआ
बुद्धि का
जहाँ पूरब और पश्चिम एक जगह मिल।
कैसा चमत्कार
कि आजादी आये
बिना लड़ाई के ! इतिहास बतायेगा
ऐसा कभी पहले नहीं हुआ।
साहसी बनो, आगे बढ़ो
समय के रथ पर चलन वालो !
जब पहाड़ की चोटी क़रीब हो
तो अपनी कोशिश दुगनी कर दो !
निश्चय ही तुम्हे लक्ष्य मिलेगा
महान् और सुन्दर
उदार और · · ।

15 अगस्त को इसी तरह के बहुत-स उद्गार भारत म निकले। बाहर की दुनिया म राजनीतिज्ञ और टीकाकारो ने ब्रिटन की सुबुद्धि की तारीफ की। हर कोई प्रसन्न था।

दिल्ली म खुशी की बेहोशी म जब कभी वे दिख जाते तो भीड चिल्लाती थी—जयहिन्द, माउण्टबटन की जय और नेहरू माउण्टबेटन एक हो। बम्बई की सडको पर मार्च करते हुए बैंड ने महसूस किया कि वह 'गाड सेव दि किंग' शायद ही बजा सकें इसलिए उन्होंने 'गाड ब्लेस दि प्रिंस आफ वेल्स' की धुन बजायी। बाहर खदेडे गए अग्रजो से बदला लने के बदले उन्होंने दौडकर गले लगाया। दरवाजो पर, लिफ्टो म अग्रजो से कहा जाता—पहले आप आप हमारे मेहमान हैं। पुराने कांग्रेसी के० एम० मुशी न लिखा—

'ब्रिटन को छोडकर दुनिया की कोई भी सत्ता इतनी शालीनता स आजादी नहीं दे सकती थी और भारत के अलावा कोई भी इतनी शालीनता से आभार स्वीकार भी नहीं करता।'

लगता था कि यह परियो की एक कहानी है जिसम दुष्ट खलनायक भी आखिर म बदल जाता है और उसका समाधान हो जाता है। कम-स-कम दिखता ऐसा ही था।

लेकिन पूरे भारत और पाकिस्तान ने उतने भोले रूप मे स्वतन्त्रता दिवस नही मनाया। उसी दिन सुबह अमृतसर के बाजार मे सिखो ने मुसलमान लडकियो और औरतो के बडे समूह को घेर लिया, उनको नगा कर दिया और चारो ओर से शोर मचाती हुई भीड के सामने चक्कर लगवाया। फिर जो अच्छी और जवान थी उन्हे खीचकर उनके साथ लगातार बलात्कार किया गया और बाकियों को कृपाण से कत्ल कर दिया गया। उन तीस मे से सिर्फ आधी दर्जन स्वर्ण मन्दिर के सरक्षण मे पहुँच सकी।

उसी दिन शाम को लाहौर मे शहर के मुसलमानो ने प्रमुख गुरुद्वारे पर हमला किया। सैकडो सिखो ने वहाँ शरण ली थी। मुसलमान अधिकारियो ने जनरल रीस से वादा किया था कि उनकी रक्षा की जायगी। लेकिन पुलिस चुपचाप खडी तमाशा देखती रही और गुरुद्वारे मे आग लगा दी गई। उसके चगुल म फँसे लोगो की बेपनाह चीख-पुकार गूँजने लगी।

हिन्दुस्तान (भारत और पाकिस्तान) आजाद हो गया और दिल्ली तथा कराची मे बडा शानदार लगता था।

लेकिन पजाब के लिए आजादी का दूसरा ही अर्थ था।

उपसंहार

अगस्त, 1947 से लेकर नौ महीने बाद तक लगभग एक करोड़ साठ लाख हिन्दुओं, सिखों और मुसलमानों को घरबार छोड़कर खून की प्यासी भीड़ से बचने के लिए भागना पड़ा। उसी अरसे में 600,000 मारे गए। नहीं, सिर्फ मारे नहीं गए। बच्चों की टांग पकड़कर दीवारों पर पटक दिया गया, लड़कियों के साथ बलात्कार हुआ और उनकी छातियाँ काट ली गईं। गर्भवती औरतों के पेट चीर दिये गए।

हिन्दुस्तान के इतिहास का यह ऐसा हिस्सा था जब पंजाब, उत्तर प्रदेश और बिहार में औरतों को मुगलकालीन हरमों की याद दिलानी पड़ती थी कि गर्भ से बचने के लिए हमेशा छटपटाते रहो।

इस समय लाशों से भरी गाड़ियाँ लाहौर आतीं और उनपर लिखा होता—भारत की ओरसे उपहार। इसी तरह सिखों से भरी गाड़ी को कत्ल कर उसपर लिख दिया गया—पाकिस्तान की ओर से उपहार। जिस देश में गांधी के नेतृत्व में पूरे देश ने अहिंसा का व्रत ले रखा था, ऐसी लूट, ऐसा बलात्कार और ऐसी खूंरेज़ी हुई जिसे चंगेज़ खाँ के बाद दुनिया ने देखा ही नहीं था। उस समय एक पत्रकार ने एक पुस्तिका लिखी थी 'फ्रीडम मस्ट नाट स्टिंक'[1] (आज़ादी में दुर्गन्ध नहीं होनी चाहिए।) लेकिन सारा हिन्दुस्तान दुर्गन्ध से भर गया—अनगिनत लाशों, काले कारनामों, सुलगती हुई आग की दुर्गन्ध से।

1947 भारत के चीलों और गीधों के लिए बड़ा ही शानदार वर्ष था। सड़ते हुए मांस की खोज नहीं करनी पड़ती थी। जानवरों और आदमियों की लाशें हर तरफ़ बिखरी हुई थीं। पश्चिमी पंजाब से आनेवाले सिखों और हिन्दुओं के एक जत्थे की लम्बाई 74 मील थी। उन पर हमला करनेवाले छिपे लोगों को आहट नहीं लेनी पड़ती थी हैजा आदि खतरनाक बीमारियों के कारण उनकी दुर्गन्ध ही पहले बता देती थी और उनकी मानसिक स्थिति ऐसी थी कि दूसरी ओर से आते हुए मुसलमानों के जत्थे को देखकर उनमें से कुछ खुद थोड़ी बहुत खूंरेज़ी के लिए दौड़ पड़े।

अगर सिख पहले चिढ़े हुए और गर्म थे तो 17 अगस्त, 1947 को बाउण्डरी कमीशन के फैसले के प्रकाशित होने पर गुस्से से पागल हो गए। उन्हें जिस बात का डर था उससे भी बुरी हालत थी। उनकी ज़मीन, नहरें, उपजाऊ और धनी इलाके के बीच उनका घर, सबकुछ पाकिस्तान की सरहद के भीतर चला गया। उन पर अजीब

---

1. डॉ० एस० अरोड़ा, फ्रीडम मस्ट नाट स्टिंक।

असर पडा। उन्होंने कसम खाई कि जो भी मुसलमान दिखाई पडेगा उसे मार डालेंगे और वह भी जल्दी नही। सिख नेता और रजवाडे उन्हे इस काम के लिए बढावा देते रहे।

दोनो ओर से 20 जुलाई को दस्तखत किया गया था कि अल्पसख्यको की रक्षा की जायगी। लेकिन माउण्टबेटन का शक ठीक ही था। उन्हे पता नही था कि इसका अर्थ क्या होता है। सिखो की नीति थी मुसलमानो को खतम कर देने की। मुसलमानो की नजर सिखो के उपजाऊ खेतो पर थी। वे उन्हे भगा देना चाहते थे। जो रह जाने पर आमादा होता था उसे ही मारते थे। यह दुख के साथ लिखना पडता है कि लिखित वादे के खिलाफ जानबूझकर ऐसे काम कराने मे पश्चिमी पजाब के अग्रेज गवर्नर सर फ्रासिस मुडी का बहुत बडा हाथ था। उसने जिन्ना को लिखा था :—

'मैं तो सभी से कहता रहा हूँ कि सिख पाकिस्तान के बाहर किस तरह जाते हैं इसकी मुझे परवाह नही। बडी बात है उनसे छुटकारा पा जाना।'

600,000 मारे गए। 14,000,000 घर से निकाले गए। 100,000 जवान लड-कियो का अपहरण हुआ, या जबर्दस्ती उनका धर्म बदला गया या उनको नीलाम किया गया।

हिन्दुस्तान को आजादी देने की उपलब्धियों के मुकाबले यह त्याग आखिर बहुत बडा नहीं था।

अर्ल माउण्टबेटन के हिमायती कम-से-कम इतना तो कहेगे ही। अपनी दलील देंगे कि बगाल के अकाल के समय माउण्टबेटन ने जापानियो से लडते हुए भी जहाज के दस प्रतिशत हिस्से म उनके लिए भोजन लाने के लिए प्रस्ताव किया था। बर्तानिया सरकार के कुछ लोग इतने नाराज हुए कि उन्होने उसके जहाज का हिस्सा ही दस प्रतिशत कम कर दिया क्योकि इससे उसका काम चलनेवाला था। हालाँकि माउण्टबेटन ने अपना हिस्सा पूरा करवा लिया, फिर भी 30-40 लाख बगाली अकाल मे मरे।

माउण्टबेटन के हिमायती कहते हैं—इतने लोगो की मौत सरकार चुपचाप बर्दाश्त कर सकती है तो फिर 600,000 लोगो की मौत से स्वतन्त्र और मित्र भारत बन जाय तो उन्हें क्या शिकायत हो ?

इस किताब में जो तथ्य दिये गए हैं उनसे ऐसी दलीलो का जवाब मिल जायगा, ऐसी आशा की जाती है। कोई समझदार आदमी इससे इन्कार नहीं करेगा कि ब्रिटेन ने हिन्दुस्तान को आजादी देने का जो फैसला किया वह ठीक था—इसलिए नहीं कि उन्हे और अधिक समय तक मातहती मे रखना नही सम्भव था बल्कि इसलिए कि ब्रिटिश जनता उन्हें मातहत रखना नहीं चाहती थी। प्रधान मन्त्री क्लेमेंट एटली ने जून, 1948 तक सभी नियन्त्रण हटा लेने का जो फैसला किया था वह भी ब्रिटिश जनता की इच्छा की अभिव्यक्ति थी हालाँकि चर्चिल सहित वृद्ध टोरियो ने इसका विरोध किया था और इसे जल्दबाजी कहा था। इसका भी कोई सबूत नहीं कि हिन्दू, मुसलमान या सिख किसीने भी एटली की घोषणा पर अविश्वास किया हो।

उन लोगों ने इसे आजादी की तारीख के रूप में मान लिया ।

फिर माउण्टबेटन के आने पर यह तारीख दस महीने पीछे क्यों खींच ली गई ?

माउण्टबेटन कहेगा—दूसरा चारा ही नहीं था । स्थिति काबू से बाहर होती जा रही थी । गृहयुद्ध जैसी परिस्थिति तैयार हो रही थी । ऐसी स्थिति को यों ही छोड़ देने का मतलब होता काफी बड़े पैमाने पर खून-खराबी और दंगे ।

लेबर सरकार के सलाहकारों का विश्वास था कि जल्दी से स्वाधीनता नहीं दी गई तो कांग्रेस पार्टी टूट जायगी और कम्युनिस्ट उसकी जगह ले लेंगे । आज जो बातें उन्हें मालूम हैं उनके आधार पर वे भी समझते होंगे कि यह सत्य से कितनी दूर था ।

यहीं पर मेरी बात सामने आती है और जिसका मेरी नजरों में बहुत बड़ा महत्त्व है । 600,000 हिन्दुस्तानी मरे आजादी के लिए, 14 000,000 बेघरबार हो गए । आदमी जानवर हो गया । कम-से-कम एक पीढ़ी के लिए भारत-पाकिस्तान की सीमा की हवा खराब हो गई । और सब बेजरूरत ।

इसकी कोई जरूरत नहीं थी । अगर आजादी देने की इतनी जल्दी नहीं मचाई जाती तो यह सब कुछ नहीं होता । 350,000,000 लोगों की जिन्दगी का फैसला कभी इतनी चुस्ती, इतनी मोहनी अदा से नहीं हुआ होगा लेकिन साथ ही साथ नतीजों के बारे में बिना कुछ सोच विचार किये हुए भी नहीं हुआ होगा ।

माउण्टबेटन की सफलता को छोटा नहीं किया जा रहा । नोएल कावर्ड के शब्दों में—"जब कोई काम असम्भव मालूम हो तो डिकी को बुलाओ । लेबर सरकार ने उसे इसीलिए इस काम पर लगाया था कि उन्हें रास्ता नहीं सूझ रहा था । उसे आनन-फानन काम पूरा करने के लिए भेजा गया था । एक बदमजा काम को जल्दी-जल्दी पूरा करने के लिए उसे दोषी ठहराना गलत होगा खासकर जब उसका विश्वास (गलत हो सही) था कि जल्दी करने से जानें बच जाएँगी ।

जब यह खयाल आता है कि हिन्दुस्तान को आजादी देने के लिए ब्रिटेन में कितनी सदिच्छा थी तो तैयारी की कमी, गलतियों का अम्बार और योजना के खतरनाक अभाव की कितनी बड़ी खड़ी खाई उस सदिच्छा और सफलता के बीच नजर आती है ।

गलती पर गलती ।

वेवेल, जिसकी योजना कम-से-कम हिन्दुस्तान का बँटवारा नहीं होने देती, निकाल दिया जाता है ।

मुसलमानों के अलग अधिकार का जिन्ना का दावा मान लिया गया लेकिन उसके नतीजों का सामना करने की कोई तैयारी ही नहीं । इस बात का कोई खयाल ही नहीं कि पाकिस्तान होगा कहाँ । फौज के विभाजन की कोई योजना नहीं ।

ताश के पत्तों की तरह बँटवारा तय हो गया शिमला में । लेकिन इस फैसले के महत्त्व का कोई एहसास ही नहीं ।

अगर लेबर सरकार संयुक्त हिन्दुस्तान को जून, 1948 तक आजादी देना चाहती थी तो यह कैसे सम्भव हुआ कि दस महीने पहले बँटे हुए हिन्दुस्तान को आजादी का वादा कर दिया गया ? यह तारीख माउण्टबेटन ने पत्रकारों के बीच घोषित की थी ।

क्या यह सच है कि अराजकता और भगदड़ के अलावा भी कुछ हासिल करने की उसने उम्मीद की थी। अगर यह मान भी लिया जाय कि उसे खून खराबी या तबाही की कोई आशंका ही नहीं थी ?

सचमुच, गलती पर गलती !

हिंदुस्तान के बँटवारे की घोषणा मई, 1947 में कर दी गई और जून तक फौज के बँटवारे की कोई योजना ही नहीं। सिर्फ 6 सप्ताह का समय बाकी था।

बँटवारे की घोषणा मई में और दोनों उपनिवेशों की सीमा रेखा तय करनेवाले बाउण्डरी कमीशन की बहाली जून के अन्त में।

बँटवारा मई में, आजादी अगस्त में। लेकिन किस देश के वासी वे होंगे इसे जानने के लिए बेताब लोगों को आजादी के दो दिन बाद तक जानबूझकर अँधेरे में रखा गया।

निश्चय ही ये गलतियाँ ऐसी थी जिन्हें बचाया जा सकता था और इनकी वजह से लाखों जानें गईं।

जिन अंग्रेजों के हाथों हिन्दुस्तान की आजादी गढ़ी गई वे इन दलीलों को एक तरफ कर देंगे। माउण्टबेटन को विश्वास है कि उसकी सफलता इतिहास में स्थान पायेगी। इसमें शक नहीं कि स्थान पायगी लेकिन शायद उस तरह नहीं जैसी उसने कल्पना की है। उसके प्रधान सहकारी लॉर्ड इस्मे का भी यह विश्वास है कि न सिर्फ सबसे अच्छा काम हुआ बल्कि सबसे अच्छी तरह भी हुआ। इस्मे इस काम को दिल से नफरत करता था। जितनी जल्दी हो सके काम पूरा कर वह भाग जाना चाहता था। नतीजों की परवाह नहीं थी। जब अंग्रेजों के नियन्त्रण से छूटकर उन लोगों ने खून-खराबी शुरू कर दी तो इस्मे को अचरज नहीं हुआ। हिन्दुस्तान के साम्राज्य के हाथ से निकल जाने का उसे इतना गम था कि इसे रोकने की उसे कोई इच्छा ही नहीं थी।

लेकिन सभी हिन्दुस्तानी इस बात पर राजी नहीं होंगे कि इसके अलावा कोई दूसरा रास्ता ही नहीं था।

बहुत-से ऐसे हैं जिनका यह विश्वास है कि उन्हें धोखा देकर आजादी दी गई जिसकी कीमत देश के बँटवारे से चुकानी पड़ी। और उनमें सभी गांधी के ही अनुयायी नहीं हैं। थोड़े-से धैर्य से सभी झमेला खतम हो जाता। पाकिस्तान सिर्फ एक आदमी, मुहम्मदअली जिन्ना की उपलब्धि थी और पाकिस्तान बनने के एक साल बाद वह मर गया। थोड़ा सा धैर्य। जल्दबाजी से इन्कार। गांधी की यही सलाह थी और हिंदुस्तानियों की दृष्टि से यह सलाह ठीक थी।

लेकिन नेहरू, पटेल तथा अन्य कांग्रेसियों के लिए, जो सत्ता के लिए परेशान थे, माउण्टबेटन ने जो टुकड़ा दिखाकर ललचाया वह इतना मोहक था कि इन्कार नहीं किया जा सका। उन्होंने उसे निगल लिया। अपने जीवनी लेखक माइकेल ब्रेचर को 1960 में नेहरू ने कहा—

'शायद मैं समझता हूँ कि यह घटनाओं की मजबूरी थी, इस बात की मजबूरी थी कि हमलोग जिस रास्ते पर चल रहे हैं उसके सहारे इस गतिरोध या जिच से निकल

नहीं सकते। हालत बिगड़ती ही गई। फिर हमारा यह भी खयाल था कि अगर हिन्दुस्तान के लिए आज़ादी मिली भी तो वह हिन्दुस्तान बड़ा ही कमजोर होगा, ऐसा फेडरल हिन्दुस्तान जिसके टुकड़ों की बहुत ज्यादा सत्ता होगी। इस बड़े हिन्दुस्तान में हमेशा दिक्कत होगी, हमेशा अलग होने की शक्तियाँ जोर लगाएँगी। यह भी बात थी कि निकट भविष्य में आज़ादी हासिल करने का और कोई दूसरा रास्ता हमें दिखाई नहीं पड़ रहा था। इसीलिए हम लोगों ने इसे मान लिया और कहा, हमलोग एक मजबूत हिन्दुस्तान बनायेंगे। और कुछ लोग इसमें नहीं रहना चाहते तो हमलोग किस तरह और क्यों उन्हें मजबूर करें।'

लेकिन लेखक के साथ जब 1960 में उसने बातचीत की तो शायद वह सत्य के अधिक निकट था उसने कहा—

'सच्ची बात यह है कि हमलोग थक गए थे और बूढ़े भी हो चले थे। फिर जेल जाने की सम्भावना हममें से बहुत थोड़े बर्दाश्त कर सकते। अगर हम लोग संयुक्त हिन्दुस्तान के लिए *खड़े रहते, जैसा कि हम चाहते थे, तो स्पष्ट है कि जेल के* दरवाजे हमारा इन्तज़ार कर रहे थे। हमलोगों ने पंजाब में जलती हुई आग देखी, खूंरेजी की खबरें रोज मिलती रहीं। बँटवारे की योजना ने एक रास्ता सामने रखा और हमने उसे अपनाया।

'लेकिन अगर गांधी ने हमें मना किया होता तो हम लड़ाई जारी रखते और इन्तज़ार करते रहते। लेकिन हमलोगों ने *मान लिया। हमें उम्मीद थी कि यह बँट-*वारा अस्थायी होगा और पाकिस्तान फिर हममें मिल जायगा। हममें से किसी ने भी यह कल्पना नहीं की थी कि यह खूंरेजी और कश्मीर की समस्या हमारे आपसी रिश्तों को इतना कड़ुवा बना देगी।'

उन घटनाओं के बारे में कोई शक नहीं जिन्होंने नेहरू की विचारधारा को जन्म दिया। एक बार उसने कहा था—'हिन्दुस्तान का हर गाँव जल जाय, यह मैं बर्दाश्त कर सकता हूँ लेकिन ब्रिटिश फौज को अपनी रक्षा के लिए बुलाना नहीं।'

लेकिन 17 अगस्त 1947 को, भारत के प्रधान मन्त्री बनने के दो दिन बाद वह *हवाई जहाज से अमृतसर गया और उसने पंजाब का दौरा किया। वहाँ जो कुछ देखा* उससे वह पागल हो उठा। पहली बार उसने देखा कि आज़ादी के लिए जल्दबाजी मचाने का इन्सान की जिन्दगी की कसौटी पर क्या नतीजा हुआ। गुस्से में कातिल मिला और मुसलमानों के बीच कूदकर उसने घूँसेबाजी शुरू कर दी।

उसी दिन उसे पता चला कि हिन्दुस्तान की आज़ादी जरा जल्दी आ गई। कुछ सप्ताह, कुछ महीने, शायद एक साल से बड़ा फर्क पड़ता और उतनी जानें बच जातीं। हमें यह विश्वास करने का कोई कारण नहीं कि पंडित जवाहरलाल नेहरू को स्वतन्त्रता दिवस 15 अगस्त, 1947 पर नाज है।

लेकिन जो बीत गई वह बात गई। अब शोर मचाने का क्या फायदा? हिन्दुस्तान आज़ाद हो गया। मरीज का अंग कटा, खून बहा। लेकिन वह जिन्दा रहेगा।

आनेवाले वर्षों में जो हिन्दुस्तान में रह चुके हैं, काम कर चुके हैं और हिन्दुस्तान

को प्यार कर चुके है, सिर्फ उन्हें अफसोस होगा कि अंग्रेजी राज के आखिरी दिन खून से बेजरूरत रंगे गए।

देश ऐसे दो टुकडो मे बँटा जिनके बीच गाली-गलौच, शिकायत और कश्मीर के मामले मे तो लडाई तक की नौबत आ गई। पाकिस्तान बालकन राज्य की तरह हो गया, बेईमानी, घूसखोरी और साजिशो से छलनी। एक आदर्श भारत बनाने का कांग्रेसी अहद राजनीतिक सत्ता के लडाई-झगडो मे बदल गया।

लेकिन हालत सुधरेगी। इससे बदतर हो भी क्या सकती है।

इसी बीच जिन अंग्रेजो ने इन घटनाओ मे अपना पार्ट अदा किया था, एक-एक कर घर जाने लगे। कुछ सिविल सर्वेण्ट और फौजी पाकिस्तान म रह गए। हिन्दुस्तान से सभी चले गए। गार्जियन नामक अखबार मे पुराने सिविल सर्वेण्ट फिलिप वुडरफ ने लिखा—'अधिकांश लोगो के दिमाग मे यही बात थी कि हमलोगो ने अपना पार्ट अदा किया और अब लौटने का वक्त आ गया है। रुकने का अर्थ यह होगा कि जिम्मेदारियाँ धुंधली पड जायँगी। ·· धागा तोडना ही पडेगा। कुछ अंग्रेज पाकिस्तान म रह गए और पाकिस्तानी की ही तरह कट्टर बन गए। हिन्दुस्तान म रहने के बारे मे अंग्रेजो की राय थी कि इससे किसी को लाभ नही होगा। ·· कहानी खतम हो गई। साझेदारी और झगडे के लम्बे कई वर्ष बीत गए। रिश्ता टूट गया।'

स्वाधीनता दिवस के दिन जार्ज एबेल और इवान जेन्किन्स रवाना हुए। उसी दिन सर सिरिल रेडक्लिफ भी रवाना हुआ। दो दिन बाद उसके फैसले की जो प्रतिक्रिया हुई, उस दृष्टि स अच्छा ही हुआ कि वह चला गया।

सर क्लाड आचिनलेक अगस्त, 1947 के अन्त तक रहा। जब कांग्रेस ने उस पर और पजाब सीमा फौज पर पाकिस्तान का पक्ष लेने का इल्जाम लगाया तो उसने और जनरल रीस ने इस्तीफा दे दिया। फौज तोड दी गई। आचिनलेक का भ्रम टूटा और जाते समय उसका दिमाग काफी तल्ख था।

उसके बाद जानेवाला था लॉर्ड इस्मे। वह भी बहुत खुश नही था। ब्रिटिश राज के बाहर हिन्दुस्तान की बात अब भी उसे नही पच सकी थी। लदन लौटने के कुछ समय बाद ब्रिटिश राज दरबार के उस अफसर से उसकी बात हुई जो उपाधियां आदि का काम देखता है।

उसने इस्मे को बताया—'आपने आखिरी वक्त जी० सी० एस० आई० की उपाधि से इन्कार कर दिया। सम्राट् बहुत ही नाराज हुए। उन्होंने समझा कि यह बहुत बुरी बात है। इसीलिए जब आप आये तो आपसे मिलने के लिए आपको राजमहल मे नही बुलाया। लेकिन अब सब ठीक हो गया है। उन्होंने आपको माफ कर दिया है। आपको वह गार्टर वाली उपाधि दे रहे है।'

फिर इस्मे के चेहरे को देखते हुए उसने जल्दी से कहा—'हिन्दुस्तान के लिए नहीं, हिन्दुस्तान के लिए नही।'

नौ सेना के एडमिरल अर्ल माउण्टबेटन ऑफ बर्मा सत्ता सौंपने के दस महीने बाद

तक भारत के गवर्नर जनरल की हैसियत से रहा। वह मई, 1948 में इंग्लैण्ड लौटा और तुरन्त नौ सेना के दफ्तर में काम के लिए हाजिर हुआ। जून, 1948 में उसने नौ सेना में काम शुरू कर दिया, जैसा कि वह हमेशा चाहता था।

सहायक पुस्तकें

जान कानेल—आचिनलेक, कैसेल 1959। हिन्दुस्तान के भूतपूर्व सेनाध्यक्ष फील्ड मार्शल सर क्लाड आचिनलेक का विस्तृत अध्ययन।

रिचार्ड सीमण्ड्स—दि मेकिंग ऑफ पाकिस्तान, फेबर 1950। स्वतन्त्र मुस्लिम राज्य पाकिस्तान के निर्माण और संगठन का सहानुभूतिपूर्ण अध्ययन।

प्यारेलाल—महात्मा गांधी दि लास्ट फेज, खण्ड I और II, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद। हिन्दुस्तान की आज़ादी की लड़ाई के महत्त्वपूर्ण दिनों में महान् नेता के कथन, कार्य और भावनाओं का विस्तृत अध्ययन।

माइकेल ब्रेचर—नेहरू, आक्सफोर्ड 1959। भारत के प्रधान मन्त्री और आज़ादी के निर्माणकर्ता की विश्लेषणात्मक और प्रामाणिक जीवनी।

दि मेमायर्स ऑफ लार्ड इस्मे, हाइनमैन्न 1960। जो पिछली लड़ाई में चर्चिल के साथ रहा और अंग्रेजी राज के आखिरी दिनों में लार्ड माउण्टबेटन के साथ। उसके लड़ाई तथा शान्ति के दिनों का भरा-पूरा चित्रण।

मार्क्विस ऑफ जेटलैण्ड—एसेज, जान मरे 1957। भूतपूर्व सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर इण्डिया, इण्डियन सिविल सर्विस के सदस्य और लार्ड कर्जन के जीवनीकार के महत्त्वपूर्ण संस्मरण।

ले० जेनरल सर फ्रांसिस टकर—ह्वाइल मेमरी सर्व्स, कैसेल 1950। हिन्दुस्तान में अंग्रेजी राज के आखिरी दिनों का अध्ययन, एक अंग्रेज अफसर द्वारा जो कई मोर्चों पर बहादुरी से लड़ा लेकिन जिसका रूप निखरा सिर्फ हिन्दुस्तान की सरज़मीन पर।

डफ कूपर—ओल्ड मेन फोरगेट, हार्ट-डेविस 1953। भूतपूर्व केबिनेट मिनिस्टर के संस्मरण।

फिलिप वुडरफ—दि मेन हू रूल्ड इण्डिया, दो खण्ड, जोनेथन केप 1953 और 1954। इण्डियन सिविल सर्विस के भूतपूर्व सदस्य का भावुक और सहानुभूतिपूर्ण संस्मरण।

लुई फिशर—लाइफ ऑफ महात्मा गांधी, केप 1961। महात्मा गांधी की जीवनी उस अमरीकी पत्रकार द्वारा जो उनका पक्का मित्र बन गया।

के० एम० दस—इण्डियाज मार्च टु फ्रीडम, ओरिएण्ट लौंगमैन्स, कलकत्ता। भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम का भारतीय दृष्टिकोण।

बेगम ए० मलिक—एच० आर० एच० प्रिंस आगा खां; इस्मैलिया एसोसिए-शन, पाकिस्तान। इस्मैलिया सम्प्रदाय के नेता ने मुसलमानों की आजादी हासिल करने में जो पार्ट अदा किया उसका वृत्तान्त।

कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी—पब्लिकेशन्स डिवीजन, सूचना और प्रसारण मन्त्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।

यादनमलीगोस—ग्रीन थ्रेसगिविंग; एशिया पब्लिशिंग हाउस। हैदराबाद के एक नौजवान मुसलमान के दिलचस्प संस्मरण जो आजादी की लड़ाई में पण्डित नेहरू के साथ काम करता रहा।

के० एम० मुन्शी—दि ऐंड ऑफ एन इरा, भारतीय विद्या भवन, बम्बई। हिन्दुस्तान और हैदराबाद के कशमकश की कहानी, निजाम के पास रहनेवाले भारतीय प्रतिनिधि द्वारा।

एन० बी० खरे—माइ पोलिटिकल मेमायर्स आर ऑटोबायोग्राफी, वी० आर० जोशी, नागपुर। भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम का एक जोशीला हिन्दू दृष्टिकोण।

जवाहरलाल नेहरू स्पीचेज, 1945 1949, सूचना और प्रसारण मन्त्रालय, नई दिल्ली।

जी० वी० सुब्बाराव—दि पार्टीशन ऑफ इण्डिया, गाण्ठी बुक ट्रस्ट, इण्डिया। भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम का कट्टरपंथी हिन्दू दृष्टिकोण।

आर० एच० कुरैशी—दि पाकिस्तानी वे ऑफ लाइफ, हाइनमैन्न 1956। स्वतन्त्र पाकिस्तान की कोशिशों और कामयाबियों का अध्ययन।

अजीज बेग—कैप्टिव कश्मीर, एलाइड बिजिनस कारपोरेशन, लाहौर। कश्मीर के झगड़े का पाकिस्तानी दृष्टिकोण।

क्रिसेण्ट एण्ड ग्रीन, कैसेल 1955। पाकिस्तान के सम्बन्ध में लिखी गई विविध चीजें।

होरेस एलेक्जेण्डर—इण्डिया सिन्स क्रिप्स, पेंगुइन 1944। हिन्दुस्तान की समस्याओं पर लड़ाई के दिनों का सिंहावलोकन।

आर० कूपलैण्ड—दि क्रिप्स मिशन, आक्सफोर्ड 1942। लड़ाई के जमाने का दूसरा अध्ययन।

मौलाना अबुल कलाम आजाद—इण्डिया विन्स फ्रीडम, लागमैंस। एक पक्के मुसलमान द्वारा हिन्दुस्तान की आजादी की लड़ाई की हिला देनेवाली कहानी जो कांग्रेस का भी सदस्य था।

हम्फ्री ईवान्स—थिमैया ऑफ इण्डिया, हारकोर्ट ब्रस, न्यूयार्क। भारतीय सेनाध्यक्ष की जीवनी एक अमरीकी दोस्त की कलम से—अंग्रेजों के अधीन भारतीय सेना के अफसर की जीवनी जिसमें कुछ बहुत ही दिलचस्प और विवादास्पद अध्याय हैं आजादी और उसके बाद की खूरेजी के बारे में।

खुशवन्तसिंह—ट्रेन टु पाकिस्तान; चेटो एण्ड विडस 1956। अंग्रेजी राज के आखिरी और आजादी के शुरू के पंजाब के वातावरण और घटनाओं का एक सिख द्वारा चित्रण जिसमे चरित्र तो काल्पनिक हैं लेकिन वातावरण सच्चा।

मैंडेलिन मेसन—एडवीना; रावर्ट हेल, 1958। आजादी के पहले और बाद के दिनो मे लेडी माउण्टबेटन के साहसिक कार्यों का विस्तृत विवरण।

विन्सेण्ट शीन—नेहरू; गोलैंक्ज 1961। भारतीय प्रधान मन्त्री का स्पष्ट रूप से अवतारी चित्रण।

गोपालदास खोसला—स्टर्न रेकनिंग; भवनानी एण्ड सन, नई दिल्ली। आजादी के पहले और बाद पंजाब की खूंरेजी का एक भारतीय जज द्वारा चित्रण।

विल्फ्रेड रसेल—इण्डियन समर; थैकर, बम्बई। 1947 की घटनाओं का एक अंग्रेज व्यापारी द्वारा चित्रण।

ए० कैम्बेल-जानसन—मिशन विथ माउण्टबेटन; रावर्ट हेल 1951। भारतीय आजादी की लडाई और प्राप्ति के महत्त्वपूर्ण महीनो की माउण्टबेटन के प्रेस विशेषज्ञ की रोज ब-रोज की सनसनीखेज डायरी।

वी० पी० मेनन—द ट्रांसफर ऑफ पावर इन इण्डिया; लागमैन्स 1957। भारतीय सरकार के भूतपूर्व हिन्दू अफसर का उन घटनाओं का बड़ा ही शान्त और निष्पक्ष चित्रण जिनकी परिणति आजादी मे हुई।

वी० पी० मेनन—दि इंटीग्रेशन ऑफ इण्डियन स्टेटस, लागमैन्स, 1956। जिस आदमी ने स्टेट्स मन्त्रालय के सचिव की हैसियत से रजवाड़ों को भारत मे शामिल करवाया उसी की कलम मे रियासतों के विलयन की खट्टी-मीठी कहानी।

मसानी—ब्रिटेन इन इण्डिया, आक्सफोर्ड 1961। हिन्दुस्तान मे ब्रिटेन की सत्ता का एक भारतीय द्वारा स्पष्ट और सहानुभूतिपूर्ण चित्रण।

फारेन रिलेशन्स ऑफ दि यूनाइटेड स्टेटस। दि ब्रिटिश कामनवेल्थ एण्ड दि फॉर ईस्ट, 1942। यूनाइटड स्टेट्स गवर्नमेंट प्रिंटिंग हाउस, वाशिंगटन, डी० सी०।

नीरद चौधरी—दि आटो बायोग्राफी ऑफ एन अननोन इण्डियन, मैकमिलन 1951। एक बुद्धिमान और सरल बंगाली द्वारा एक भारतीय की जीवनी बड़ी सुन्दरता से चित्रित।

हेक्टर बोलिथो—जिन्ना क्रिएटर ऑफ पाकिस्तान, जान मरे 1954। पाकिस्तान के पहले राष्ट्रपति की जीवनी का सहानुभूतिपूर्ण चित्रण।

लेटर्स फ्राम ए फादर टु हिज डाटर (1929), रीसेण्ट एसैज एण्ड राइटिंग्स आन दि फ्यूचर ऑफ इण्डिया (1934), ग्लिम्प्सेज ऑफ वर्ल्ड हिस्ट्री (1934), इण्डिया एण्ड दि वर्ल्ड (1936) टुवर्ड फ्रीडम; दि आटोबायोग्राफी ऑफ जे० नेहरू (1941), द डिस्कवरी ऑफ इण्डिया (1946), नेहरू ऑन गांधी (1948); इण्डिपेंडेंस एण्ड आफ्टर (1949); ए बंच ऑफ ओल्ड लेटर्स, पुस्तिकाएँ, सकलित

भाषण—जवाहरलाल नेहरू की ये रचनाएँ महान् भारतीय नेता के मस्तिष्क और विचारों की अद्भुत झाँकी प्रस्तुत करती हैं।

जी० आर० स्टीवेन्स, ओ० बी० ई०—फोर्थ इण्डियन डिवीजन, जो डिवीजन इरिट्रिया में बहादुरी के साथ लड़ी और सत्ता हस्तान्तरित करते समय पंजाब में थी, उसका प्रामाणिक इतिहास।

BIBLIOGRAPHY

John Connell *Auchinleck*, Cassell 1959. A detailed study of the career of Field Marshal Sir Claude Auchinleck, former Commander-in-Chief, India.

Richard Symonds *The Making of Pakistan*, Faber 1950. A sympathetic study of the creation and consolidation of the independent Muslim State of Pakistan

Pyarelal *Mahatma Gandhi: The Last Phase*, Vols. I and II. Navajivan Publishing House, Ahmedabad. A detailed s'udy of the great Indian leader's sayings, doings and feelings during the vital days of India's struggle for independence.

Michael Brecher *Nehru*, Oxford 1959. A critical and authoritative biography of India's prime minister and architect of independence.

The Memoirs of Lord Ismay, Heinemann 1960. A rich collection of life in peace and war by the man who stood at Churchill's side through the last War, and beside Mountbatten in India through the last days of the British Raj.

Marquis of Zetland *Essayez*, John Murray 1957. The enlightened recollections of a former Secretary of State for India, member of the Indian Civil Service, and biographer of Lord Curzon.

Lieutenant-General Sir Francis Tuker *While Memory Serves*, Cassell 1950 A fervent study of the last days of British rule in India seen from the point of view of a British officer who served gallantly on many fronts but shaped his career on Indian soil.

Duff Cooper *Old Men Forget*, Hart-Davis 1953. The memoirs of a former Cabinet Minister.

Philip Woodruff *The Men Who Ruled India*, 2 Vols. Jonathan Cape 1953 and 1954. The sensitive and sympathetic recollections of a former member of the Indian Civil Service.

Louis Fischer *Life of Mahatma Gandhi*, Cape 1951. A biography of the Mahatma by an American journalist who became one of his most convinced disciples.

K. K. Datta *India's March to Freedom*, Orient Longmans, Calcutta. An Indian view of the struggle for independence.

Qayyum A. Malick *H.R.H. Prince Aga Khan*, Ismailia Association, Pakistan. The part played by the leader of the Ismaili sect in India to secure independence for the Muslims.

Collected Works of Mahatma Gandhi, Publications Division, Ministry of Information, New Delhi

Sadath Ali Khan *Brief Thanksgiving* Asia Publishing House The engaging memories of a young Hyderabad Muslim who served at Nehru's side during the independence struggle

K M Munshi *The End of an Era*, published by Bharatiya Vidya Bhavan, Bombay The story of the conflict between India and Hyderabad, written by India's delegate to the Nizam

N B Khare *My Political Memories, or Autobiography*, V R Joshi, Nagpur A passionate Hindu's version of the independence struggle

Jawaharlal Nehru's Speeches, 1945 49 Ministry of Information, New Delhi

G V Subba Rao *The Partition of India* Goshti Book Trust India The diehard Hindu version of the independence struggle

I H Qureshi *The Pakistani Way of Life* Heinemann 1956 A study of the efforts and achievements of independent Pakistan

Aziz Beg *Captive Kashmir*, Allied Business Corp Lahore The Pakistani view of the Kashmir controversy

Crescent and Green, Cassell 1955 A miscellany of writings about Pakistan

Horace Alexander *India Since Cripps*, Penguin 1944 A wartime sage look at India s problems

R Coupland *The Cripps Mission*, Oxford 1942 Another wartime study

Maulana Abul Kalam Azad *India Wins Freedom*, Longmans A moving account of the fight for independence from the point of view of a devout Muslim who was also a member of the Indian Congress

Humphrey Evans *Thimayya of India* Harcourt Brace New York An American friend of the Indian Army s Chief of Staff tells the story of his life as an officer in the British controlled Indian Army, with some fascinating and controversial chapters on his views about independence and the bloodshed which followed it

Kushwant Singh *Train to Pakistan* Chatto and Windus 1956 A Sikh's account of the atmosphere and events in the Punjab during the last days of the British Raj and the first days of freedom, with fictional characters moving before a factual canvas

Madeline Masson *Edwina* Robert Hale 1958 The life story of Lady Mountbatten with a detailed account of her gallant activities in the troublesome days before and after independence

Vincent Sheean *Nehru* Gollancz 1961 A frankly hero worshipping view of the Indian prime minister

Gopal das Khosla *Stern Reckoning* Bhawnani and Son New Delhi An Indian judge's report on the massacres in the Punjab before and after independence

Wilfred Russell *Indian Summer*, Thacker, Bombay A British businessman's account of the events of 1947

A Campbell Johnson *Mission with Mountbatten*, Robert Hale 1951 The eventful and exciting day by day diary of Mountbatten's Press spokesman in the vital months of the struggle and achievement of Indian independence

V P Menon *The Transfer of Power in India*, Longmans 1957 A remarkably calm and impartial review of the events leading to independence by a distinguished Hindu who was formerly a member of the Indian Government Service

V P Menon *The Integration of the Indian States* Longmans 1956 The olourful tragi comic story of the end of the princely system in India told by the man who as Secretary to the States Ministry was mainly responsible for bringing the princely order into the Indian Government

Masani *Britain in India* Oxford 1961 A lucid and sympathetic account by an Indian of Britain s mission in the sub Continent

Foreign Relations of the United States The British Commonwealth and the Far East, 1942 United States Government Printing House, Washington D C

Nirad Chaudhuri *The Autobiography of an Unknown Indian*, Macmillan 1951 A beautifully written evocation of life in India by a wise and gentle Bengali

Hector Bolitho *Jinnah Creator of Pakistan* John Murray 1954 A sympathetic account of the life of the founder of Pakistan

Letters from a Father to his Daughter (1929) Recent Essays and Writings on the Future of India (1934) Glimpses of World History (1934 Indian and the World (1936) Toward Freedom the Autobiography of J Nehru (1941) The Discovery of India (1946) Nehru on Gandhi (1948) Independence and After (1949) A Bunch of Old Letters Pamphlets and collected speeches All by Jawaharlal Nehru a panoramic tour of the great Indian leader s mind and opinions

G R Stevens O B E *Fourth Indian Division* The official history of a division which fought from Eritrea through the Western Desert with great gallantry and dash and was in the Punjab through the riots and disturbances of the period during the transfer of power